

राजर्षि-योगिवर्य
महाराज साहब श्री चतुरसिंहजी

विषय-सूची

(प्रस्तावना)

(श्री गीताजी)



ॐ

निवेदन

(प्रथम संस्करण)

भगवान् श्रीकृष्ण रा मुखारविन्द शूँ निकळी थकी गीता ने आखो संसार जाणे है, ने अणी रा गुणानुवाद पे'ली रा ने अबाणूँ रा शघला ही महापुरुषाँ खूब गाया है, ईं वास्ते ज्यादा कई के'वा री जरूरत नी है। ईं में संसार रा सब दुःखाँ शूँ छूट ने आनन्दरूप परमात्मा ने प्राप्त करवा री घणीज शूधी रीत बताई है। अर्जुण दो ही फौजाँ वच्चे घवरातो थको ऊभो हो वीने या शुणताँ शुणताँ हीज परमानन्द री प्राप्ति व्हे गई, ने बोल उठ्यो के ,हे अच्युत, आपरी कृपा शूँ म्हारो अज्ञान मट गियो ने सही वात भूल गियो हो सो म्हने पाछी याद आय गई। अणी शूँ हीज अंदाज व्हे शके है के या रीत कतरी शूधी है। अणी वास्ते मरती दाण भी गीता हीज शुणावा री आपणे रीत है, क्यूँके वणी वगत और साधन करे जतरी तो वगत व्हे है नी ने शुणताँ शुणताँ हीज ज्ञान प्राप्त व्हे जाय अशी वात चावे सो अशी या श्री गीताजी हीज हैं।

गीताजी संस्कृत में व्हेवा शूँ संस्कृत नी जाणवा वाळा ने थोड़ा भण्या थका मेवाड़ रा मनख अणी रो आनन्द नी ले शकता हा ईं वास्ते करजाली महाराज साहब श्री लक्ष्मणसिंहजी रा छोटा भाई महाराज साहब श्री चतुरसिंहजी दयाकर १० वर्ष पे,ली ईं री सार दर्शावणी समश्लोकी टीका मेवाड़ी बोली में वणाई जणी शूँ थोड़ा भण्या थका भी सरळता शूँ शूधी शूधी मेवाड़ी बोली में गीता जी रो भाव (मतलव) समझ लेवे। या किताब लोगाँ ने घणी दाय लागी ने एक हजार पुस्तकाँ

थोड़ा ही दिनाँ में पूरी व्हे गई, औंर फ़ेर छपावा रे वास्ते लोग आ,गत करवा लागा। अणा दश वर्षां में महाराज साहब रो अनुभव बहुत ऊँचो बढ़ गियो हो ईं वास्ते विक्रम संवत् १९८४ रा पौष मास में आप गीता जी री एक नवी टीका लिखवा रो आरम्भ की धो। वत्तो शूधापणो लावा रे वास्ते ईं ने वार्ता में हीज वणाई। आपणा ऊँचा अनुभव शूँ महाराज साहब गीता रा गूढ़ भेद खोल ने ईं में बताया है सो शमझवा वाळा शमझेगा।

अणी रो नाम गंगाजली है जीं रो भाव यो है के ज्यूँ जात्रा करवा जाय वी लोग गंगाजी में खूब स्नान करे, गोता लगावे ने पेट भर भर ने गंगाजळ पीवे, पाछी आवती दाण आपणा सगा कुटुम्बीं और हेत वे,वार वाळा लोगाँ रे वास्ते गंगाजळी भर ने लेता आवे के वीं लोग भी वना मे,नत गंगाजळ रो पान कर पवित्र व्हे जावे। अणीज तरे, शूँ गीता रूपी गंगाजी में गोता लगाय लगाय अणी में वे,ता थका ज्ञान रूपीं जळ ने भर पेट पी पी ने महाराज साहब आपणा कुटुम्बी और इष्ट मित्राँ रे वास्ते (उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्— अर्थात् महान् पुरुषाँ रे तो आखो संसार ही कुटुम्ब हीज है (या गंगा जळीं लाया है। या गंगाजली तो अशी है के शघला ही पेट भर भर ने पीये तो भी रीती नी व्हे ने ईं रो एक आचमन मात्र करले तो भी सम्पूर्ण तृष्णा और ताप मट जावे।

महाराज साहब री अणी उपयोगी पुस्तक रो प्रचार आवश्यक समझ श्रीमान् परमदयालु धीर वीर मेदपाटेश्वर हिन्दू सूर्य महाराजाधिराज महाराणाजी श्री १०८ श्री भूपालसिंहजी बहादुर के सीं आई ईं ईं ने छपाय प्रकाशित करवा रो हुकम बखशायो। छपाई को खर्च निज खर्च शूँ मिलवा रो हुकम हुवो और ईं रो सम्पादन करवा री म्हने आज्ञा हुई सो म्हारी तुच्छ बुद्धि रे माफक आज्ञा रो पालन कीदो है। महाराज साहब रा पवित्र और ऊँचा विचाराँ ने मनन कर मन ने पवित्र करवा रो यो मौको म्हने मिल्यो जीरी म्हने प्रसन्नता बहुत है। ईं में कठे ही गलती होवे तो वा म्हारी है। सज्जनाँ ने प्रार्थना है के वी

सुधार लेवे और सूचना देवे के दूजी दाण छपे जणीं वगत ईं री ओशाण राखी जावे।

श्रीमान् श्री जी हजूर दाम इकबालहु अणीं पुस्तक ने प्रकाशित कराय एक तरफ तो एक महान् योगी और राजर्षि रीं कीर्ति ने अमर कीधी है और दूजी तरफ सरल और अनुभव पूर्ण गीता जी री अमूल्य टीका रे द्वारा दुःखी जींवाँ रे हृदय में शान्ति उत्पन्न करवा रो अखण्ड पुण्य लीधो है। परमात्मा अश्या धर्मात्मा और दयालु राजा ने दीर्घ आयुष्य प्रदान करे और सदा आनन्द में राखे।

विक्टोरिया हाल
उदयपुर।

शोभालाल शास्त्री



निवेदन

(द्वितीय संस्करण)

इस पावन ग्रन्थ का प्रथम संस्करण प्राय: दवर्ष से समाप्त हो गया था। इधर कई गीता-प्रेमियों को पुस्तक की अप्राप्ति खटक रही थी। मेरे भी कुछ मित्रों ने पुस्तक भेजने को मुझे लिखा किन्तु मैंने उन्हें न मिलने के कारण विवशता प्रकट कर विश्वास दिलाया कि पुस्तक का द्वितीय संस्करण प्रकाशित होते ही मैं भेज दूंगा। एक वर्ष व्यतीत हो गया पुस्तक प्रकाशित न होते देख अपने कुछ साथियों से इस सम्बन्ध में बात-चीत की। अन्त में इस सम्बन्ध की प्रार्थना जब श्रीमान शिवरती महाराज साहब श्री शिवदानसिंहजी से हम लोगों ने की तो आपने प्रकाशन का भार मेरे सिर देते हुए इसमें लगी धन राशी का सदा के लिए इस शर्त पर दान का वचन दिया कि "इससे प्राप्त द्रव्य से पूज्य काकाजी साहब (आपका तात्पर्य श्रीमान् रा. श्री चतुरसिंहजी सेथा) के आवश्यक ग्रन्थ प्रकाशित होते रहें और इसकी देख-रेख के लिए एक स्थायी कमेटी बना दी जाय।"

हमारे आनंद की सीमा न रही। श्रीमान् महाराज साहब ने ही "राजस्थान टाइम्स् प्रेस" के सर्वोच्च अधिकारी श्रीमान् ठा० मदनसिंहजी से बात-चीत कर प्रूफ शोधन आदि का कार्य मुझे सौंपा। इसमें मैं कहाँ तक सफल हुआ इसके निर्णायक तो पाठक ही हैं। हाँ—इतना अवश्य निवेदन कर देना कर्तव्य समझता हूँ कि प्रथम संस्करण से इस संस्करण में आपको कुछ विशेष-ताएं मिलेंगी और वे निम्न प्रकार हैं :—

(१) अशुद्धियों पर अब की बार पूर्ण-ध्यान रखा गया है जिससे अन्त में शुद्धि पत्र न लगाना पड़े क्योंकि बहुत ही कम पाठक इसका उपयग करते हैं। फिर भी दृष्टि-दोष से बहुत कुछ अशुद्धियाँ रह ही गई हैं। इस अपराध के लिए पाठक क्षमा करेंगे।

(२) सांकेतिक चिन्ह विशेष कर अल्प विराम (,) इस संस्करण में अधिक केवल इसी दृष्टि से लगाये हैं जिससे इस मार्मिक ग्रन्थ के समझने में सुविधा मिल सके।

(३) संस्कृत और मेवाड़ी श्लोकों को कुछ दूर कर दिये हैं जिससे पाठक को

मूल पाठ करने में भी आसानी रहे।

सुन्दर छपाई के लिए तो प्रेस के अधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग धन्यवाद के पात्र हैं ही जिन्होंने पूर्ण अभिरुचि दिखा कर अपनी निजी दिलचस्पी लेते हुए इसे प्रकाशित किया।

मूल्य के लिए इतना ही निवेदन है कि हमने जितना सस्ते से सस्ता इसे कर सकते थे करने में पूर्ण प्रयत्न किया है फिर भी प्रथम संस्करण से आज दसगुनी मंहगाई है इस दृष्टि को सामने रख कर आप सोचेंगे तो यह सस्ता ही प्रतीत होगा। प्रसन्नता की बात यह भी है कि आपका यह द्रव्य श्रीमान् योगीवर्य राजर्षिजी के अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन में ही लगेगा।

अन्त में यह निवेदन है कि जिस महापुरुष के हृदय में यह उत्कट लालसा रहती थी कि "हर प्राणी (पढ़ा, बिना पढ़ा) ऐसा उत्तम और सर्व साध्य तत्व को समझ कर, वैसा हो जाय; और आन्तरिक शान्ति प्राप्त करले जिसे प्राप्त करने का उसे जन्म-सिद्ध अधिकार है।" तथा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपने गहनतनम गीता, सांख्य और योग सदृश ग्रन्थों को सीधी-सादी मेवाड़ी भाषा में अनुवादित कर हमारा परम उपकार किया है। उन ग्रन्थों का आप स्वयं आनन्द लाभ लेकर योग्य पात्रों में उनका प्रचार कर राजर्षिजी की अभिलाषा पूर्ण करें।

निवेदक

मोहनलाल जोशी



ॐ

राजर्षि आत्माराम महाराज श्री चतुरसिंहजी और उनका पारिवारिक सूक्ष्म परिचय ।

संसार का सर्वमान्य, परम प्राचीन, पवित्रतम कुल जिसका उद्‌गम स्वायंभू मनु और ईक्ष्वाकु थे, तथा जिस परंपरा में साक्षात् शोड़ष कला युक्त, सर्वान्तर्यामी, अव्यक्त हरि ने व्यक्त होकर नर-लीला की; यही नहीं सतयुग से लगा कर आज दिन तक समय समय पर ऋषभदेव, भरत, दिलीप, भगीरथ, अज, दशरथ, अम्बरीष, मुचकंद, मानधाता, और इस कलि काल में भी बापा, कुंभ, हमीर, लाखा, सांगा, प्रताप, राजसिंह संग्रामसिंह, स्वरूपसिंह, फ़तहसिंह, शिवाजी और चुंड आदि महापुरुषों ने अवतस्ति होकर यह प्रत्यक्ष कर दिया है कि इस कुल में सूर्यवंश की अविरल अक्षुण्ण पुनीत धारा की परम्परा सृष्टि के आदि युग से आज तक उसी प्रकार प्रवाहित हो रही है। पुराणों तक में जिस ईक्ष्वाकु वंश की कीर्ति का वर्णन आता है, यथा-(हरिवंश पुराण महाभारतान्तर्गत अध्याय १४ वंश वर्णने)

"प्रादाच्चतस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरान्
अक्षयम् वंशमिक्ष्वाको कीर्तिर्चाप्यनिवर्तनीम्"।

उसी पवित्र वंश में आवर्भूत ब्रह्मवेत्ता राजर्षि चतुरसिंहजी का सूक्ष्म परिचय श्रीमद्भगवद् गीता प्रेमियों के सन्मुख दे रहा हूँ। आशा है पाठक प्रेम से पढ़ेंगे।

सूर्य वंश की पाटवीं शाखा में महाराणा संग्रामसिंह(द्वितीय)जो १७ वीं शताब्दी में मेदपाट पर शासन करते थे, उन ही के परिवार में राजर्षिमहाराज चतुरसिंहजी का जन्म हुआ।

इन महाराणा के वंशजों में अन्य भी कई ख्याति प्राप्त महापुरुषों का आविर्भाव हुआ है, जिनका प्रसंग वशात् अति सूक्ष्म परिचय करा देना अप्रासंगिक न होगा, यथाः—

दृढ़वृति महाराज श्री नाथजी(बागोर),नीतिज्ञ और अस्त्र विद्या निपुण महाराज शिवदान-सिंहजी, स्वामी - धर्म - महारथी महाराज भीमसिंहजी जिन्होंने राज्य को तुच्छ समझकर अपने शरीर तक की बलि दे डाली। महाराज बाघसिंहजी(करजाली) जिन्होंने मरहठों के आक्रमण के

समय उदयपुर की रक्षा की, आप शिल्प कला के भी वड़े मर्मज्ञ थे आपकी वनाई हुई श्वेत भैरव-मूर्ति अब भी उदयपुर में प्रतिष्ठित है। महाराज भैरवसिंहजी शरीर के सुडौल और वलशाली थे। महाराज अर्जुनसिंहजी (शिवरती) महान योगी और तंत्र मंत्र शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। आपके समय की एतद्विषयिक पुस्तकें और चित्र शिवरती हवेली में अब भी सुरक्षित रखे हुए हैं। ये महाराज वड़े राजनीतिज्ञ और पराक्रमी थे। कई युद्धों में इनने अपने शौर्य का परिचय दिया तथा अन्त समय काशीवास किया।

महाराज अर्जुनसिंहजी के दो तनय थे, वड़े कुंवर शिवसिंहजी अति विद्वान् थे। आप पिता की उपस्थिति में ही शिवलोकवासी हो गये और इनकी दोनों कुंवरानियां पति अनुगामिनी हुईं। महाराज अर्जुनसिंहजी के छोटे पुत्र वहादुरसिंहजी वनेरिया ठिकाने के महाराज हुए जिनके छोटे पुत्र के वंश में मादड़ी ठिकाना है।

कुंवर शिवसिंहजी के दो पुत्र थे। वड़े महाराज सूरजमलजी (शिवरती) तथा छोटे दौलतसिंहजी जो आगे चल कर करजाली महाराज हुए। महाराज सूरजमलजी वड़े स्वामी भक्त और वीर पुरुष थे जिनकी वीरता से सन्तुष्ट होकर तत्कालीन महाराणा भीमसिंहजी ने कई पारितोषिक प्रदान किये। आपके कोई ओरस सन्तान न थी अतः आपके पश्चात् अपने सहोदर महाराज दौलतसिंहजी के पुत्र दलसिंहजी शिवरती के स्वामी हुए। महाराज दलसिंहजी परम शैव और धर्म के अवतार थे। शिवरती (राजस्थान) के इष्टदेव श्री वाणनाथ महेश्वर इनसे साक्षात् थे। इनने अन्त समय इसी शिवलिंग के सनमुख तीन प्रणाम कर शरीर त्यागा और शिव सायुज्य प्राप्त किया।

महाराज दलसिंहजी के तीन पुत्र रत्न उत्पन्न हुए- वड़े गजसिंहजी जो अति राजनीतिज्ञ थे, शिवरती के स्वामी हुए। दूसरे धर्मात्मा महाराज सूरतसिंहजी जो करजाली के महाराज हुए (आप ही राजर्षि चतुरसिंहजी के पिता थे) और तीसरे मर्यादा–दुर्ग श्री फ़तहसिंहजी जो आगे जाकर मेवाड़ के अधीश्वर हुए तथा जिनके राजकुमार परम दयालु महाराणा श्री भूपालसिंहजी (महाराज प्रमुख संयुक्त राजस्थान) आज विद्यमान हैं।

राजर्षि चतुरसिंहजी के तीन वड़े भाई और थे जिनके नाम क्रमशः महाराज हिम्मतसिंहजी महाराज लक्ष्मणसिंहजी और महाराज तेजसिंहजी थे। महाराज हिम्मतसिंहजी इतिहास के पूर्ण मर्मज्ञ, धर्मनिष्ठ, राजनीतिज्ञ और शिल्पकला प्रेमी थे। अपने पाटवीं गांव शिवरती में एक विशाल जलाशय तथा अन्य कई तालाव, महल तथा वाग वनवाया। उदयपुर नगर के वाहर जनरल हॉस्पीटल के समीप श्री हिम्मत वालाजी महावीर के मंदिर की आपने स्थापना की। आप अच्छे कवि भी थे।

महाराज लक्ष्मणसिंहजी (करजाली) अच्छे अस्त्रविद्, वीर एंव सीता राम के बड़े उपासक थे। आपके ज्येष्ठ पुत्र (वर्तमान करजाली महाराज करणसिंहजी के पिता तथा महाराज अभयसिंहजी के ज्येष्ठ भ्राता) स्वर्गीय जगतसिंहजी थे; जो सांख्य योग के उच्चज्ञाता एवं आदर्श महापुरुष थे। आपके (म० जगतसिंहजी के) द्वितीय पुत्र मानसिंहजी इस परिवार के सर्व प्रथम ग्रेज्यूएट हैं।

महाराज सूरतसिंहजी (राजर्षि चतुरसिंहजी के पिता) के तीसरे पुत्र महाराज तेजसिंहजी संगीत कला में प्रवीण एवं उदार प्रकृति के पुरुष थे।

स्व. महाराज हिम्मतसिंहजी (शिवरती) के चार पुत्र और चार पुत्रियाँ इस समय विद्यमान हैं। ज्येष्ठ पुत्र महाराज शिवदानसिंहजी शिवरती के वर्तमान शासक हैं। आपमें सभी क्षत्रियोचित गुण विद्यमान हैं। आप संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, और अंग्रेजी के अच्छे अभ्यासी एवम् पुराण, धर्म, योग, भक्ति और नीति शास्त्रके वेत्ता हैं। विद्वान, भक्त और महात्माओं का आपके घर बड़ा मान सत्कार है। आप कविता प्रेमी हैं और स्वयं हिन्दी तथा संस्कृत में पद्य रचना करते हैं। घर पर एक "सर्वोदय" नामक आकर्षक पुस्तकालय भी स्थापित है जिसमें प्रायः सब विषयों की पुस्तकें अच्छी संख्या में विद्यमान हैं। आप का दृढ़ निश्चय है कि आर्य लोग अपनी श्रेष्ठ संस्कृति द्वारा ही भारत में शान्ति-सम्वृद्धि की नींव रख सकते हैं। आप मांस मदिरा से कोसों दूर रहते हैं तथा सिंह के अतिरिक्त प्रायः कोई शिकार नहीं करते हैं। आपका चरित्र महान एवं जीवन सादगी से परिपूर्ण है। सबसे विशेष बात आप में यह है कि निज खर्च के लिए ठिकाने से आप कुछ भी ग्रहण नहीं करते तथा कृषि आदि अन्य व्यवसायों से उपार्जन कर अपना काम चलाते हैं। आपने भारत के प्रायः सब ही तीर्थों का अटन किया है। चारों धाम, सप्त पुरी, बारहों ज्योतिर्लिङ्ग, पशुपति (नेपाल), लंका, काश्मीर, एवं कन्या कुमारी तक आप भ्रमण कर चुके हैं।

राजकार्य में भी आप दक्ष एवं उदार हैं। अपने ठिकाने में आपने सर्व प्रथम सेटलमेण्ट कराया, वेठ वेगार, लागत आदि टेक्स छोड़े, इतना ही नहीं राजस्थान गवर्नमेंट द्वारा निर्मित वेठ वेगार कमेटी की अध्यक्षता करके राजस्थान से इस गर्हित प्रथा का अन्त किया। इसके अतिरिक्त आपने मेवाड़ स्टेट, महाराजस्थान तथा क्षत्रिय जाति की भी कई सेवाएं कीं; जैसे:— आदिवासी मंडल, द्वितीय विश्वयुद्ध की मेवाड़ राज्य कमेटी की अध्यक्षता, तत्कालीन मेवाड़ हाइकोर्ट रंगनिवास के जज, वाल्टरकृत राजपूत हितकारिणी सभा के मेम्बर, मेवाड़ रेवेन्यू अपील वोर्ड के सदस्य आदि। आप द्वारा कई संस्थाओं को सक्रिय सहयोग भी प्राप्त होता रहता है। आपके सीता रामजी का इष्ट है। आपने उदयपुर के समीप अपने तीतरड़ी नामक

ग्राम में एक प्राचीन मंदिर की प्रतिष्ठा करके श्री सिया रामजी की मूर्तियाँ पधराईं। आप द्वारा कई सदावृत, पाठशाला और औषधालय आदि स्थापित हैं। सबसे विशेष सौभाग्य की बात यह है कि आपको अपने काका राजर्षि श्री महाराज चतुरसिंहजी के पद रज में लुण्ठन का कई वर्षों तक सौभाग्य प्राप्त रहा और उनका वरद हस्त सतत आपके मस्तक पर विद्यमान है; ऐसा आप अनुभव करते हैं। राजर्षिजी की ही अनुकम्पा से "अलख आश्रम के सन्त, प्रज्ञा चक्षु निज स्वरूप महात्मा, श्री नारायण स्वामी, श्री कृष्णाश्रमजी महाराज प्रयाग वाले, अवधूत बाबा और दादा महाराज जैसों की अपने को सकुटुम्ब चरण धूलिसे मस्तक रंजित करने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ है। संक्षेप में यदि यह कह दिया जाय कि इस युग के आप उत्साही तथा कर्मठ समाज सुधारकों में अपना विशेष स्थान रखते हुए प्राचीन संसक्रुति के पोषक एवं सदाचारी पुरुष हैं तो कोई अत्युक्ति न होगी।

आप के दो विवाह हुए हैं। प्रथम रास (मारवाड़) के ठाकुर श्री फ़तहसिंहजी की एक मात्र पुत्री सज्जन कुमारी। द्वितीय कुशलगढ़ के महाराव श्री रणजीतसिंहजी की ज्येष्ठ पुत्री गोवर्द्धन कुमारी। प्रथम पत्नी से क्रमशः कल्यान कुमारी जिनका शुभ विवाह बोरी ठिकाना (मध्यभारत) के ठाकुर जीतसिंहजी से हुआ, जिनके एक कन्या अभी हुई है। कुंवर नरेन्द्रसिंहजी, कुंवर नारायणसिंहजी और कुंवर सुरेन्द्रसिंहजी। द्वितीय पत्नी से ज्येष्ठ श्री सत्यनारायण चरण शरणसिंहजी, (भीमसिंहजी) कुंवर मानसिंहजी, कुंवर पृथ्वीसिंहजी और रत्नकुमारी उत्पन्न हुए। कुंवर भीमसिंह जी का शुभ पाणिग्रहण नीमाज (मारवाड़) के ठाकुर उम्मेदसिंहजी की ज्येष्ठ तनया प्रेमकुमारी से हुआ जिनके कुक्ष से विक्रम संवत् २००८ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को एक चिरञ्जीव भंवर रत्न श्री ध्रुवनारायण सिंह का जन्म हुआ। कुंवर मानसिंहजी का शुभ विवाह, सेणधरी (मारवाड़) के ठाकुर भवानी सिंहजी की एक मात्र पुत्री रसाल कुमारी के साथ हुआ। जिनके कुक्ष से गत मास ही श्री देवहुति कन्या रत्न का जन्म हुआ।

महाराज शिवदान सिंहजी के तीन लघु भ्राता हैं, जिनके नाम क्रमशः महाराज प्रताप सिंहजी, जिनको वर्तमान महाराणा साहब ने भूपालगढ़ नामक ठिकाना प्रदान किया और इनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् भगवत सिंहजी को गोद लेकर मेदपाट का उत्तराधिकारी नियुक्त किया, आपके (म० प्रतापसिंहजी के) दो पुत्र और एक कन्या हैं। द्वितीय भ्राता महाराज हमीरसिंहजी तथा तृतीय महाराज मेजर उदय सिंहजी हैं जिन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध में मेवाड़ की सेना के साथ मिश्र आदि देशों में जाकर युद्ध कर ख्याति प्राप्त की है।

अब हम हमारे चरित्र नायक राजर्षि महाराज श्री चतुरसिंहजी का यथा बुद्धि कुछ परिचय देकर अपनी लेखनी को पवित्र करते हैं :—

राजर्षि श्री चतुरसिंहजी का शुभ जन्म विक्रम संवत् १९३६ की माघ कृष्णा चतुर्दशी सोमवार को हुआ था। आप का शुभ विवाह शेखावाटी अन्तर्गत छापोली नामके ठिकाने के शेखावत ठाकुर की सौभाग्यशालिनी कन्या लालकुमारी से हुआ था। इनके दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। एक तो बाल्यकाल में ही स्वर्ग वासिनी होगई, और द्वितीय जिनका नाम सायर कुमारी था विजयनगर के रावजी श्री हमीरसिंहजी से ब्याही थीं। इनका भी देहावसान विवाह के एक वर्ष के अन्दर ही होगया। राजर्षि महाराज श्री की धर्म पत्नी का भी परलोक वास राजयक्ष्मा से होगया।

राजर्षिजी में शैशव काल से ही संसार से उपरामता की झलक पाई जाती थी। बचपन से ही वे हर एक संसारी प्रश्नों को आध्यात्मिक कसौटी पर कसते आरहे थे और उसकी निरर्थकता को शीघ्र नाप कर तथ्य निकाल लेते थे। उस छोटी आयु में भी आपने श्री हनुमान पंचक और शेष चरित्र जैसी पुस्तक की रचना की थी। आप मद्य-मांस, हिंसा आदि के वातावरण के बीच रहते हुए भी इनसे जल कमलवत् रहते थे। आपको पुस्तकें पढ़ने में बड़ी अभिरुचि थी। हिन्दू धर्म के वेद-वेदान्त शास्त्र, उपनिषद्, पुराण और सहस्त्रों सनातन धर्म की पुस्तकों के अतिरिक्त बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख और जैन, आदि धर्मों के ग्रन्थ भी आपने पढ़ लिए थे। आप संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी और उर्दू के ज्ञाता थे। आपकें पास पुस्तकालय में अनुपम पुस्तकों का संग्रह था।

यों तो गृहस्थ जीवन में भी आपका अधिक समय साधु संगति, पुस्तकावलोकन एवं आत्मचिंतन में ही व्यतीत होता था, किन्तु पत्नी के स्वर्ग वासी होने के उपरान्त तो आपने अपने जीवन को सारे समय के लिए सर्वाङ्ग रूप से परमार्थ की ओर ढाल लिया।

एक बार आप परमतत्त्व की अभिलाषा से नर्मदा में मिलने वाली कावेरी नामक सरिता के तट पर निवास करने वाले महात्मा श्री कमलभारती महाराज के चरणों में जा पहुंचे तो उन्होंने आदेश दिया कि तेरे मेवाड़ में ही बाठरड़ा जागीरदार के भाई लक्ष्मणपुरा ठाकुर श्री गुमानसिंहजी ब्रह्मज्ञाता, योगीवर्य हैं; उनसे जाकर मिलो, वे तुमको राजयोग की दीक्षा देंगे। अतः राजर्षि महाराज चतुरसिंहजी वहाँ से लौट कर लक्ष्मणपुरा पधारे और अपने को गुरु गुमान के चरणों में समर्पित कर दिया। बहुत काल तक गुरुदेव के चरणों में रहकर उनकी शिक्षा-दीक्षा में बड़े कठिन परिश्रम के साथ राज राजेश्वर योग का साधन किया।

तत्पश्चात् साधन की पक्वता के लिये कोई स्वस्थ, सुलभ, एकान्त प्रदेश की गवेषणा में आपने देसणोक, वृन्दावन, सुखेर, शिवरती की वाड़ी, पुष्कर, भीलवाड़ा, राधाकुण्ड आदि

स्थानों में निवास किया। आपने अपने वृद्ध पूज्य पिता महाराज सूरतसिंहजी की अहर्निश सेवा की तथा उनके साथ चारों धाम, सप्तपुरी तथा ब्रज यात्रा की थी। जब उन्होंने (पिता श्री ने) श्री वृन्दावन धाम में यह भौतिक शरीर विसर्जन किया उस समय आप वहाँ उनकी सेवा में ही तल्लीन थे। इसके बाद आप विभाण्डक के पुत्र श्रृंगी ऋषि का वन जो उदयपुर से उत्तर पूर्व सोलह माइल की दूरी पर अवस्थित है; वहीं पर नउवा नामक ग्राम से कुछ दूर कुटी बनाकर रहने लगे। यहीं पर वि० सं० १९७८ पोष शुक्ला तृतीया को आपको आत्म साक्षात्कार हुआ। उसी स्थिति में आपसे अलख पच्चीसी, तुहिनाष्टक और अनुभव प्रकाश नामक पुस्तकें लिखी गईं।

आप मेवाड़ी साहित्य के वाल्मीकि थे; इस भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना करके इसे समृद्ध और गौरव शालिनी बनाया। ये अपनी जागीर फलासिया की आमदनी में से अपनी सीमित आवश्यकता पूर्ति के अनुसार कुछ भाग रख कर, बाकी रकम अपने प्रजा जन को किसी न किसी रूप में वितरित कर दिया करते थे। आपकी परिचर्या में वैतनिक रूप में रत्ता, घनकुटा, उदचा, रूपा, कान्या आदि रहते थे।आपने इनके नाम पद्यों में लगाकर इनको भी अमर कर दिया। आप आशु कवि होने के साथ साथ समस्या पूर्ति बड़े रुचिकर ढंग से करते थे। पातञ्जल योग सूत्र आपको अत्यन्त प्रिय था, इस पर आपने चार मेवाड़ी भाषा और एक खड़ी बोली में टीका लिखी और इस पांच भौतिक शरीर को त्यागने के तीन दिन पहले जब तक थोड़ी बहुत भी देह की शक्ति रही तब तक लिखते ही रहे; उक्त योग सूत्र की अन्तिम टीका शरीरान्त होजाने से अधूरी ही रह गई।

पूज्य चरण चतुरसिंहजी के समकालीन महात्माओं में श्री सुदामाजी जिनका जन्म नाम देवरामजी था, श्रीचिलपिलशाह, श्री बलवन्तसिंहजी भैया साहब, श्रीनारायण स्वामी, पूज्या भूरी बाई तथा श्री कीकाजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनसे आपकी विशेष आत्मीयता थी।

राजर्षिजी ने वि. सं, १९८६ आषाढ़ कृष्णा नवमी के प्रातः नो बजे इस पांच भौतिक नश्वर शरीर को त्याग कर अनिवर्तन धाम को प्राप्त किया। देह त्याग के पूर्व आपने एक पद बनाया, जिसके अंतिम चरण इस प्रकार हैं :—

"चतुर चोर चाकरी रो पण आखिर में अपणाय लियो।
थेंही थारो काम कियो"।। आदि।

महाराज श्री ने इस परम तत्व प्राप्ति की क्रियाओं को भक्ति, योग, सांख्य, ज्ञान, दर्शन,

तर्क, मीमान्सा और विभिन्न मत पन्थों के द्वारा भली भाँति समझ लिया था। वे जिस साधक को जिस योग्य समझते थे तदनुसार ही प्रवृत्त करते थे। वे गुरु हो दीक्षा आदि का ढकोसला न रचकर जिज्ञासु को एक मित्र की तरह रख कर बड़े ही अनुराग से, विशेष कर प्रश्नोत्तर द्वारा ही तत्व को उसके हृदयंगम कर देते थे। आप आज्ञा किया करते थे कि "जिस मुमुक्षु में कोई भी साधन करने की योग्यता न भी हो, और विश्वास की कमी हो तो भी यदि वह नाम जप पर आरूढ़ हो जाय तो सब कठिनाइयों को सरलता से पार करके परम योगियों की गति को प्राप्त कर सकता है। यह तथ्य डंके की चोट सत्य है। नाम-जप, शुद्ध-अशुद्ध, भाव-कुभाव किसी भी स्थिति में सतत लिया जा सकता है"।

आप द्वारा रचित पुस्तकें निम्न प्रकार हैं :–

(१) श्री पातञ्जल योग सूत्र चार मेवाड़ी भाषा और एक खड़ी बोली की टीका सहित।
(२) श्री मद्भगवद्गीता अठारहों अध्याय मेवाड़ी में समश्लोकी सारदर्शावणी और गंगाजळी टीका तथा भावार्थ भागीरथी टिप्पणी सहित।
(३) श्री मानव मित्र, राम चरित्र। (मेवाड़ी भाषा)
(४) श्री तुहिनाष्टक (खड़ी बोली)
(५) श्री चतुर चिन्तामणी (तीन भाग)
(६) श्री अलख पच्चीसी (मेवाड़ी भाषा)
(७) श्री चन्द्रशेखराष्टक। (समश्लोकी मेवाड़ी भाषा में)
(८) श्री महिम्न स्तोत्र। (समश्लोकी मेवाड़ी भाषा में)
(९) श्री हनुमत् पंचक। (खड़ी बोली में)
(१०) श्री परमार्थ विचार, भाग सात। (मेवाड़ी भाषा में)
(११) श्री सांख्य कारिका। (मेवाड़ी भाषा में)
(१२) श्री सांख्य तत्व। (मेवाड़ी भाषा में)
(१३) श्री शेष चरित्र (वृजभाषा में)
(१४) श्री अनुभव प्रकाश
(१५) श्री चतुर प्रकाश (फुटकर कविता संग्रह)
(१६) लेख संग्रह।

उपर्युक्त पुस्तकों में कुछ पुस्तक अभीतक अप्रकाशित हैं।



ॐ

श्री गीताजी रे पे'ली री वात

अणीं देश पे आगे एक भरत नाम रा बड़ा प्रतापी राजा व्हिया हा। वणा भरत रा वँश में एक शंतनु नाम रा राजा हस्तिनापुर पे राज करता हा। वणारे सात बाळक व्हे व्हे ने परा गिया। छोटो ही छोटो आठमो बालक रियो वणी रो नाम देवव्रत व्हियो। वणी बाळक ने छोटी अवस्था में ही मेल ने वणी री माँ भी परी गी। अणी न मायड़ा एका एक बाळक पे राजा शन्तनु घणो मोह राखता हा। धीरे धीरे अणी-बाळक री म्होटचार अवस्था आवा लागी ने राजा री अवस्था ढळवा लागी। एकदन राजा शंतनु शिकार खेलवा गिया। वठे नदी रे नखे फरताँ फरताँ वणा एक रुपाळी छोरी ने देखी ने वणा रो मन वणी शूँ व्याव करवा रो व्हे गियो। वा एक नावड़्या रा पटेल री बेटी ही। राजा वणी रा बाप नखे जाय ने वीने माँगी पण वणी छोरी रो बाप साफ नट गियो के आप राजा हो तो भी हो दाना। के'वे है के 'घर हाण दीजे पण वर हाण नी दीजे'। फेर आप रे म्होटचार कुँवर है। काले राज तो वो ने वणी रा बेटा करेगा ने म्हारी बेटी रे जो बाळक व्हेगा वी वणाँ रा हुकम में पराधीन रे'वेगा। अणी वच्चे तो नावड़्या रा छोरा ने देवा शूँ म्हारी बेटी आपणी कबीरी कर खायगा ने सुखी रे,वेगा। या वात शुण राजा उदाश व्हे मेलाँ में परा गिया।

पिता ने उदास देख वणाँ रे कुँवर शारी वात रो पतो चलाय पोते हीं रथ में बैठ वणी पटेल नखे जाय ने कियो के पटेलाँ, थाणी वेटी ने म्हारी माँ कर दो ने थाँ म्हारा नानाजी वण जावो। थाँने जो भे'म व्हे के म्हारा दोयता ने राज नी मलेगा, तो लो म्हूँ प्रण करूँ हूँ के म्हूँ म्हारा बाप रा राजमूँ फूटी कोड़ी भी म्हारी जाण ने नी लूँगा। अन्न ने वस्त्र, खावा पे'रवा जतरो थाणां दोयता री चाकरी करने लेवूँगा और म्हारा वंश रा भी म्हारी नाईं ज थांणा दोयता रा वंशरी चाकरी

करेगा। या शुण ने वणी पटेल कियो के आपणा ही मन री शाख नी देवाय जदी आखा वंश री शाख कूँकर देणी आवे जदी कुँवर कियो के म्हारा वंश री शाख भी लाग जावे जदी तो थें थाणी बेटी दे दोगा के नी। जदी वणी कियो के अणी में जो म्हारो शाँश धाप जावे तो म्हूँ म्हारी बेटी देवा ने राजी हूँ। जदी वणी कुँवर बठे ही चाँद शूरज नें शायखी कर ने यो प्रण कीधो के जीवूँ जतरे अणी जन्म में कणी भी लुगाई शामो नी देखूँगा अर्थात् आठ ही तरे' रो शील व्रत अखंड पाळूँगा। वणी दन शूँ ही अणी देवव्रत कुँवर रो नाम भीष्म पड़ गियो, क्यूँ के अश्यो कठिन प्रण करे वो संस्कृत में भीष्म वाजे है। यूँ अणी भीष्म कुँवर वणी छोरी ने लाय ने बाप ने परणाय दी दी।

अणा राजा रे अणी छोटी राणी शूँ भीं दो कुँवर व्हिया। वणा रा नाम चित्रवीर्य ने विचित्रवीर्य हा। राजा शंतनु अणा दो ही भायाँ नें छोटी अवस्था में हीज छोड़ ने चल गिया हा सो भीष्म जी हीज दो हीं भायाँ ने उछेर ने म्होटा कीधा। अणा में शूँ चित्रवीर्य तो गंधर्वां रा झगड़ा में काम आय गियो ने विचित्रवीर्य रियो वणी ने भीष्मजी दो व्या'व कराया, पण यो भी लुगायाँ में वत्तो रे'तो हो सो खेण रो रोग व्हे ने ओछी उमर में हीज मर गियो। अणी रे एक राणी रे तो धृतराष्ट्र नाम रो बेटो व्हियो ने एक पाँडु नाम रो व्हियो। अणा शिवाय अणी विचित्रवीर्य रे एक पाशवान रे भी बेटो व्हियो वणी रो नाम विदुर व्हियो। धृतराष्ट्र, बड़ो बेटो, जन्म शूँ ही आँधो हो जीशूँ राज वणी रो छोटो भाई पाण्डु करतो हो। अणी पाण्डु भी दो व्या'व कीधा हा। वणा में बड़ी श्री कृष्ण भगवान् री भुवा ही। वणी रे तीन कुँवर व्हिया। अणा में सब शूँ बड़ो युधिष्ठिर, वीशूँ छोटो भीम ने वणी शूँ छोटो अर्जुण हो। दूजी राणी रे दो जोड़ला बाळक व्हिया वणा ने नकुल ने सहदेव के'ता हा। ई पाँच ही पाँडु रा बेटां व्हेवा शूँ पाण्डव वाजता हा। पाण्डु थोड़ी उमर में ही पाँच ही छोटा छोटा बाळकाँ ने छोड़ ने चल गियो, ने छोटी राणी भी वी रा दो ही बाळक बड़ी शौक ने सोंप ने सती व्हे गई। आँधा धृतराष्ट्र रे शो बेटा व्हिया। अणारे बड़ावा में एक कुरु

नाम रा राजा व्हिया हा, ने ई शो ही पाटवीं रा हा जीं शूँ कौरव वाजता हा। पाण्डव बड़ा धर्मवाळा हा। वणा में भी वड़ो युधिष्ठिर तो धर्म रो हीज अवतार हो। कौरव पापी हा, वाँ मे भी वड़ो दुर्योधन तो कळेश रो हीज रूप हो। ई कौरव पाण्डव काका बाबा रा भाई हा ने भेळा ही रमता खेलता हा पण माहो माहे अणा रे खार घणो हो, क्यूँ के पाण्डवाँ रो तो बाप राज करतो हो जीं शूँ पाण्डव भी बाप रो राज माँगता हा, ने कौरवाँ रो बाप आँधो हो तो भी हो बड़ो जी शूँ कौरव के'ता के बाप आँधो व्हियो तो कई म्हें तो आँधा नी हाँ राज तो म्हाणों है। भींम ने दुर्योधन रे तो अशी अंटश पड़ गी ही के एक ने दूजो देख्याँ नी वाँछतो हो। कौरवाँ, पाण्डवाँ ने मारवा रा घणा उपाय कीधा पण आखर राम राखे वी ने कूण मारे। यूँ करताँ करताँ शारा ही बड़ा व्हे गिया। जदी अणा री लड़ाई मटावाने लोगाँ इन्द्रप्रस्थ नाम रो परगणो पाण्डवाँ ने देवाय दीधो ने पाण्डवाँ रो राज हस्तिनापुर कौरवाँ रे हीज रियो। परन्तु पाण्डव जोगा हा ने अणा रे श्रीकृष्ण भगवान् रीं मदद व्हेवा शूँ अणा नराई राजा ने जीत जीत ने आपणो राज नरोई वधाय लीदो। यूँ पाण्डवाँ रो वधतो प्रताप दुष्ट दुर्योधन ने नी खट्यो। वणी जुवाँ में छळ शूँ अणा पाण्डवाँ रो शारो राजपाट जीत ने घणो अनादर कीधो। पछे लोगाँ रा शमझावा शूँ या कोल कीधी के याँ पाँच ही पाँडवाँ ने लुगाई शेतीं बारा वरष रो वनवास (देश निकाळो) देणो ने तेरमाँ वरष में छुप ने रे'वे। जो ठावा व्हे जावे तो फेर बारा वरष वन में रे' ने तेरमें वरष छुप ने रे'वे यूँ करचाँ ही जावे, पण तेरमें वरष ठावा नी व्हे तो पाछो याँ रो इन्द्रप्रस्थ रो परगणो दे देणो। अणी कोल माफक घणा घणा दुख देख ने पाण्डव वन में रिया ने तेरमें वरष विराट नाम रा देश में वेश बदल ने रिया पण तो भी पापी कौरवाँ कियो के थें तो तेरमों वरष पूरो व्हेता पे'ली ही ठावा व्हे गिया जीं शूँ फेर यूँ ही तेरा वरष वन में रे'वो। पाण्डवाँ कियो के तेरा वरष केड़े म्हें ठावा व्हिया जीं शूँ अबे म्हाणा परगणा पाछो म्हाँने दे दो। अणी वातरी नरी झोड़ चाली। आखर शारा ही शमझाय थाक्या पण लड़ाई वना यो न्यावटो शुळझ तो नीं दीख्यो। पाण्डव तो पाँच गाम लेने ही राजीपो करवाने

त्यार व्हे गिया हा । वी जाणता हा के कुटुम्ब कलेश ज्यूँ मटे ज्यूँ ही आछो पण कौरव तो शुई री अणी टके वतरी भी धरती देवा ने आरी नी व्हिया। अबे तो लड़ाई री नक्की ठे'र गी । दोई कानी री फौजाँ कुरुक्षेत्र नाम रा तीर्थ में यो युद्ध करवा वास्ते जाय जाय ने एकठी व्हेवा लागी। पाण्डवाँ री सात अक्षौहिणी फौज ही, ने कौरवाँ रे इग्यारा अक्षौहिणी ही। पाण्डवाँ रा आछा सुभाव शूँ ने धर्म री वात व्हेवा शूँ ने शगा शगपण शूँ नराई राजा तो पाण्डवाँ री कानी शूँ लड़वा आय गिया। यूँ ही नराई कौरवाँ रो राज व्हेवा शूँ ने वणा रो अन्न खावा शूँ तथा वणा शूँ मलता थका सुभाव रा व्हेवा शूँ भी वणा री कानी व्हे गिया।

अणी लड़ाई ने देखवा री राजा धृतराष्ट्र रे भी मन में आई पण आँधो व्हे वा शूँ वो देख नी शकतो हो सो संजय शारी वात ईं ने वाकब कर देतो हो। व्यास जी रा वरदान शूँ अणी संजय ने हस्तिनापुर में ही शारी वाताँ दीख जाती ही। अणा कौरव पाण्डवाँ री ववरा वार शारी वात महाभारत नाम री पोथी में वेदव्यास जी लिखी है। यो महाभारत पाँचमों वेद है। ईं में लड़ाई री वगत अर्जुण घबराय गियो जदी श्री कृष्ण भगवान् वणी ने उपदेश कीदो वणी उपदेश रो नाम भगवद्गीता पड़्यो। या गीता तो जाणे ज्ञान रो भण्डार ने वेदाँ रो सार हीज है।

समश्लोकी सारदर्शावणी टीका री

भूमिका

(महाराज साहब श्री चतुरसिंहजी लिखित)

दोहा

वचन अतीता होय के, भव की भीता खोय।
गीता जननी गोद में, रहो नचीता सोय ॥

श्री गीताजी रा सात शें श्लोक है, अणी में भी सात शें श्लोक है गीताजी रा जतरमाँ अध्याय रा जतरमाँ श्लोक रो ज्यो मतलब है अणी में भी वतरमा अध्याय रा वतरमा श्लोक रो वोहीज मतलब है। गीताजी रो ज्यो श्लोक जणी ढाल शूँ वंचे, अणी रो भी वो श्लोक वणीज ढाल शूँ वंचे है। अर्थात् या श्री गीताजी हीज है,केवल वोली मेवाड़ री है। अणी में जठे खोट होवे वठे सज्जन सुधार लेवेगा। गीताजी रे वास्ते तो के,वा री ज्यादा जरूरत नी है क्यूँके या सब ही जाणे है के गीताजी को वर्णन भगवान् कर रिया है, ने गीताजी भगवान् को वर्णन कर रिया है ।

दोहा

कोड़ उपाय न ले शके, रावण रूपी काम।
गीता सीता रे जशी, पावे आतम राम ॥ २ ॥

नोट

दे'ली तो भूमिका लिखवा रो विचार नी हो क्यूँ के जगत्प्रसिद्ध गीतारे वास्ते कई शमझावणो, ने कीं ने शमझावे, ने शमझे वी तो वना कियाँ ही शमझ जावे, ने नी शमझे वी शमझाया शूँ भी नी शमझे, ने आपणी आपणी बुद्धि माफक सब ही शमझे, ने ईं पे कींरो जोर चाले? तो भी दस्तूर माफक शरू में भूमिका लिखी जीं रो भाव यो है के गीताजी रे वास्ते मनखां ने वाकब करणा; जींशूँ वणा रो सन्देह मिट जाय।

भूमिका में पे'लो दूहो है जींरो मतलब गीताजी रा अनुभव रो है अश्यो अनुभव व्हेणो चावे। अन्त रा दूहा रो मतलब यो है के अश्यो व्हे वो गीताजी ने जाण शके है।

गीताजी री या समश्लोकी सारदर्शावणी टीका है। ईंने लिखवा में शोळा तो संस्कृत री ने पांच भाषा री टीका रो आशरो लीधो है। खास करने ज्ञानेश्वरी और वामनी रो आशरो लीधो है। × × × × अणांरो अन्तःकरण शूँ उपकार मानूँ हूँ। मूल रे साथ हीज रे'वा शूँ ईं में सब आचार्यां को मत आय गियो है। जठे सब रो मत नी आवतो दीख्यो वठे प्राचीन व्हेवा शूँ शंकाचार्य का भाष्य आड़ी झुकणो पड़चो, पण जठा तक व्हे शक्यो यूँ कम हीज व्हियो है। × × × × ईं में यो विचार राख्यो है के जतरी सरलता शूँ मेवाड़ी भाषा में श्लोक रो भाव आय जाय वतरी सरलता शूँ लावणो। ईं विचार शूँ या लिखी गई है, ने ईंज विचार शूँ देखवा री प्रार्थना है। दूज्यूँ तो महाभारत में हीज लिख्यो है के स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् भी गीता ने के'ने पाछी दूजी दाण यूँ री यूँ नी के' शक्या; जदी औराँ री कई गणती?



ॐ

श्रीगणेशायनमः ।

अथ श्री भगवद्गीता प्रारम्भः ।



प्रथमोऽध्यायः ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

अथ समश्लोकी सारदर्शावणी टीका ।

ॐ पे'लो अध्याय प्रारंभ ।

धृतराष्ट्र पूछ्यो ।

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र, माँय जी लड़वा मिल्या ।
म्हारा ने पाण्डुरा बेटा, पछे फेर कर्‌यो कई ॥१॥

अथ गंगाजळी की टीका प्रारम्भ

ॐ पे'लो अध्याय प्रारंभ

गीता गंगारी करी, गंगोत्तरी गुमान ।
चतुर करी गंगाजळी, आपण घट अनुमान ॥

धृतराष्ट्र[1] कियो के हे संजय! म्हारा ने पाण्डु रा[2] बेटा कुरुक्षेत्र[3] नाम रा तीर्थ में लड़वा रे वास्ते भेळा व्हिया हा सो पछे वणा कई[4] कीधो ॥१॥

संजय उवाच ।

दृष्ट्वा तु[5] पाण्डवानीकं, व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य, राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

संजय कही

पाण्डवाँ री वड़ी भारी, देख फौज सजी थकी ।
द्रोणाचार्य नखे जाय, दुरयोधन यूं कियो ॥२॥

अथ भावार्थ भागीरथी टिप्पणी प्रारम्भ ।

१—धृतराष्ट्र रथ में वैठवावाळो आंधो ने पुत्रां रा रागद्वेष में उळझरियो थको, रथ ने हांकवा वाळा शूझता (दिव्यदृष्टि प्राप्त) संजय ने पूछे; यूं ही अर्जुण भी रथ में वैठवा वाळो मोहान्ध व्हे, रथ हांकवा वाळा श्रीकृष्ण-दिव्यज्ञान सम्पन्न-ने पूछे है; यूं ही नी शमझे वी (जड़) गुण शमझणा चैतन्य शूं शमझे है-यो भाव है ।

२—पाण्डु रा हीज, 'चणं' शूं कियो है । 'मुख्य लड़ाई रो कारण वी हीज है' यो राजा रो भाव है । आपणो पक्ष सांचो हीज दीखे । फेर वो तो आंधो है ।

३—कुरुक्षेत्र तीर्थ में पुण्य करवा भेळा व्हे ज्यूं समर-यज्ञ करवा भेळा व्हिया है सो लड़ेगा ही ; क्यूंके यो उत्तम कर्म मान्यो है ।

अविमुक्त स्थान ने भी कुरुक्षेत्र के' है, "देवासुर संग्राम ही यो युद्ध है, मनख मात्र ही में यो व्हेतो रे' है", यूं रूपक झूंठो नी पण सत्य ही है । रूपक तो लौकिक दृष्टि रो है, क्यूंके यथार्थ वस्तु ने और तरे' शूं शमझणो रूपक है, ज्यूं पंचतत्वां ने मनुष्य आदि मानणा । ईंने लोकतन्त्र के' है । वास्तव में सात्वत-तन्त्र (भक्ति) षष्ठितन्त्र (सांख्य) आदि सर्व तन्त्र लोकतन्त्र शूं छुड़ावाने कांटा शूं कांटो काढ़े ज्यूं है । वास्तविक में तो है ज्यो है । वठे सर्व तन्त्र स्वतन्त्र है । सब वोली रा भेद है ।

४—कई कई कीधो सब विगतवार के' यो भाव है । संक्षेप तो पे'ली कियो ।

५—"दृष्ट्वातु" रो अर्थ है 'देखतां ही' ईंशूं दुर्योधन री आतुरता सूचित व्हे है । वणी ने पाण्डवां रो लड़ाई करणो असंभव दीखतो हो पण फौज ने जमी थकी देख घवरायो ।

संजय कियो के जदी पाण्डवां री फौज ने मोरछा बाँध ने त्यार व्ही थकी देख ने राजा[1] दुर्योधन झट द्रोणाचार्य[2] नखे जाय ने यूँ के'वा लागो के —

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

पाण्डवाँ री वड़ी फौज, देखो आचार्य आप या ।
शजाई आप रे चेले, धृष्टद्युम्न महामती ॥३॥

हे गुरुजी महाराज! पाण्डुरा[3] बेटाँ[4] री या म्होटी[5] फौज देखवा में तो आवे । अणी ने घणे शमझणे आपरे चेले[6] ने राजा द्रुपद रे बेटे जमाई है, जीशूँ अर्ज करूँ हूँ ॥३॥

अत्र शूरा महेष्वासा, भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

ईं में धनुषधारी ई, भीम अर्जुण रे जश्या ।
द्रौपदी रो पिता और, युयुधान विराट भी ॥४॥

१—बाप बैठां ही उद्दण्ड राजा बण गियो । अथवा—आप तो आंधा व्हे वाशूँ राजा नी वण्या पण वो शूझतो व्हे ने राज रो दावो कर लड़ाई रो कारण व्हियो । राजा है जीं शूँ आपने नी गनारे है ।

२—बातचीत में दबता पणा ने छुपावे पण (द्रोणाचार्य रो) आशरो लेणो पड़्यो । सबाँ रा गुरु नें खार देवाय ने जीतणो-यो भाव है ।

३—पांडु पुत्र शूँ व्यङ्ग्य शूँ के'वे के पांडुरा भी बेटा नी है, जदी कई माँगे ? पांडु रा व्हे तो भी याँ रो कई हक ?

४—छुट भैय्या है जी शूँ झूठा है ने लड़े है, या बात तो सर्व सम्मत है; क्यूँ के द्रोण, भीष्म आदि वणारी आड़ी नी रिया, अणारी मुख्य शाखा रो नाम कौरव रियो वी पाँडुरा नाम शूँ बाज्या, अणारे हस्तिनापुर राजधानी ठेठरी री', वणारे इन्द्रप्रस्थ री', पण पांडवां ने पण पाँती छुट भैय्या ज्यूँ नी' पण वत्ती सबाँ ही देवाई, ने वा होज ओछी पांच गाम मात्र ई माँगे सो भी नी देवा शूँ' ने दगो करवा शूँ दुर्योधन पापी बाज्यो ।

५—थोड़ी शी फौज आप शरीखा रे शामी लावणो आप रो अनादर है । 'द्रुपद पुत्र' 'तव-शिष्य' शूँ घोर विरोधी है या याद देवावे है । 'बुद्धिमान्' शूँ आचार्य री भूल याद देवावे है के ईं रा बाप ने छोड़ दीधो, ईं ने विद्या दीधी, या देख अबे तो यूँ करो मती ।

६—कृतघ्न, गुणचोर, शूँ मतलब है ।

अणी फौज में भीम ने अर्जुण रे बरोबरचा म्होटा म्होटा धनुष राखवावाळा, ई ई शूरा हैः—
युयुधान, विराट, ने घणा ने नी[1] गनारे जश्यो द्रुपद ॥४॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥

धृष्टकेतु तथा काश्य; चेकितान महीपति ।
शिविपुत्र नरश्रेष्ठ, पुरुजित् कुंतिभोज भी ॥५॥

धृष्टकेतु, ने चेकितान, ने बळवान् काशी रो राजा, ने पुरुजित्, ने कुन्तिभोज, ने मनखां में सरा'वा जश्यो शिवि रो बेटो ॥५॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

उत्तमौजा युधामन्यु, अभिमन्यु पराक्रमी ।
पाँच ही द्रौपदी पुत्र, शाराही ई महारथी ॥६॥

ने टणको युधामन्यु, ने बळवान् उत्तमौजा, सुभद्रा रो बेटो, ने द्रौपदी रा बेटा, ई शघळा ही नराई ने नी गनारे जश्या है ॥६॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमिते ॥ ७ ॥

आपाँ रे माँय भी नामी जाणजे द्विजराज ई ।
मुखिया फौज म्हारी रा, आपने जाणवा कहूँ ॥७॥

अबे हे उत्तम ब्राह्मण![2] आपणे माँय भी जी टाळमां टाळमां म्हारी फौज रा मुखिया है वणा ने म्हूँ आपरे ध्यान में रे'वे, अणी वास्ते आपने याद देवावूँ हूँ ॥७॥

१—यो विशेषण सबां रे लाग शके है ।
२—उत्तम ब्राह्मण कें'वा शूं वठी तो एक भी ब्राह्मण नी है, अठी हार न्हे तो ब्राह्मणां री भी शामल ही शमझणी, क्यूं के वणारा मुखिया आप आय गिया, यो भाव है ।

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च, कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

आप, भीष्म तथा कर्ण, कृप जो समितिंजय।
विकर्ण सोमदत्ती ने, अश्वत्थामा जयद्रथ ॥८॥

आप, ने भीष्म, ने कर्ण, ने रणजीत कृप, ने अश्वत्थामा, ने विकर्ण, ने सोमदत्त रो वेटो, ने यूँ ही ॥८॥

अन्ये च वहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

और भी वीर ई त्यार, म्हारा पे जीव वारवा।
शस्त्र विद्या घणी जाणे, सवी कुशल युद्ध में ॥९॥

और[1] भी नराई शूरमां म्हारे वास्ते जीव झोंकवा ने त्यार है ई शारा ही तरे' तरे' रा आवध वा'य जाणे है और लड़ाई में होंश्यार है ॥९॥

अपर्याप्तं तदस्माकं वलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां वलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

भीष्म री रखवाळी में, आपणी फौज मोकळी।
भीम री रखवाळी में, वणा रे फौज री कमी ॥१०॥

अशी आपणी फौज भीष्मजी री रखवाळी में है, ने नरी[2] है, ने या अणा पाण्डवाँ री फौज भीम री रखवाळी में है, ने थोड़ी[3] है ॥१०॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

मोरछाँ पे रहे गाढ़ा, आपणा आपणा परे।
भीष्म ही री करो रक्षा, सारा ही आप शूरमा ॥११॥

१—अणी में सवाँ री तारीफ कर मन वधायो है।
२—'थोड़ी' भी अर्थ व्हे शके है।
३—'नरी' भी अर्थ व्हे शके है।

अबे आप शघळा ही पांती परवाणे मोरछा पे गाढ़ा रे' ने भीष्मजी[1] री हीज रखवाळी राखो ॥११॥

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

हर्षावता थका वीं ने दाना भीष्म पितामह ।
प्रतापी सिंह ज्यूँ गाज, वजायो शंख जोर शूँ ॥१२॥

अबे तो कौरवां में बड़ा और प्रतापवान भीष्म पितामह, वणी दुर्योधन ने राजी करता थका जोर शूँ ना'र री नाईं गर्ज ने शंख बजायो ॥१२॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च, पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त, स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

जदी तो मादळाँ, वाँक्या, नगारा, शंख, ढोल भी ।
एक साथे वज्या शारा, व्हियो यूँ घोर शोर वो ॥१३॥

वणी शंखरे वाजतां ही एकी साथे नरा ही शंख, मादळाँ, नगारा, ढोल, ने वाँक्या, कौरवाँ री फौज में चार ही कानी[2] शूँ वाजवा लागा अणा रो शब्द घणो भारी व्हे गियो ॥१३॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

मोतियाँ चौकड़ी वाळा, रथ में राजता थका ।
कृष्ण अर्जुण दोयाँ ही, वजाया दिव्य शंख दो ॥१४॥

वणी वगत धोळा[3] घोड़ाँ रा बड़ा रथ में वराज्या थका श्री कृष्ण भगवान्, ने अर्जुण भी आपणा अलौकिक शंखाँ ने वजाय दीधा ॥१४॥

१—"मोरछाँ पे दृढ़ रे'णो ही भीष्मजी री रखवाळी करणो है" यो भाव है ।

२—चौमेर शूँ ।

३—रंग रो वर्णन वैशंपायन जनमेजय रा संवाद में है, यूँ जाणणो ।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

पाञ्चजन्य हृषीकेश, देवदत्त धनञ्जय ।
पौण्ड्रनामा वड़ो शंख, वजायो भीमसेन भी ॥१५॥

भगवान् कृष्ण पांचजन्य नामरा शंख ने वजायो, अर्जुण देवदत्त नाम रा शंख ने वजायो, भयंकर काम करवा वाळे भीम पौण्ड्र नामरो म्होटो शंख वजायो ॥१५॥

अनन्तविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

य्यूँ अनन्तविजैं राजा, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ।
माद्रीपुत्राँ वजाया दो, सुघोष मणिपुष्पक ॥ १६ ॥

कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर अनन्तविजय नाम रो शंख वजायो नकुल सुघोष, ने सहदेव मणिपुष्पक नाम रा शंख ने वजायो ॥१६॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

काशिराज धनुषधारी, शिखण्डी भी महारथी ।
अजीत सात्यकी वीर, धृष्टद्युम्न विराट भी ॥१७॥

म्होटा धनुष वाळो काशी रो राजा, ने वणां शूँ लड़वा वाळो शिखण्डी, ने धृष्टद्युम्न, ने विराट, ने नी हारवा वाळो सात्यकी ॥१७॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥

द्रौपदी रा पिता पुत्राँ, अभिमन्यु सबी जणा ।
आपणा आपणा शंख, वजाया एक साथ ही ॥१८॥

द्रुपद, ने द्रौपदी रा बेटा, ने सुभद्रा रो बेटो; हे राजा! अणा भी आपणा आपणा शंख चार ही कानी शूँ वजाया ॥१८॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ।। १९ ।।

दुरयोधन आदी री, छात्याँ ने चीरतो थको ।
धरा आकाश में लागो, शब्द वो घोर गूँजवा ।।१९।।

वणी शंखाँ रे शब्द जाणे धृतराष्ट्र[1] रा बेटाँ री छात्याँ फाड़ न्हाँखी, ने धरती' ने आकाश रे वच्चे वणीरी भारी गुंजार छायगी ।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।। २० ।।

सावधान ह्विया जाण, दुरयोधन आदि ने ।
शस्त्रां ने खेंचता देख, तोल गाण्डीव आप भी ।।२०।।

अबे धृतराष्ट्र[2] रा बेटाँ ने लड़वा त्यार देख, ने शस्त्राँ रो वा'व व्हेतो देख, अर्जुण भी धनुष ने उँचाय लीधो ।।२०।।

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच ।

सेनयो रुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।। २१ ।।

श्रीकृष्ण ने वणी वेळाँ, वीर अर्जुण यूँ कह्यो ।

अर्जुण कह्यो ।

दोही फौजाँ वचे म्हारा, रथ ने रोक दो हरी ।।२१।।

हे राजा! वणी वगत वणी अर्जुण श्रीकृष्ण भगवान् ने या वात कही—

अर्जुण कही के हे अच्युत भगवान्! म्हारा रथ ने अणा दोही फौजाँ रे वच्चे अतरीक देर ऊभो करदो ।।२१।।

१—दुर्योधन री कानी रा भी अर्थ व्हे शके है ।
२—दुर्योधन री कानी रा भी अर्थ व्हे शके है ।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

देख लूँ जतरे याँने, जुझाराँ ने कश्याक है ।
देखाँ कूण लड़े म्हाँ शूँ, अणी संग्राम में अठे ॥२२॥

के जतरे म्हूँ अणाँ लड़वा रे वास्ते त्यार व्हे रिया है जणा ने धार लूँ, अणी लड़ाई री वगत में म्हने कणाँ कणाँ शूँ लड़णो चावे ॥२२॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

पधारया रण में आज, शूरमाँ ई कश्या कश्या ।
युद्ध में करवा आछो, दुरयोधन दुष्ट रो ॥२३॥

जी अठे दुर्बुद्धि दुर्योधन ने जीतावा रे वास्ते भेळा व्हे ने आया है, ने अबे लड़ेगा वणा ने देखाँ ॥२३॥

संजय उवाच ।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषाञ्च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥

संजय कही :

शुणताँ पाण यूँ के'णो, कृष्ण अर्जुण रो वठे ।
दो ही फौजाँ वचे लाय, रथ उत्तम रोक ने ॥२४॥
भीष्म द्रोणादि शाराँ रे, मूँडा आगे कियो हरी ।
देख ई पार्थ शारा ही, व्हिया कौरव एकठा ॥२५॥

संजय कियो के हे राजा! अर्जुण यूँ कियो, जदी श्रीकृष्ण भगवान् दो ही फौजाँ रे वच्चे भीष्म, द्रोण, ने सब राजा रे मूँडा आगे वणी वड़ा रथ ने ऊभो कर दीधो, ने यूँ हुकम कीधो के हे अर्जुण! अठे अणाँ सब कौरवाँ ने धार ले ॥२४॥२५॥

तत्रापश्यत् स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ २६ ॥

ऊभा देख्या वठे पार्थ, पिता और पितामह ।
पोता, पुत्र, गुरू, मामा, गोठ्या ने भाइबंध भी ॥२६॥

अवे अर्जुण वणा दो ही फौजाँ में लड़वा ने त्यार व्हिया थका ने देखे तो (काका, बावा) बाप, दादा, गुरु, मामा, भाई, बेटा, पोता, हेतू मो'बती (वे'वारी) ॥२६॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥ २७ ॥

शुशरा, मित्र, भी देख्या, दोई फौजाँ वचे वणी ।
शारा ही लागती राँ ने, एकठा देख अर्जुण ॥२७॥

शुशरा, ने गोठ्या हीज आँछळ गूँछळ देख्या । यूँ वणां लागती वळगती राँ ने हीज मरवा मारवा ने त्यार देख ॥२७॥

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥२८॥

घबराय कही वाणी, दया शूँ होय ने दुखी ।
अर्जुण बोल्यो ।
कृष्ण याँ लागती राँ ने, लड़वा त्यार देखने ॥२८॥

वो अर्जुण मोह शूँ घणो हीज अमूझ ने घबरातो थको यूँ के'वा लागो । अर्जुण कियो के हे कृष्ण! अणा लागती राँ ने हीज मरवा मारवा त्यार देख ने ॥२८॥

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

म्हारो तो डील टूटे ने, शूखे है मुख भी अवे ।
देह में धूजणी छूटे, रूम रूम खड़ा व्हिया ॥२९॥

म्हारा संध दूखे है, ने कंठ शूखे है, ने डील धूजे है, ने रूँ रूँ ऊभा व्हे है ।।२९।।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।। ३० ।।

गाण्डीव हाथ शूं छूटे, म्हारी या चामड़ी बळे ।
ठे'रणी भी नहीं आवे, म्हारो जाणे भमे मन ।।३०।।

हाथ में शूँ गाण्डीव धनुष रळकने परो पड़े है । (मुट्ठी शूनी पड़गी है) डील बळे है । म्हारी भती अबे अठे नी ढवणी आवे है । जाणे डो'ळो उथले ज्यूँ म्हारो मन चक्कर[1] खावे है ।।३०।।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।। ३१ ।।

खोटा शकुन भी दीखे, म्हने ई मधुसूदन ।
मारयाँ शूं लागती रां ने, भलो दीखे नहीं म्हने ।।३१।।

हे कृष्ण! म्हने शकुन भी खोटा दीखे है । लड़ाई में भायाँ ने मार ने म्हने तो कई भी भलाई नी दीखे है ।।३१।।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।। ३२ ।।

चावूं नी राज भी म्हूं तो, नी चावूं सुख जीत भी ।
जीवणो सुख ने राज, आपणाँ काम रो कई ।।३२।।

हे कृष्ण! नी तो म्हारे जीत चावे, नी यो राज चावे, ने नी अश्या सुख चावे । हे गोविन्द! अश्या राज सुख ने ले ने आपाँ कई कराँ, अथवा अश्या जीवा वच्चे तो आपणो मरजाणो ही आछो है ।।३२।।

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।। ३३ ।।

१—गरणेटा

जणाँ रे वासते चावाँ, राज ने सुख भोग भी।
वी तो ई जुद्ध में ऊभा, छोड़ ने धन, प्राण ने ॥३३॥

जणाँ[1] रे वास्ते सुख, राज, ने भोग आपाँ चावाँ वी तो ई जीव पे, ने सब तरे' रा धन पे, पाणी मे'ल ने लड़ाई में मरवा ने ऊभा है ॥३३॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥

पिता, ई पुत्र, ई दादा, कृष्ण! ई गुरु भी अठे।
मामा, ने शुशरा, पोता, शाळा, सम्बन्धि ई सभी ॥३४॥

गुरु, वाप, बेटा, ने दादा, मामा, शुशरा, पोता, शाळा यूँही दोही फौजाँ में एक एक रा लागती बळगती रा है।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोःकिं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

जो ई मारे म्हने तो भी, मारूं यांने कदी नहीं।
त्रिलोकी राज तावे भी, धरा रे वासते कई ॥३५॥

हे भगवान्! त्रिलोकी रो राज हाते लागतो व्हे तो भी म्हूँ तो अणाने मारणो नी चावूँ, जदी धरती रे वास्ते तो अश्यो काम कूँ कर करूँ। ई म्हने मार न्हाँखे तो भलेई मारो, पण म्हूँ तो याने नी मारूँ ॥३५॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

अणाने मार ने कृष्ण, पावांगा म्हां कशी खुशी।
पाप्यां ने मार ने शामां, पापी आंपी वणा अठे ॥३६॥

हे कृष्ण! अणा धृतराष्ट्र रा वेटाँ ने मार ने पछे म्हें कश्यो सुख[2] पावाँगा। अणा पाप्याँ ने मार ने शामाँ आँपी हत्यारा गोत्रघाती हीज वाजाँगा ॥३६॥

१—अठे अभिमन्यु आदि सवां शूँ मतलव है।
२—खुशी व्हेगा कई ?

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

आपां ने जोग नी है या, मारणा बन्धु आपणा ।
भायां ने मार ने आपां, सुखी व्हांगा कणी तरे ॥३७॥

अणी वास्ते म्हाँने म्हाणा भाई-अणा धृतराष्ट्र रा बेटा ने नी मारणा चावे । हे माधव! लागती रा ने मार ने पछे म्हें भीं कूँकर सुख पावाँगा ॥३७॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥

लोभ शूँ होय ने आँधा, देखे नी ज्यो अचेत ई ।
कुळ रा नाश री हाण, पाप यो मित्रघात रो ॥३८॥

भलेई आछो चावा वाळा रो खोटो करवा रो पाप, ने वंश नाश री खोटायाँ, ई तो लोभ शूँ अचेत व्हे रिया है जी शूँ नी देखे ॥३८॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्, ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

आपां ने बणणो चावे, शूझताँ सूरदास क्यूँ ।
कुळ रो नाश रो दोष, चोड़े यो देखता थकाँ ॥३९॥

पण हे जनार्दन भगवान्! आपाँ ने तो कुळ रा नाश री खोटायाँ देखता थकाँ भी अणी पाप शूँ टळवा रो विचार कूँकर नी करणो चावे ॥३९॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

सदाँ रा कुळ रा धर्म कुळ नाश व्हियाँ मटे ।
धर्म नाश व्हियाँ कृष्ण, छावे कुळ अधर्म शूँ ॥४०॥

कुळ नाश व्हेवा शूँ ठेठ शूँ आवती थकी कुळ री धर्म री रीताँ मट जावे है, ने धर्म री रीताँ मटवा शूँ आखो ही कुळ अधर्म में डूब जावे है ॥४०॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ।। ४१ ।।

अधर्म वध जावा शूँ, वगड़े कुळ कामण्यां ।
लुगायाँ वगड़े ज्याँ में, वर्णसंकर नीपजे ।।४१।।

हे कृष्ण! कुळ अधर्म शूँ छाय जावे जदी लुगायाँ रा चाळा भी वगड़ जावे, ने वगड़ी थकी लुगायाँ में वर्ण[1] संकर (दोगला) बाळ बच्चा उपजवा लाग जावे ।।४१।।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।। ४२ ।।

वंश नाशक ने वंश, ई शूँ नरक में पड़े ।
अणारा पितृ भी पाछा, पाणी पिण्ड वना पड़े ।।४२।।

अश्या वर्णसंकर वणी कुळ घाती ने, ने आखा ही कुळ ने नरक में हीज मे'ले है। वणा कुळ घातियाँ रा बड़ावा भी पाणी पिण्ड नी मलवा शूँ स्वर्ग में शूँ पाछा नीचा पड़ जावे है ।।४२।।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ।। ४३ ।।

ई दोष कुळघाती रा, वणावे वर्णसंकर ।
जात रा कुळ रा धर्म, अणा शूँ सव ही मटे ।।४३।।

अणा अतरी वर्णसंकर करवा वाळी खोटायाँ शूँ वणा कुळघातकाँ रा कुळ री ठेठ शूँ आवती रीताँ, ने धर्म, नाश व्हे जावे है ।।४३।।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ।। ४४ ।।

कुळ धर्म मटे ज्याँ रा, मनुष्याँ रा जनार्दन ।
वाँ रा नरक में वास, व्है शुणाँ हाँ सदैव शूँ ।।४४।।

---

(१) स्वतंत्र आचरण करवा शूँ व्है, वी वर्ण संकर वाजे है ।

जणाँ मनखाँ रा यूँ कुळ रा धर्म नाश व्हे जावे वणा रो सदा ही नरक में हीज वास व्हे है। हे कृष्ण जनार्दन! या वात आपाँ ठेठ शूँ बरोबर शुणता आय रियाँ हाँ ॥४४॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

अहो अश्यो महा पाप, करवा त्यार म्हें व्हिया ।
राज रा लोभ शूँ लागा, भायाँ ने मारवा अवे ॥४५॥

जणी में देखजे! फेर आपाँ कश्यो म्होटो भारी पाप करवा ने त्यार व्हे गिया हाँ के राज रा सुख रा लोभ में आय' ने भायाँ रा गळा काटवा लागा ॥४५॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

शस्त्रहीण म्हने जो ई, मारे शस्त्र लियाँ अठे ।
कई तो भी करूँ नी म्हूँ, म्हारे आछो अणी'ज में ॥४६॥

अवे तो ई रण में म्हूँ तो शस्त्र परा न्हाँखूँ, ने ई धृतराष्ट्र रा बेटा शस्त्र खेंचे, ने म्हूँ तो याँ रे शामो वाँको भी नी चोगूँ, ने ई म्हने मार न्हाँखे तो अणी में हीज म्हारे घणो लाभ[1] व्हे ॥४६॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ[2] उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४६ ॥

ॐ तत्सदिति श्री भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

संजय वोल्या ।

यूँ कहे रण में पार्थ, न्हाँख गाण्डीव वाण ने ।
वैठो रथ भड़े ढीलो, शोक शूँ घवराय ने ॥४७॥

१—कुळ-घात रो मनसापाप कीधो वो छूट जावे यो भाव है ।
२—'रथोपस्थ' रथ रो शिवाय रो आशरो (मोड़ो) ऊपर शूँ मे'ल्यो थको ।

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्णार्जुन संवाद में अर्जुन विषाद योग नाम पे'लो अध्याय समाप्त ह्वियो ॥१॥

संजय कियो के हे राजा! अर्जुण यूँ के'ने वणी रण[1]री वगत में धनुष सेती बाण ने न्हाँख, शोक आगे अमूझतो थको रथ में शूँ शरक पाछे (पायदान-खवाशी) में बैठ गियो ॥४७॥

ॐ वो साँचो "ब्रह्म" है यूं श्रीकृष्ण अर्जुण री वात में श्रीमद्भगवान री भाषी थकी उपनिषद में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र रो अर्जुण विषाद (दुःख) योग नाम रो पे'लो अध्याय (खंड) समाप्त (पूरो) ह्वियो ॥१॥



१—जणी वगत पड़्या शस्त्र लेणा चावे वणी वगत न्हाँख दीघा।

ॐ

द्वितीयोऽध्यायः ।

संजय उवाच ।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

ॐ दूजो अध्याय प्रारम्भ ।

संजय कही ।

आँखाँ माँय तळायाँ ने, हिया माँय दया भरी ।
दुःख शूँ यूँ भरचो देख, कह्यो अर्जुण ने हरी ॥१॥

ॐ दूजो अध्याय प्रारम्भ ।

संजय कियो के हे राजा! यूँ अश्या वीर अर्जुण रो जीव, दया शूँ परवश पड़्यो थको, ने आँख्याँ दयावणी व्ही थकी, ने वणा में पाणी भरायो थको, ने दुःख शूँ अमूझतो थको देख ने भगवान् मधुसूदन अर्जुण शूँ यूँ वचन बोल्या ॥१॥

श्री भगवानुवाच ।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

नीचाँ रे जोग यो रोग, थने लागो कठे अठे ।
अणी शूँ स्वर्ग भी नी ने, अठे भी अपकीरति ॥२॥

श्री भगवान् आज्ञा कीधी के हे अर्जुण! अणी अबकी वगत में या खोट थारा में कठीनुँ आयगी। अशी वाताँ तो नीच मनख करयाँ करे है। अणी शूँ अठे भी अपजश व्हे, ने परलोक भी वगड़ जावे है ॥२॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ ३ ॥

थने सोहे नहीं पार्थ, अबे यो हींजड़ा पणो।
हियारी हीणता छोड़े, वैरी मारण ऊठजा ॥३॥

हे कुन्तीपुत्र! अबे गतराड़ा पणो मती आदर; यो थने शोभा नी दे है। हे दुशमणाँ री छाती ने बाळवा वाळा! मन री कायरता ही नीचता है। ईं ने छोड़ ने मरवा मारवा ने त्यार व्हे जा ॥३॥

अर्जुन उवाच ।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

अर्जुण कही ।

भीष्म शूँ रण में फेर, द्रोण शूँ मधुसूदन।
चोसराँ शूँ तजे सेवा, शराँ शूँ कींतरे लड़ूँ ॥४॥

अर्जुण कियो के हे मधुसूदन! अणी लड़ाई में भला म्हूँ भीष्म पितामह और द्रोण आचार्य शूँ तीराँ शूँ कूँकर लड़ूँ। हे बेरियाँ ने नाश करवावाळा, भगवान्! ई तो पूजनीक है ॥४॥

गुरूनहत्वाहि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

मारयाँ वना माइत पूजनीक,
खाणी भली है पण माँग भीख ।
नी मार याँ ने धनलोभियाँ ने,
ईं राज रा भोग सुहाय म्हाने ॥५॥

अणा पूजनीक धर्मात्मा ने नी मारणा पड़े, ने अठे घर घर भीख मांग ने पेट भरणो पड़े तो या आछी हीज वात है, पण लोभी लालची भी अणा वड़ा ने मार ने सुख भोगवाने तो जाणे वणा रो लोही पीवा वरोवर म्हूँ गणूँ हूँ ।।५।।

न चैतद्विद्मः कतरन्नोगरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ।। ६ ।।

सूझे न ईं माँय भली कई है, के हार के जीत सही नहीं है ।
यो जीतणो हार हजार हीणो, नी मार याँ ने पण जोग जीणो ।।६।।

हाल तो आपाँ ने या ही सुध नी है के आपाँ ने ई मारे जो आछो के आपाँ अणा ने माराँ ज्यो आछो । भलाँ, जणा ने मारने आपाँ ने जीवणो ही नी चावे वी हीज ई धृतराष्ट्र रा वेटा शामा आय ने ऊभा है ।।६।।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम् ।। ७ ।।

सुभाव भूल्यो अव म्हूँ अमूझ, म्हारो म्हने धर्म पड़े न सूझ ।
म्हने कहो आप सही विचार, चेलो गणे ने शरणे निहार ।।७।।

म्हारो मन दव गियो है, जणी शूँ अवे म्हारो शूरापणा रो सुभाव तो मर गियो है । म्हने अवे कई करणो चावे या नी सूझे है, शो आप ने म्हूँ पूछूँ हूँ के जी में म्हारो भलो व्हे वो विचार ने म्हने आप हुकम करो । म्हूँ आपरे हुकम में रे'वा वाळो हूँ, आपरे आधीन हूँ, म्हने आप गेले लगावो (घालो) ।।७।।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।। ८ ।।

शरीर रो शोषक शोक जाय, म्हने न वो सूझ पड़े उपाय ।
जो राज पाऊँ सघळी धरा रो, भावे वणूँ मालक देवताँ रो ।।८।।

हे भगवान्! म्हारा शरीर ने, ने मनने छीजावा वाळो यो शोच मट जावे, अस्यो उपाय म्हने तो नी लाधे है । भलेई हरयो भरयो अणी आखी धरती रो राज पावूँ, ने देवताँ रो पण राज वना खटकारो मल जावे, तो पण या छीजण तो मटती नी दीखे है ।।८।।

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।। ९ ।।

संजय कही ।

यूँ कहे कृष्ण ने वीर, रण में पाण्डुपुत्र वो ।
म्हूँ कधी भी लड़ूँगा नी, छानो यूँ बोल ने रियो ।।९।।

संजय कियो के हे राजा! भगवान् ने अर्जुण यूँ के'ने फेर कियो के हे गोविन्द! म्हूँ तो नी लड़ूँगा । यूँ के'ने पछे वो छानो रे'गियो ।।९।।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ।। १० ।।

घबराता थका वीं ने, हँशता होय ज्यूँ हरी ।
दोही फौजाँ वचे वाक्य, यूँ कह्यो मधुसूदन ।।१०।।

हे राजा! वणीरी वाताँ पे हँशता व्हे ज्यूँ भगवान् दोही फौजाँरे वच्चे घबराता थका वीं ने यो वचन हुकम कीधो ।।१०।।

श्री भगवानुवाच ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ।। ११ ।।

श्री भगवान् कही ।

थूँ अजोग करे शोच, वाताँ बोले वड़ी वड़ी ।
जीवे ज्याँ रो मरे ज्याँ रो, शमझचा शोच नी करे ।।११।।

श्री भगवान् आज्ञा की धी के हे अर्जुण! जणा रो शोक नी करणो चावे वणा रो हीज थूँ शोक करे है, ने वाताँ जो जाणे शमझणा मनखाँ जशी डावी डावी मठावण कर रियो है; पण शमझणा व्हे जो तो नाक में पवन आवे वा नी आवे ईं रो शोक नी करे है ।।११।।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

म्हूँ थूँ ने ई सवी राजा, जणा रो शोच है थने ।
पेली भी हा अवे भी हाँ, रहाँगा फेर भी सवी ॥१२॥

अशी वात तों आगे ही कवी ही व्ही ही नी ही के म्हूँ नी रियो व्हूँ,वा थूँ नी रियो व्हे,वा ई राजा नी रिया व्हे, ने नी जो फेर अवे भी अशी कदी व्हेणी है के आपाँ सव नी रे'वाँगा ॥१२॥

देहिनोऽस्मिन्यथादेहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

देह में जीवरे ज्यूँ है, वाल जोवन ने जरा ।
दूसरी देह भी यूँ है, ईं में धीर डरे नहीं ॥१३॥

ज्यूँ बाळक पणो मट ने म्होटचार पणो आवे जणी वगत कोई भी नी मरे,ने म्होटचार पणो मट ने वुड़ापो आवे जणी वगत भी कोई मरे नी है, यूँ ही वुड़ापो मट ने दूसरी देह आवे जणी वगत भी कोई मरे नी है। शमझणा रे तो अणा देह रा हेर फेर में घवरावा ज्यूँ कई नी है ॥१३॥

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

इन्द्रियाँ ओळखे वांरा ठंडा ऊना भला वुरा ।
आवे जावे न ठे'रे ई, अणाने खम अर्जुण ॥१४॥

हे अर्जुण! ठंडो,ऊनो, सुख, दुःख अणाने थूँ खम[1] ले, क्यूँ के ई थारा नी है। ई तो इन्द्रियाँ रा है, जो शूँ आवे ने परा जावे है। थारा व्हेता तो मटता ही नी ॥१४॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

१—प्रतीक्षस्व ।

जीं ने ई नी डगावे, ज्यो, समान सुख दुःख में।
धीरो पुरुष वो हीज, मोक्ष रो लाभ ले शके ॥१५॥

हे पुरुषाँ में उत्तम! जणी पुरुष ने ई दुःख नी देवे है वो ही सुख-दुःख में एक रस रे'वा वाळो धीर पुरुष अमर व्हे शके है ॥१५॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

झूँठ रो होवणो नी ने, साँच रो मटणो नहीं।
अणा रो नरणो कीधो, दोयाँ रो ब्रह्म ज्ञानियाँ ॥१६॥

अमर व्हे ज्यो मरे नी है ने मरे ज्यो अमर नी है, अणा दोही वाताँ ने ज्ञानवानाँ देख ने नक्की कर लीधी है ॥१६॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

जो सवी जग में व्याप्यो, जाण वो हीज नी मरे।
अणी अखूट रो नाश, कणी शूँ भी न व्हे शके ॥१७॥

ज्यो अणा सबाँ में एक शरीखो छाय रियो है अणी ने हीज थूँ अमर जाण। अणी अविनाशी रो नाश कोई भी नी कर शके है ॥१७॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥

देह ई मटवा वाळा, देहवाळो मटे नहीं।
अविनाशी अनोखा ने, जाण ने जुद्ध थूँ कर ॥१८॥

अश्या अविनाशी, सदा अमर, नी दीखवा वाळा, ने देखवा वाळा रा दीखवा वाळा ई शरीर, नाशमान है, यूँ जाण ने, हे भारत, अर्जुण! थूँ युद्ध कर, क्यूँ के ई तो नाशमान है ॥१८॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

ज्यो ईं ने मरतो जाणे, ज्यो जाणे मारतो थको।
दोही जणा ई नी जाणे, नी यो मारे मरे न यो ॥१९॥

जो अणी देखवा वाळा ने मारवा वाळो जाणे अथवा ज्यो ईं ने मरवा वाळो शमझे तो ई दोही नी शमझे, क्यूँ के यो तो नी तो मारे, ने नी यो मरे है ॥१९॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

नी जन्म लेवे न मरे कधी यो, वणे नहीं तो वगड़े कधी यो।
सदा अनाशी अज एक भाँत, मारचाँ मरे यो नहिं देह साथ ॥२०॥

यो कदी भी जन्म नी लेवे, ने नी यो कदी मरे है। यो फेर जन्म लेगा जदी हीज व्हेगा या वात भी नी है, क्यूँ के यो तो वना जन्म रो सदा एक शरीखो ने अनादि है। शरीर रे मारचा जावा शूँ यो नी मारचो जाय है ॥२०॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २१ ॥

जाणे जो नित्य यूं ईं ने, अनाशी अज एक शो।
मरावे नर कीं ने वो, मारे कूँकर कूँण ने ॥२१॥

हे पार्थ, अर्जुण! ज्यो अणी ने वना जन्म रो, अविनाशी, एक शरीखो,सदा रे'वावाळो जाणे है। वो पुरुष भलाँ की ने ही कूँकर मरावे, ने कूँकर की ने ही मार शके ॥२१॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

ज्यूं फेंक फाटा कपड़ा पुराणा, पे'रे नवा ज्यूं नर फे'र नाना।
त्यूं जीव भी जीरण ने उतारे, दूजा नवा देह अनेक धारे ॥२२॥

ज्यूँ मनख जूना गाभा न्हाँख देवे ने दूसरा नवा ले लेवे है, यूँ ही यो देह वाळो जूना शरीराँ ने छोड़ ने दूसरा नवा शरीराँ ने पाय लेवे है ॥२२॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।। २३ ।।

ईं ने शस्त्र नहीं काटे, वाशदी बाळ नी शके ।
पाणी गाळे नहीं ईं ने, शुकावे वायरो नहीं ।।२३।।

अणी[1] वास्ते ईं ने शस्त्र काट नी शके । नी जो ईं ने वाशदी बाळ शके । पाणी भी ईं ने नी गाळ शके और वायरो भी ईं ने शुकाय नी शके ।।२३।।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।। २४ ।।

कटे नी यो बळे नी यो, शूखे नी यो गळे नहीं ।
सवाँ में ही सदा ही यो, ठेठ को ठे'रियो थिर ।।२४।।

क्यूँ के यो कटे, शूके, बळे, गळे, जश्यो है ही नी । यो तो सदा ही रे'वा वाळो, सब जगा रे'वा वाळो, अचल, एक सरीखो, यूँ ठेठ शूँ है ।।२४।।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।। २५ ।।

यो दीखे नी निराकार, अनोखो अविकार है ।
अश्यो जाण अणी ने यूँ, शोचणो जोग नी थने ।।२५।।

यो अविकारी वाजे है अणीज शूँ कूँकर भी यो मन[2] शूँ वा इन्द्रियाँ शूँ दीख नी शके है अणी वास्ते अणीने यूँ शमझ ने थने शोक नी करणो चावे ।।२५।।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ।। २६ ।।

१—यो शरीर नी है ने शरीर में विकार व्हे है, अणी वास्ते ।

२—मन इन्द्रियाँ शूँ नी दीखे ने "यो" के 'वाशूँ मन इन्द्रियाँ रे साथे ही बताय दीधो है। श्लोक २५में सात्विकी बुद्धि कही, श्लोक २६-२८ तक राजसी,ने ३१-३७ तक तामसी बुद्धि है।

जो ईं ने मरतो माने, नक्की वा जन्मतो गणे।
तो भी ईं ने महावाहू, शोचणो जोग नी थने ॥२६॥

ने यूँ नी मानने ईं ने थूँ जन्मवा वाळो हीज मानतो व्हे, वा मरवा वाळो हीज माने तो भी, हे महाभुजा वाळा अर्जुण! थने यूँ शोच नी करणो चावे ॥२६॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

जन्म्या री मौत है नक्की, मरचा जन्मे जरूर ही।
जणी पे जोर नी चाले, वणी रो शोच जोग नी ॥२७॥

क्यूँ के जन्मे ज्यो मरचाँ वना नी रे'वे, ने मरे ज्यो जन्म्याँ वना नी रे'वे, जदी अणी व्हेती वात रे वास्ते थने शोच नी करणो चावे ॥२७॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

पेली ई दीखता नी हा, लाग्या ई दीखवा वचे।
मरचाँ शूँ फे'र नी दीखे, अणी में शोच ज्यूँ कई ॥२८॥

ई शरीर घणा समय शूँ नी दीखता हा। अवे थोड़ाक समय तक दीख, फेर घणा समय तक नी दीखेगा। अश्या मरवा में शोच करवा जश्यो कई है? थोड़ा दनां री वात रो शोच कई?॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

आश्चर्य ज्यूँ कोइ लखे अणी ने, आश्चर्य ज्यूँ कोइ कहे अणी ने।
आश्चर्य ज्यूँ कोइ शुणे अणी ने, शुणे न जाणे कतराक ईं ने ॥२९॥

अणीने कोई के'वे के म्हूँ देखूँ हूँ तो या वड़ा अचम्भा री वात है, यूँ ही कोई दूसरो के'के म्हूँ ईं ने केवूँ हूँ तो या भी अचम्भा जशीज वात है, ने कोई ईं ने शुणे है या भी अचम्भा ज्यूँ हीज है, क्यूँ के कोई भी ईं ने देख नी शके शुण नी शके ने समझ भी नी शके है ॥२९॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।। ३० ।।

देहाँ माँय सबाँ रे ही, देह वाळो मरे न यो ।
ई शूँ यो सघळाँ रो ही, शोच है करणो वृथा ।।३०।।

यो शरीर वाळो कणी भी शरीर में मारचो नी जाय है, अणी वास्ते की रो भी थने शोच नी करणो चावे ।।३०।।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ।। ३१ ।।

आपणो धर्म भी देख, डगणो जोग नी थने ।
क्षत्रियाँ रे भलो दूजो, धर्म जुद्ध समान नी ।।३१।।

फेर आपणो धर्म देखताँ भी थने यूँ नी घबरावणो चावे, क्यूँ के रजपूत रे तो अशी धर्म री लड़ाई मल जाय अणी शिवाय और भलाई है ही नी ।।३१।।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।। ३२ ।।

आपो आप मिल्यो आय, वारणो स्वर्ग रो खुल्यो ।
धन्य है पार्थ वी क्षत्री, ज्याँ ने जोग मले अश्यो ।।३२।।

हे पार्थ, अर्जुण! स्वर्ग री पोळ[1] आपो आप ही थने खुली थकी थारा पूर्व पुन्न शूँ मलगी है। अश्यो युद्ध रो मोको तो घणा आछा भाग्य व्हे वणा रजपूताँ ने कदीक मले है ।।३२।।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।। ३३ ।।

धर्मजुद्ध अवे भी जो, नी करेगा धनंजय ।
जश धर्म गमावेगा, पावेगा पाप ने पण ।।३३।।

१—के ज्या घणा तप योग करवा शूँ कणीक रे खुले तो खुले ।

अबे भी जो थूँ अश्या धर्मयुद्ध रा समय ने हात शूँ खोय देगा तो थारा सब धर्म ने जश दो ही जाता रे'वेगा, ने महा[1]पापी व्हे जायगा ॥३३॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

बुरायाँ होयगा थारी, सदा ही सबही जगाँ ।
प्राण हाण बचे वत्ती, मान हाण जहाण में ॥३४॥

ने मनख मूँडे [2] थारी बुरायाँ करवा लाग जावेगा । यो कलंक थारो कदी भी नी छूटेगा । माजना वाळा रे तो अपजश व्हेणो मरवा वच्चे ही वत्तो है ॥३४॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥

डरे ने रण छोड़्यो यूँ, मानेगा ई महारथी ।
जी थने मानता म्होटो, गणेगा अदनो अबे ॥३५॥

ने ई म्होटा म्होटा शूरमा तो यूँ जाण लेगा के अर्जुण डर गियो जींशूँ नी लड़े है । थारी[2] बड़ायाँ करवा वाळा ने भारी हळका पणो थारो दीखेगा ॥३५॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

थारे अजोग वाताँ भी, कहेगा शत्रु मोकळी ।
निंदेगा बळ थारा ने, दुःख नी दूसरो अश्यो ॥३६॥

ने थारा वेरी अजोग अजोग वाताँ थारी नरी तरे' तरे'री खोटी खोटी जोड़[3]देगा । यूँ वी थारा पे'लीरा कमाया थका जश पे भी पाणी फेर देगा ने थने नाजोगो गण लेवेगा, अणी शिवाय और कई म्होटो दुःख व्हे शके है ॥३६॥

१—थारो नाम लेवा में भी रजपूतां ने अबकाई आवेगा अर्थात् पाप लागेगा ।
२—थारी शूरता री वाजी मारता हा वी हीज थारी बुराई करेगा के कश्या नामर्दा रो पक्ष लीधो जो आपांने भी नीची नाड़ करणी पड़ी ।
३—क्यूंके वैरी तो गुण में ही दोष काढ़े ही है ।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।। ३७ ।।

मरे तो स्वर्ग रा पावे, धरा रा सुख मारने ।
ठाण ने जुद्ध री गाढ़ी, ऊठ गाण्डीव धार ने ।।३७।।

ने युद्ध में तो मरवा मारवा दो ही वाताँ में लाभ हीज है। मर जायगा तो स्वर्ग रा सुख पावेगा, ने मारेगा तो अठारा सुख भोगेगा, जीशूँ युद्ध री हीज नक्की धार ने, हे कुन्ती कुँवर! ऊठो व्हे जा ।।३७।।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।। ३८ ।।

सुख दुःख करे एक, हार जीत मिल्यो मिट्यो ।
युद्ध में लाग जा फेर, पाप लागे थने न यूँ ।।३८।।

सुख, दुःख, हाण, लाभ, हार, जीत सब ने बरोबर कर ने पछे लड़ाई में लाग जाव। यूँ करेगा तो थने कोई पाप नी लागेगा ।।३८।।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ।। ३९ ।।

ज्ञान री या कही बुद्धी, अबे या शुण योग री ।
ई कर्म योग शूँ सारा, काटेगा कर्म बन्ध यूँ ।।३९।।

हे अर्जुण! या[1] तो थने ज्ञानयोग री शमझ की' है, ने कर्मयोग री

१—या सांख्य री अर्थात् आत्म-ज्ञान री शमझ थने की है के आत्मा अश्यो है। अबे योग में तो या आगे केवूँ ज्या शमझ शुण। अणी में "तु" केने' खास शमझ योग री हीज है, या शावत की दी, ने या पण वताई के अबे केवूँ जणी में योग हीज केवूँ हूँ। अणी वास्ते आखी गीता में योग हीज है। जी शूँ ही जगाँ जगाँ "योगशास्त्रे" यूँ अध्याय अध्याय री समाप्ति में आवे है। वो योग और कई नी केवल अतरो हीज है के 'सांख्य'में की यकी है वा कणी तरे शूँ नी मट शके' या वात शमझ में आय जाणी। जणी पे ही कियो के—(१) शून्य रो भान मटणो ही साक्षात्कार है। (२) कवोट देशाचार शूँ विरुद्ध ने के' है, पण अणी शूँ कई विरुद्ध है। (३) महात्मारो चरित्र आपणो ही चरित्र है। (त्रिसूत्री में)

अणी वास्ते यूँ सांख्य व्हे, यूँ नी व्हे, या हीज वात मन में शूँ निकल जाणी चावे। ने नी व्हेवा री वात ही कई? ने है जीं रे व्हेवा री वात ही कई? शिवाय शून्य रो भान वा भय वा अश्रद्धा रे और कई व्हे शके है?

शमझ तो या अवे थने केवूँ हूँ ज्यो ध्यान दे ने शुण। अणी कर्मयोग री शमझ में जो थारो ध्यान लाग गियो तो थूँ कर्म रा बंध ने मटाय देगा ॥३९॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

शूनो आरम्भ नी ईं रो, अणी में विघ्न भी नहीं।
थोड़ो भी यो सच्यो धर्म, भारी भय मिटाय दे ॥४०॥

या शमझ आयाँ केड़े मटे[1]नी है, नी ज्यो अणी रे आवा में कोई विघ्न[2]है, ने यो तो थोड़ो दीखे तो भी आपणो हीज सुभाविक धर्म (काम) है ने म्होटा दुःख शूँ वंचावा वाळो है ॥४०॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

सही तो बुद्धि या हीज, योग री जाण अर्जुण।
चंचळाँ री नरी बुद्ध्याँ शाखाँ डाळ्याँ अनन्त री ॥४१॥

हे कुरुनन्दन, अर्जुण! नी मटे जशी तो या अठे कर्मयोग री हीज शूधी शमझ है, ने जणा ने या शमझ नी आई है, वणा चंचळाँ रे तो अपार ऊँधी शमझाँ[3]है। फेर वणा री डाळ्याँ रो तो पार ही कई व्हे शके है ॥४१॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥

इन्द्रयाँ रा स्वाद री वाणी, कहे मूढ़ सुहावणी।
वेदाँ रा थंय में राचे, माने वी तन्त ने नहीं ॥४२॥

१—मटे तो जदी के वणे (आवे)। आवणो औपचारिक है।

२—क्यूं के स्वतः सिद्ध है।

३—अणी पूं डग्या ने पछे तो सोपान कंदुक (नाल री दड़ी) री नाई डाका ही डाका पड़ा री दड़ी ज्यूं पड़े है।

हे पार्थ अर्जुण! ,जी मूरख आशा शूँ भरी थकी अशी ऊँधी वाताँ करे है, वी वेदाँ री कोरी बकवाद में हीज लागा रे' है, ने अणी शिवाय और है ही नी, यूँ हीज वी के' वे है ।।४२।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।। ४३ ।।

कामी वी स्वर्ग ने शोधे, जणी शूँ जन्म कर्म ह्वे ।
नरी तरे करे कर्म, वड़ाई भोग वासते ।।४३।।

वी आशा में रंगाया थका इन्द्रियाँ रा सुख ने चा'वा वाळा अशीज वातां करे है के जणी में तरे' तरे' रा भोग वधे, ने तरे' तरे' रा नरा ही काम करणा पड़े; ने वारंवार जन्म कर्म हीज अशी ऊँधी शमझ रो फळ है ।।४३।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।। ४४ ।।

वड़ाई भोग में लागा, कामना शूँ अचेत ह्वै ।
समाधी में नहीं लागे, वणा री बुद्धि ठे'रने ।।४४।।

यूँ भोगाँ ने खूब वधावा में जणा रा मन छेंटरिया है, ने अशी ऊँधी शमझ शूँ हीज वणा रो हियो ठकाणे नी रियो है; अश्या मनखाँ री शमझ, शान्ति में टक ने रे'वा रा काम री नी रे'वे है ।।४४।।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।। ४५ ।।

वेद तीन गुणाँ शूधी, थूँ ह्वे तीन गुणाँ परे ।
त्याग आछो वुरो शान्त, धीर निश्चिन्त ह्वे सही ।।४५।।

हे अर्जुण! वेद भी तीन गुणाँ में हीज है । थूँ तो तीन ही गुणा शूँ न्यारो "है ज्यो" व्हेजा । जणी में दो (आछो, वुरो) नी है, जो सदा ही आपाँ में 'रेवे है, जठे लेणो ने अवेरणो नी है, अश्यो आत्मावाळो थूँ व्हे जा ।।४५।।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।। ४६ ।।

कूड़ा रा जळ में लाभ, वतरा और कर्म में ।
अखूट सागराँ में सो, ब्रह्म में ज्ञानवान ने ।।४६।।

अश्या ब्रह्म सरूपी शूधी शमझ वाळा रे' शेवा (कम ऊँडा) ने ऊँडा कूड़ा में शूँ ज्यूँ तरषा मटाय लेवा रो हीज मतलव है, यूँ, वीं रे सव वेदाँ में शूँ अणी शूधी शमझ ने पाय जावा रो हीज मतलव है; क्यूँ के वो शमझणो है ।।४६।।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।। ४७ ।।

कर्म रो अधिकारी थूँ, कर्म रा फळ रो नहीं ।
छोड़ दे फळ री इच्छा, छोड़ दे कर्म त्याग री ।।४७।।

थूँ काम करवा वाळो व्हे शके है, पण काम रा फळ ने लेवा[1] वाळो कदी भी नी व्हे शके है । जीं शूँ यूँ काम रा फळ ने चावणो थारो अनुचित है, ने काम छोड़वा रो विचार राखणो भी थने जोग नी है ।।४७।।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।। ४८ ।।

योग में लाग ने कर्म, कर थूँ उळझ्याँ वना ।
सम आछी बुरी मान, समता योग एक ही ।।४८।।

जी शूँ हे धनंजय अर्जुण! ,अणी शमझ में हीज रे' ने सव काम कर, ने काम में उळझणो जो अँवळी शमझ है, वी ने छोड़ दे । वणे ने वगड़े जणी में समता रे'वे जी ने ही योग के'वे है, ने ई रो ही नाम शँवळी शमझ है ।।४८।।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ, कृपणाः फलहेतवः ।। ४९ ।।

१—कामरो फळ, ने लेवा वाळो, प्रकृति शूँ भिन्न मानणो ही अविद्या है ।

ई बुद्धियोग रे आगे, कर्म नीचो नरोइ है।
बुद्धि रो आशरो ले थूँ, काँगला कामना करे ।।४९।।

हे धनंजय अर्जुण!,अणी शमझ शूँ कर्म तो घणो छेटी-नीचे रे' जावे है। अणी वास्ते थूँ अणीज शमझ रो आशरो ले, क्यूँ के कामना करवा वाळा तो बापड़ा बड़ा दु:ख में रे' है ।।४९।।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।। ५० ।।

कर्म आछा बुरा छूटे, अठे ई बुद्धियोग शूँ ।
हुँश्यारी कर्म में सो ही, योग है, लाग योग में ।।५०।।

शँवळी शमझ वाळो अठे ही भला-बुरा शूँ न्यारो व्हे जावे है, अणी वास्ते थूँ तो अणीज शमझ में मल जा, क्यूँ के काम करती वगत अणी शमझ रो रे' णो ही योग वाजे है, ने या हीज चतुराई है ।।५०।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।। ५१ ।।

बुद्धिवाळो सदा ज्ञानी, कर्म रा फळ छोड़ ने ।
जन्म रा बंध शूँ छूटे, पावे आनन्दधाम ने ।।५१।।

अशी शमझ वाळा ही शमझणा है । जन्म रा फंदा मूँ छूटा थका वी, काम रा फळ (सुख-दु:ख) छोड़ने वना खटका री जगाँ ने पाय लेवे है ।।५१।।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।। ५२ ।।

बुद्धी निकळ जावेगा जदी अज्ञान कीच शूँ ।
जाण्या अजाण्या साराँ में रहेगा रुच नी थने ।।५२।।

जदी थारी शमझ में शूँ मूरख पणो, ऊँधापणो निकळ जायगा (ऊँधा पणा री कळण में शूँ थारी शमझ बारणे आय जायगा) जदी थने शुणी ने शुणवारी सब वाताँ नी सुँवावेगा, क्यूँके ई तो मूरखता में कळचा थका रे वास्ते है। निकळचा थका रे वास्ते नी है ।।५२।।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।। ५३ ।।

समाधी मांयने बुद्धी, जदी या ठे'र जायगा ।
भटका खावणो छोड़, वाजेगा थिरबुद्धि थूं ।।५३।।

घणी वातां शुणवा शूं थारी शमझ बे'कगी है । या जदी अचळ व्हे ने शान्ति में ठे'र जायगा जदी थूं योग री शमझ (शंवली शमझ) ने पाय लेवेगा ।।५३।।

अर्जुन उवाच ।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।। ५४ ।।

अर्जुण कही ।

थिरबुद्धि समाधिस्थ, कहे कीं ने जनार्दन ।
बोले बैठे तथा चाले, थिर बुद्धि कणी तरे' ।।५४।।

अर्जुण कियो के, हे केशव भगवान् ! अशी ठेरी थकी शमझ वाळो ने शान्त चित्त वाळो मनख कूंकर ओळखाय? अर्थात् वीं री कई परख है ? वो कूंकर बैठे? ने वणी ठे'री थकी शमझ वाळा री चाल ढाल कणी तरे' री व्हे है ? सो-आप म्हने ओळखाय देवो ।।५४।।

श्री भगवानुवाच ।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।। ५५ ।।

श्री भगवान् आज्ञाकरी ।

छोड़ देवे जदी शारी, कामना मन मायली ।
आप शूं आप में राजी, कहावे थिरबुद्धि वो ।।५५।।

जदी श्री भगवान् आज्ञा करी के हे पार्थ अर्जुण ! जदी सब कामना ने छोड़ देवे, और या शूधी ही वात है, क्यूं के कामना तो मन में है, ने मन री कामना मन में रे' जावा शूं आप तो आपो आप सुखी रे है, यूं जदी वो स्थित प्रज्ञ (ठेरी थकी शमझ रो) वाजे है ।।५५।।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।। ५६ ।।

दुःख में घबरावे नी, सुख री चाह नी करे ।
वना हेत भय क्रोध, वो मुनि थिर बुद्धि है ।।५६।।

अश्यो मनख दुख में नी घबरावे, क्यूँ के सुख री चावना नी करे है। वीं रा तो प्रेम, भय, ने क्रोध सारा ही न्यारा व्हे गिया है। अश्या विचार वाळो हीज स्थित धीः (अडग शमझ वाळो) वाजे है ।।५६।।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।। ५७ ।।

भली शूँ नी खुशी होवे, उदासी नी बुरी हुयाँ ।
निंदे वंदे कणी ने नी, कहावे थिर बुद्धि वो ।।५७।।

वो आछो बुरो चावे जीं ने ही पाय ने वणी शूँ राजी बे राजी नी व्हे है । क्यूँ के वणी रो कणी में ही मोह नी है । अशी हीज शमझ सदा थिर जाणणी ।।५७।।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।। ५८ ।।

इन्द्रियाँ रा सवादाँ शूँ, इन्द्रयाँ ने यूँ समेट ले ।
अंगाँने काछवो ज्यूँ ही, कहावे थिरबुद्धि वो ।।५८।।

ज्यूँ काछबो आपणा डीलने मुरजी व्हे जदी पाछो समेट लेवे, ने कठी ने शूँ भी बारणे निकळतो नी राखे ; यूँ ही जदी सब इन्द्रियाँ वारणे शूँ माँयने समेट लेवे, अर्थात् वणा रा सवादाँ शूँ समेट लेवे, जदी जाणणो के अणी री शमझ ठेंरगी है ।।५८।।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।। ५९ ।।

भोगाँ ने छोड़वा पे भी, भोगाँ री वासना रहे ।
वासना नाश होवे वा, परब्रह्म मिले जदी ।।५९।।

सवाद तो इन्द्रियाँ ने रोक देवाँ शूँ भी छूट जावे है, पण माँय ने सवादाँ री चावना रे' जावे है। वा तो परमानन्द रूपी आत्मा ने पावा शूँ हीज छूटे है ॥५९॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

इन्द्रियाँ मतवाळी ई, जोरी शूँ जाणकार री ।
रोकताँ रोकताँ भी ले, मन ने खेंच अर्जुण ॥६०॥

और वा इच्छा माय शूँ नी छूटे जतरे, हे कुन्ती रा कुँवर, अर्जुण! घणो शमझणो व्हे, ने वो यूँ चावे के अणा इन्द्रियाँ ने म्हूँ रोक लूँ, तो भी ई जोरावर इन्द्रियाँ, वणी शूँ नी रुक शके, ने शवळाई वणी मनख रा मन ने ले निकळे, क्यूँ के ई घणी धाड़ेत है ॥६०॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

थिर व्हे ठे'रजा म्हाँ में, इन्द्रियाँ ने समेट ने ।
इन्द्रियाँ वश में जीं री, कहावे थिरवुद्धि वो ॥६१॥

अणी शूँ अणा इन्द्रियाँ ने समेट ने, अणीज धुन में लागो थको ठे'र जावे। वो ठे'रणो वीं रो म्हारे में व्हेणो चावे, यूँ जणी री इन्द्रियाँ वश में व्हे गी है, वीं री हीज वुद्धि ठे'री थकी जाणणी ॥६१॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥

धावा शूँ विषयाँ ने ही, उळझे मन वीं'ज में ।
वधे वणी शूँ इच्छा ने, इच्छा शूँ क्रोध नीपजे ॥६२॥

ने जो यूँ म्हारे में नी ठे'र्यो व्हे तो वणी रे माँय ने इन्द्रियाँ रा सवाद आयाँ करे, ने याद आवा शूँ पछे वणी रो शोख पैदा व्हे जाय, ने पछे वणा ने भोगवा री इच्छा व्हे जावे, ने पछे क्रोध व्हे जाय ॥६२॥

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

क्रोध शूँ भूलवालागे भूल शूँ सुध वीशरे ।
पछे ह्वे बुद्धि रो नाश, जदी नाश सवी ह्वियो ॥६३॥

पछे वो वेंडा ज्यूँ व्हे जावे, ने पछे ओशाण (याद) भूल जावे, ने पछे (वणी री ठे'राई थकी वात) आपो ही भूलाय जाय, ने यूँ वो आप ही आपघाती व्हे जावे ॥६३॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति[1] ॥ ६४ ॥

खार हेत वना जो ई,, इन्द्रियाँ फरती फरे ।
आपो जो आप रे हाते तो प्रसन्न रहे मन ॥६४॥

ने ज्यो यूँ माँय ने इन्द्रियाँ रा सवादाँ ने याद नी करे, तो वीं रे कणी वात रो शोख भी नी व्हे, ने शोख वना खार भी नी व्हे, जणी शूँ वणी री इन्द्रियाँ वणी रे अधीन व्हे, ने वणी रे के'वा मुजब वणी रा काम करे, अश्या री शमझ निर्मळ व्हेवा लाग जावे है ॥६४॥

प्रसादे सर्वदुःखानांहानिरस्योप जायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

प्रसन्न चित्त री बुद्धि, आप में थिर ह्वे रहै ।
शघळा दुःख रो नाश, वणी रो ह्वे वणी समे ॥६५॥

ने शमझ निर्मळ व्हेवा शूँ सब दुःख मट जावे, ने वणी निर्मळ शमझ वाळा री थिर शमझ व्हेताँ देर नी लागे ॥६५॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

वना योग नहीं बुद्धी, वना योग न भावना ।
नी वना भावना शान्ती, वना शांति कठे सुख ॥६६॥

१—'निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः योग सूत्र। समाधि पाद सू. ४७

जो न जोगो है, वणी रे या शमझ नी है, ने वीं रे या योग री भावना भी नी है। वना अणी भावना रे शान्ति कठा शूँ व्हे शके? ने शान्ति रे वना और जगाँ सुख कठे है ॥६६॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७ ॥

जणी रो इन्द्रियाँ लारे, मन यो दोड़तो फरे।
उलटे वुद्धि यूँ वीं री, हवा शूँ नाव जीं तरे ॥६७॥

इन्द्रियाँ तो वणा रा कामाँ ने भोगे हीज है, पण अणा रे साथे जो मन भी लाग गियो तो अणी री शमझ डुल जावे है। ज्यूँ पाणी में चालतो चालतो डूँडो डूँज शूँ डुल जावे; यूँ मन इन्द्रियाँ रे लारे लागो ने बुद्धि डुली ॥६७॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

अणीं शूँ जीं महा वाहू, रोकी है सब ही तरे,।
इन्द्रियाँ विषयाँ में शूँ, कहावे थिर वुद्धि वो ॥६८॥

अणी वास्ते हे महाबाहू, अर्जुण! म्हारो के'णो है के जणी इन्द्रियाँ ने चोमेर[1] शूँ रोक ने वणा रा सवाद बिलकुल भूलाय दीधा है, वणी री हीज शमझ ने ठे'री थकी जाणणी ॥६८॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

जीवाँ री ज्या कही रात, जोगी जागे वणीज में।
जणी में जीव जागे ई, ज्ञानी रे रात है वठे ॥६९॥

वणी री शमझ ने ई दूसरा कोई नी जाण शके, ने दूजाँ री शमझ ने वो नी जाणे, क्यूँ के सूता रा विचार जागतो नी जाणे, ने जागता[2]

१—चौमेर शूं केवा शूं ज्ञान युक्त मन ने करणो सावत व्हें' है।
२—सूवणो रात रा नाम शूं कियो है, जागणो दन शमझणो।

रा ने सूतो (सप्नावाळो) नी जाणे; यूँही शमझ ठे'री वणी रो, ने चंचळाँ रो भेद है ॥६९॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

समुद्र में जाय शमाय पाणी, वीं शूँ वणी रे नहिं लाभ हाणी ।
यूँ कामना सर्व शमाय जी में, है शांति वीं में नहिं चाह जीं में ॥७०॥

ज्यूँ पूरा भरचा थका समुद्र में पाणी भरावे, तो भी वो समुद्र ओछो वत्तो नी व्हेवे; यूँही सब कामना आवा शूँ ज्यो एक शरीखो रे'वे वो ही शान्ति पावे है, कामना वाळो शान्ति नी पावे ॥७०॥

विहायकामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

ज्यो छोड़ कामना शारी, वना इच्छा सबी करे ।
म्हूँ, ने म्हारो करचो न्यारो, वो पावे सुख शांति ने ॥७१॥

जो पुरुष[1] सब कामना छोड़ ने वना कामना रे रे'वा वाळो है। जणी में म्हूँ ने म्हारो नी है, वो हीज शान्ति रा सुख ने पावे है ॥७१॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

ब्रह्म में थिरता या है, ई पायाँ भ्रम नी रहे ।
अणी में ठे'र ने पावे, अन्त में भी अनन्त ने ॥७२॥

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीता उपनिषद् में, ब्रह्मविद्या योग शास्त्र में, श्री कृष्णार्जुन-संवाद में, "सांख्य योग" नाम दूजो अध्याय समाप्त व्हियो ॥

१—यूं एक रस रे' वा वाळो चैतन्य है कामना वाळो चैतन्याभास है ।

हे पार्थ, अर्जुण! या थने ब्रह्म री थिरता की' है। अणी ने पाय ने पछे कोई भी नी भटके है। और तो कई पण अन्त री वेळा में भी अणी में आय जावे तो भी अखण्ड मोक्ष, जो ब्रह्म रो स्वरूप है, वो मल जावे है ॥७२॥

ॐ वो साँचो "ब्रह्म" यूँ श्री कृष्ण अर्जुन री वात चीत में, श्री भगवान् री भाषी थकी उपनिषद् में, ब्रह्मविद्या योगशास्त्र रो 'सांख्ययोग' (तत्त्वयोग) नाम रो दूजो अध्याय समाप्त ह्वियो ॥२॥



ॐ

तृतीयोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच ।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ।। १ ।।

ॐ तीजो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण कही ।

आप री जाण में ज्ञान, कर्म शूँ ज्यो वड़ो जच्यो ।
घोर यो कर्म तो फे'र, क्यूँ कहो करवा म्हने ।।१।।

ॐ तीजो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण कियो के, हे जनार्दन भगवान् ! आप री राय में काम[1] करवा वच्चे शमझ वत्ती है, तो हे केशव ! म्हने अणी हत्या रा घोर काम करवा री क्यूँ के'वो हो ।।१।।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।। २ ।।

दो दो वाताँ कहो जाणे, बुद्धि में भे'म ह्वे जशी ।
अणी शूँ एक नक्की को, जणी शूँ लाभ व्हे म्हने ।।२।।

१—काम तो स्वतः ह्वे रियो है, करे कूण है ? ने करे तो भांजगड़ वणी री करवा वाळो दूशरो कश्यो है ? फळ ने छोड़ने करणो चावे, अणी रो भी यो ही भाव है के वर्तमान ही कर्म है, ने फळ ही अवर्तमान है । यो ही इच्छा छोड़णो है । फळ है ही नहीं; कर्म हीज है ।

जाणे अशी अणमेळू वात करने शामी म्हारी शमझ ने आप गवोळा में पटक रिया व्हो ज्यूँ दीखे है। अणी वास्ते एक हीज वात जणी शूँ म्हारो भलो व्हे, वा निश्चय करने म्हने हुकम करदो ॥२॥

श्री भगवानुवाच ।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

श्री भगवान् आज्ञाकरी ।

पे'ली ही म्हें कह्या पंथ, दो तरे' शूँ अठेज ही ।
ज्ञान शूँ ज्ञान योग्याँ रो, कर्म शूँ कर्म योग रो ॥३॥

श्री भगवान् आज्ञा कीधी, के हे अनघ, वना पाप रा अर्जुण! म्हें ठेठ[1] शूँ अठे[2] दो तरे' री वाताँ हीज की' है। ज्ञानवानाँ रे वास्ते[3] ज्ञान शूँ ने कर्म वानाँ रे वास्ते कर्म शूँ ठेरवा री वात की' है ॥३॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

कर्म कीधां वना कोई, कर्मां शूँ छूट नी शके ।
कोरा ही छोड़ बेठ्याँ शूँ, लाभ होवे कई नहीं ॥४॥

अणी शूँ एक हीज नी के'वाय शके के कर्म छोड़ दे वा कर्म कर। कर्मां ने आरम्भ ही नी करे ने निष्कर्म व्हे जावे, या वात व्हे ही नी शके, क्यूँ के केवल छोड़ देणो हीज परम पद पाय लेवा रो उपाय नी है ॥४॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

कधी भी कोई भी क्यूँ भी, रहे कर्म वना नहीं ।
करावे कर्म जोरी शूँ, प्रकृती रा गुणाव ही ॥५॥

१—'ठेठ शूँ' रो भाव, स्वाभाविक जन्म रे साथे ही या वात है ।
२—'अठे' के' वा शूँ, कर्मलोक में रो भाव है। अठे एक शूँ काम चाल ही नी शके, यो भाव।
३—ज्ञान शूँ रो भाव ज्ञान री प्रधानता, कर्म शूँ रो मतलब कर्म री प्रधानता रो है, पण! दो ही, एक हीज नी, यो भाव है ।

क्यूँ के कोई भी कदी भी एक जजम भर भी काम कीधा वना नी रे'वे है, क्यूँ के सब काम आपो आप गुणाँ रा सुभाव हीज करे है ।।५।।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।। ६ ।।

देह ने ठूँठ ज्यूँ राखे, मन जी रो टके नहीं ।
इन्द्रयाँरा स्वाद में दोड़े, बुगलाभक्त जाण वो ।।६।।

यूँ जदी सुभाव में हीज करणो शमाय रियो है, तो फेर हात पग आदि काम करवा वाळी इन्द्रियाँ ने रोक ने मन माँय ने, जो इन्द्रियाँ रा स्वादाँ ने लेने बैठ जावे, वो मूढ़ पाखण्डी वाजे है ।।६।।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।। ७ ।।

मन शूँ इन्द्रियाँ रोके, आपणा कर्म ज्यो करे ।
उळझे नी वणाँ में ज्यो, सो सदा ही विशेष है ।।७।।

ने, जो मन माँयनूँ हीज स्वादाँ ने छोड़ ने पछे काम काज करे है, हे अर्जुण! वो कर्मयोगी है, वो नी उळझ्यो थको है, वणी री इन्द्रियाँ आधीन हैं, ने वो हीज बड़ो है ।।७।।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।। ८ ।।

नी कर्याँ शूँ कर्यो आछो, कर थूँ कर्म आपणा ।
कर्म कीधाँ वना पार्थ, देह भी ठे'र नी शके ।।८।।

कर्म करणो तो अनादि शूँ साबत व्हे रियो है, और यूँ नी करवा शूँ करवो हीज आछो है । यूँ नी करवा शूँ तो शरीर रो भी निरभाव नी व्हेगा जदी और तो कई व्हे शके ।।८।।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ।। ९ ।।

दूजा कर्म सवी बाँधे, यज्ञ रा कर्म रे वना।
यज्ञ रे वासते कर्म, कर थूँ उळझचा वना ॥९॥

साधन[1]रा काम रे शिवाय यो आखो ही जगत् कामाँ रो फंदो हीज है, बाँधवा वाळो हीज है। अणी वास्ते साधना रा कर्माँ ने वना उळझ्याँ[2] करणा चावे, ईं शूँ हे कुन्ती रा कुँवर, अर्जुण! थूँ भी यूँ हीज कर ॥९॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

सवाँ ने यज्ञ रे साथे, विधाता कर यूँ कह्यो।
यज्ञ शूँ वधज्यो थाणे, यज्ञ ही कामधेनु है ॥१०॥

आगे शूँ ही सवाँ ने साधन सेती वणाय ने, ब्रह्मा जी कियो के अणी साधन शूँ थाँणी थें हीज वधती करो और यो साधन हीज थाँने मनशा मुजब सुख देवा वाळो है ॥१०॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेय परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

रिझावो यज्ञ शूँ देव, देव थाँने करे सुखी ।
माहों माँय करो राजी, पावोगा लाभ यूँ घणो ॥११॥

अणीज शूँ थें देवता ने राजी करो, यूँ आपश में एक दूसरा ने राजी राखवा शूँ थें घणो सुख पावोगा ॥११॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

देवेगा देवता थाने, भाग व्हे यज्ञ शूँ खुशी ।
देवे वाँ ने वना दीधाँ, खावे ज्यो चोर है सही ॥१२॥

१—यज्ञ साधन रा काम रो नाम है, धर्म्म रा विवाहादि भी फुल साधन समझ ने करे तो साधन ही है, जदी सब ही कर्म यज्ञ साधन हीज है, नजर रो फेर है ।
२—साधन रा जाण ने करे तो वो कर्म नी बांधे । ज्यूं गर्ज ने फर्ज ।

देवता तो थाँने यज्ञ रा साधन शूँ राजी कीधा थका, मन मुजब साथ
सुख देवेगा हीज, वणा रा दीधा थका हीज सुखाँ में शूँ वणा देवताँ नें
वना दीधाँ जो खाय जावे तो वो चोर हीज है ॥१२॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

जी खावे यज्ञ रो वंच्यो, वी छूटे सब पाप शूँ ।
वी पापी पाप ने भोगे, राँधे जी आप वासते ॥१३॥

यूँ जी साधना रा कर्म करता थका हीज, वणीज साधन रे साथे आपणो खावा पीवा रो वे'वार करता रे'वे, वीतो जाणे अमृत हीज खाय पीय रिया हैं ; क्यूँ के वी काम करता थका भी सब पापाँ शूँ छूट रिया है, ने जी पापी[1] साधन रे वास्ते तो नी करे, ने आपणो पेट भरवा ने हीज राँधे, वी तो पापाँ रो हीज भोग करे है ॥१३॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥

अन्न शूँ उपजे शारा, वर्षा शूँ अन्न ऊपजे ।
यज्ञ शूँ उपजे वर्षा, कर्म शूँ यज्ञ नीपजे ॥१४॥

अन्न शूँ हीज सब जनमे है । अन्न पाणी शूँ व्हे है । पाणी (वर्षा) साधन रा कर्म (पुन्न) शूँ व्हे है ॥१४॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

ब्रह्म शूँ कर्म होवे ने, ब्रह्म अक्षर शूँ व्हियो ।
सर्व व्यापक यूँ ब्रह्म, सदा ही यज्ञ में रहे ॥१५॥

ने साधन कर्म शूँ व्हे है, ने कर्म वेद (शास्त्र) शूँ व्हे है, ने वेद प्रकृति रूपी अक्षर ब्रह्म शूँ व्हे है, अणी वास्ते सर्व व्यापक अक्षर ब्रह्म

१—पापी यूँ, के करणो तो पड़े ही जदी साधन रो शमझ ने क्यूँ नी करे ? (अनुसन्धान मात्रेण योगोयं सिद्धिदायकः)

साधन में हीज रे'वे है ॥१५॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो, मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

चक्र यूँ फरतो आयो, जो नी चाले अणी परे ।
इन्द्रयाँ में जो रमे पापी, वणा रो जीवणो वृथा ॥१६॥

अणी चाल शूँ अनादि चालता थका संसार चक्र रे साथे जो नी चाले[1], वणी रो जन्म मरण, पाप संचय करवा ने हीज व्हे है, क्यूँ के वो इन्द्रियाँ रा सुखाँ ने हीज सुख शमझे है और अश्या रो जीवणो ही मरवा बरोबर है ॥१६॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

आप ही में रहे राजी, आप ही में खुशी करे ।
आप शूँ और नी चावे, वणा रे सब ही व्हियो ॥१७॥

ने जो मनख आप में ही प्रेमी, ने आप में ही सुखी है; ने आपाँ में हीज जीं रे सन्तोष है, वणी रे कई भी करणो बाकी नी रियो ॥१७॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

कर्याँ भी लाभ नी वीं रे, छोड़्याँ भी लाभ नी कई ।
आपणा लाभ रे तावे, वीं रे कीं री जरूर नी ॥१८॥

अश्या रे करवा शूँ भी कई फायदो नी, ने नी जो नी करवा शूँ कोई लाभ है। अश्या रे कणी शूँ भी कई भी नी चावे है ॥१८॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

२—संसार में साधन रो अनुसन्धान छोड़ा तरवा ज्यूँ है। शूधो तर नदी रे पार नी जवाय, क्यूंके वीं रो जोर घणो है।

अनासक्त अणी शूँ व्हे, आपणा कर्म थूँ कर।
ईं तरे' शूँ करे सो ही, पावे परम धांम ने ॥१९॥

अणी वास्ते म्हूँ के'वूँ हूँ के पल भर री भी नेरपाइ राख्या वना जो करवा रा काम है, अणा ने बरोबर सदा ही ठीक तरे' शूँ करचाँ जा, पण अणाँ में उळझणो नी है या वात भूले मती, ने जो या वात वना भूल्याँ काम करे है, वो ऊली आड़ी नी ठे'रे, वो तो परमात्मा ने हीज पाय लेवे है। क्यूँ के वणी शिवाय और ठकाणो ही वी रे नी है ॥१९॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

कर्म ही शूँ व्हिया सिद्ध, राजा जनक आद ले।
लोगाँ रे लाभ तावे भी, करणो चाहिजे थने ॥२०॥

यूँ ही जाण ने पेल्याँ भी जनक राजा आदि काम करता करता ही म्हने पाय गिया हा, ने अणी में एक यो भी लाभ है के गेलो नी वगड़े है। यूँ जाण ने काम करता रे'णो ॥२०॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

ज्यो ज्यो बड़ा करे कर्म, देखा देखी सबी करे।
छोटा भी आचरे वाताँ' बड़ा री आदरी थकी ॥२१॥

क्यूँ के मनख शारा ही शमझणा नी व्हे है। और तो बड़ा रे देखा देखीज' काम करे है। अश्या मनख तो बड़ा शमझणा री शमझ ने नी देख शके। वी तो वो करे जणीज वात ने सही मान वणीज माफक करवा लाग जावे है ॥२१॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानावाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

तीन ही लोक में म्हारे, कई भी करणो नहीं।
कई भी दूर नी ह्याँ शूँ, तो भी कर्म करूँ सदा ॥२२॥

अणीज वास्ते म्हूँ भी देख काम हीज करूँ हूँ। क्यूँ हे पार्थ! म्हारे कई करणो वाकी है ज्यो म्हूँ करूँ; ने कश्यो सुख म्हारे नी है जणी वास्ते म्हूँ काम करूँ॥२२॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ २३ ॥

आळशी होय ने ज्यो म्हूँ, धर्म कर्म परा तजूँ।
देखा देखी सवी म्हारे, छोड़ देवे सुकर्म ने॥२३॥

म्हूँ ज्यो अणा कर्मा ने यूँ करणो छोड़ ने आळश कर लेवूँ तो हे पार्थ, अर्जुण! काले शारा ही मनख आळशी व्हे ने जरूर काम करणो छोड़[1] वैठे॥२३॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥ २४ ॥

सवाँ रो नाश कर्ता म्हूँ, जो तजूँ कर्म तो वणूँ।
वर्णसंकर व्हे जावे, वे'जावे. पाप में सवी॥२४॥

म्हूँ ईश्वर रूप शूँ काम नी करूँ तो यो सव संसार ही नाश व्हे जावे, ने अवतार रूप शूँ काम नी करूँ तो गवोळो करवा वाळो म्हूँ व्हे जावूँ, ने मनख रूप शूँ नी करूँ तो अणा जीव जन्तु समेत, सव मनखाँ रो नाश करवा वाळो म्हूँ व्हे जावूँ॥२४॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥ २५ ॥

अज्ञानी ज्यूँ करे कर्म, फळ में उळझ्या थका।
लोगाँ रे वासते ज्ञानी, त्यूँ करे उळझ्या विना॥२५॥

अणी वास्ते काम तो ज्ञानी अज्ञानी सवाँ ने ही करणो पड़े, हे अर्जुण! अज्ञानी उळझ्यो थको करे, ने ज्ञानी उळझ्याँ वना करे, क्यूँ के वो अणी वात रो जाणकार है के उळझणो जणी में है। वणी में शूँ

१—क्यूं के मनख वना मे'नत रे'वा (आळश) रो पक्ष करे है।

वना उळझवा वाळो तो न्यारो हीज है । वणी रो काम तो लोगाँ ने शिखावा वास्ते व्हे है ।।२५।।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ।। २६ ।।

भें'म व्हे ज्ञान हीणा ने, वात वा करणी नहीं ।
ज्ञानी ने चाहिजे कर्म, करणो ने करावणो ।।२६।।

पण या वात कर नें वणा मूर्खां रे शमझ में गबोळो कदी नी न्हाँखणो क्यूँ के वी तो उळझ रिया है । पण अणी वात ने जाणवा वाळा ने चावे के वणाँ नखा शूँ काम हीज होंश शूँ करावे, ने साथे साथे खुद भी करे । ईं शूँ वणी रें कई नुकशाण तो व्हे ही नी है, क्यूँ के वो तो शुळझ्यो हीज है ।।२६।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।। २७ ।।

प्रकृती ही करे कर्म, गुणाँ शूँ सब ही सदा ।
अहंकारं वचे मूढ़, म्हूँ करूँ म्हूँ करूँ करे ।।२७।।

काम तो सुभाविक ही गुणा शूँ चौमेर शूँ व्हे हीज है, पण म्हूँ पणा में भूल अज्ञानी म्हूँ करूँ हूँ, यूँ मान लेवें है । यूँ मानणो अज्ञान ही है ।।२७।।

तत्त्ववित्तु महावाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ।। २८ ।।

गुण ने कर्म रो भेद, जाण ले जो सही सही ।
गुणा में गुण वर्ते यूँ, जाण ने उळझे नहीं ।।२८।।

परन्तु हे महावाहू, अर्जुण! गुण, ने वणा रा काम रा मरम नें जाणवा वाळो तो यूँ जाणे है के गुण हीज गुण में उळझे है । यूँ जाणे वो कूँकर कणी में ही उळझ शके ।।२८।।

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्नविचालयेत् ॥ २९ ॥

जाणे जो भेद नी ईं रो आणे वी पाप आप में ।
कर्म शूँ मतहीणा ने डगावे ज्ञानवान नी ॥२९॥

परन्तु सुभाविक गुणां में जणा ने शमझ नी है अर्थात् गुण ने देख ने भी जी नी देखे है, वी अज्ञानी, गुणाँ रा कर्मां में उळज्या रे'है। अश्या सव नी[1] जाणवा वाळाँ ने (कम[2] शमझ रा ने) सव[3] जाणवा वाळो नी डगावे तो ठीक ॥२९॥

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धयस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

ज्ञान शूँ शघळा कर्म, म्हारे मे मेल व्हे सुखी ।
आशा ने ममता छोड़, वाण जोड़ कआण पै ॥३०॥

ईं शूँ थूँ सव कामां ने शमझ शूँ म्हारे में मेल दे । ईं शूँ ममता, (इच्छा) वना रो व्हे ने वना संताप रे लड़ ॥३०॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥

म्हारी ईं राय पे चाले, मन में मान मानवं ।
अणी में दोप नी देवे वणी में कर्म नी रहे ॥३१॥

जी मनख अणीं सदा[4]री शमझ पे चाले--ने या म्हारी अचल शमझ है, अणी में तो विश्वास री हीज जरूरत है, दूज्यूँ करणो कई नी है, ने विश्वास भी अंध नी पण खार नी राख यथार्थ वात मानणो है— शो जी अणी पे विश्वास राखे या खार नी राखे, दोवाँ में शूँ एक वात भी जणा में होवे, वी भी कर्मां शूँ छूट जावे जदो दो ही होवे वणी रो तो के'णो ही कई ॥३१॥

१—सव नी जाणणो=प्राकृत अंश में कणी ने कणी मे लागा रे'णो ।
२—कम शमझ, कर्म शूँ हीज शमझ वधावे । ज्ञान शूँ नी वधे ।
३—सव जाणवा वाळो=प्रकृति रा कणी अंश में नी उळझवा वाळो ।
४—स्वाभाविक है हीज, जणी पे ।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ।।३२।।

लगावे दोष ईं में जो, हिया फूट न आचरे ।
ना'म भी श्यान नी वाँ में, गिया वीत्या अश्या नर ।।३२।।

हे अर्जुण! अतरो सही सदा शूधो व्हेवा पे भी जी अणी म्हारा मत शूँ खार राखे, वी ही अणी पे नी चाल शके है। वणाँ ने थूँ मूर्ख ने बिलकुल अणजाण, आँधा शमझ। वणा में चेतना है तो भी नी रे बराबर (व्ही ही अण व्ही) है ।।३२।।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।।३३।।

ज्ञानी भी आचरे कर्म, आप री प्रकृती जश्यो ।
बहे प्रकृति में शारा, कोई की शूँ रुके नहीं ।।३३।।

अणी वात रा जाणकार भी स्वभाव शिवाय तो नी कर शके, क्यूँ के अणव्हेती कूँकर व्हे? जदी जठे सब ही स्वभाव रे साथे ही चाले है तो वठे रोकणो ने नी रोकणो यो कई करेगा? अर्थात् यो भी तो सुभाव हीज है ।।३३।।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवथितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।।३४।।

इन्द्रयाँ, ने धर्म याँ रा में, रहे आछो बुरो सदा ।
अणा रे वश नी व्हेणो, अणी रा शेण ई नहीं ।।३४।।

इन्द्रियाँ, ने इन्द्रियाँ रा सवादाँ में, आछो, ने खोटो, सुवावणो, ने नी सुवावणो, रे'वे हीज है। या सुभाविक ही वात है। अणा रे वश नी व्हेणो ही आपणो धर्म है, ने ई दोई धर्म रा शत्रु है ।।३४।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।।३५।।

आपणो निर्गुणी धर्म, पराया सब शूँ श्रे।
मर्यां भी आपणो आछो, परायो तो भयंकर ॥३५॥

आपणा धर्म में गुण नी है, ने यां में गुण है। गुणा री वड़ाई वच्चे निर्गुण ही आछो। आपणा आपणा धर्म (स्वभाव) में ही मरजाणो वा मल रे'णो ही आछो है, पण दूसरा रा धर्म में मलणो खोटो है—घणो भयंकर सब दुःख रो कारण है ॥३५॥

अर्जुन उवाच।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥ ३६॥

अर्जुण कही।

जदी इं जीव ने कूण, धकेले पाप कर्म में।
चाह्यां वना ही ज्यूं कोई, जाणे जोरावरी करे ॥३६॥

अर्जुण कियो के हे वार्ष्णेय, कृष्ण भगवान्! जदी आपणा आपणा हीज सुभाव (धर्म) में रे'णो उत्तम है ने सब रे'वे हीज है, तो सुभाव (धर्म) रो अठी रो उठी कणी रा सुभाव शूं व्हे है? क्यूं के खोटाई तो सुभाव शूं ही कोई नी चावे है, जदी जाणे जोरावरी अणी में अणी ने कूण सुभाव छोड़वा ने लाचार करे है ॥३६॥

श्री भगवानुवाच।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ ३७॥

श्री भगवान् आज्ञा करी।

काम यो क्रोध भी यो ही, यो रजोगुण शूं व्हियो।
महा भूखो महा पापी, ईं ने वैरी विचार थूं ॥३७॥

श्री भगवान् हुकम कीधो के यो लाचार करणो, ने व्हेणो भी सुभावां रो गुणाव हीज है। प्रकृति शूं हीज है। यो रजोगुण शूं जन्म्यो

थको है। अणी रो नाम है कामना, ने यो ही क्रोध भी है। अर्थात् यो काम सब खोटायाँ री जड़ है और वधतो ही जावे है। यो हीज वैरी है ने म्होटो वैरी है। धर्म ने छोड़ावा रो अणी रो काम है। ईं ने थूँ जाण जा। यो ही अणी शूँ छूटवा रो उपाय है ॥३७॥

धूमेनाव्रियते वन्हिर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

वासदी ने धुवों ढाँके, ज्यूँ ढाँके रज आरसी ।
चामड़ी गर्भ ने ढाँके, यूँ ईं ने ढाँकियो अणी ॥३८॥

धुवाँ शूँ वासदी, कचरा री रज शूँ दर्पण, ने बाळक झल्ली में, ज्यूँ ढँक जावे ; ज्यूँ अणी काम शूँ आप आप रो सुभाव ढँक जावे ; यो भी ईं रो सुभाव है ॥३८॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

ज्ञान रे जन्म रे वैरी, ज्ञान ने ढाँक ईं लियो ।
ईं अग्नी कामरूपी रो, बुझणो, से'ल है नहीं ॥३९॥

अणीं शूँ हे कौन्तेय! (कुन्तीपुत्र) या वात भूलवारी नी है के कदी नी बुझे जशी, ज्ञान री सदा शत्रु, अशी अणी काम रूपी अग्नि, ज्ञान ने ढाँक दीधो है। या पूरी नी व्हेवा वाळी ने बाळवा वाळी कामना री वासदी रजो गुण शूँ व्ही है, ने सतोगुण शूँ व्हेवा वाळी ज्ञान री शान्ति ने ढाँके है ॥३९॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

इन्द्रियाँ, मन, ने वुद्धी, ईं री ई तीन ही जगाँ ।
ज्ञान ने ढाँक यो याँ शूँ, जीव ने भरमाय दे ॥४०॥

या वासदी मन, इन्द्रियाँ और बुद्धि में रे'वे है, ने अणा इन्द्रियाँ, मन, वुद्धि शूँ हीज ज्ञान ने ढाँक अणी जीव ने भरमाय देवे है ॥४०॥

तस्मात्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

अणी शूँ इन्द्रियाँ पे'ली, जीतने वीर अर्जुण ।
ईं पापी ने परो मार, यो वैरी ज्ञान ध्यान रो ॥४१॥

अणी वास्ते हे भरतर्षभ! पे'लो मुकाम अणी रो इन्द्रियाँ है । थूँ अणा ने वश में करने अणी ज्ञान, ने शमझ ने' ढाँकवा वाळा पापी रो बिलकुल नाश कर न्हाँख ॥४१॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

इन्द्रियाँ ने परे जाण, इन्द्रियाँ शूँ परे मन ।
मन शूँ पर बुद्धी ने, बुद्धी शूँ पर सो वुही ॥४२॥

अणी रा नाश री या शूधी तरकीब (रीत) है के-इन्द्रियाँ शूँ सब दीखे या सब ही प्रत्यक्ष के' रिया है और इन्द्रियाँ मन शूँ, ने मन बुद्धि शूँ ने बुद्धि जीं शूँ दीखे वो तो वो हीज है ॥४२॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-
विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे "कर्म-
योगो" नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

यूँ बुद्धी शूँ परे जाण, आप शूँ आप रोक ने ।
मार न्हाँख महा वेरी, कामरूपी वड़ो छली ॥४३॥

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीता उपनिषद् में, ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में, श्री कृष्णार्जुनसंवाद में, "कर्मयोग" नाम तीजो अध्याय समाप्त व्हियो ।

हे महाबाहु अर्जुण! अणी काम रूपी दुशमण ने थूँ मार न्हाँख । यो दूज्यूँ तो से'ल में हाते आवे जश्यो नी है, पण यूँ बुद्धि ने देखवा

वाळा रो पतो लागो ने तो थूं आपो आप सहज ही में थिर व्हे ने ईं ने जीत लेगा.॥४३॥

ॐ वो सांचो है यूं श्री कृष्ण अर्जुन री वात में, श्री भगवान री भाषी थकी उपनिषद् में, ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में, "कर्मयोग" नाम रो तीजो अध्याय समाप्त व्हियो ॥३॥



ॐ

चतुर्थोऽध्यायः ।

श्री भगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।। १ ।।

ॐ चौथो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

यो अखण्ड कह्यो योग, पे'लाँ म्हें हीज सूर्य ने ।
शिखायो मनु ने सूर्य, मनु इक्ष्वाकु ने कह्यो ।।१।।

ॐ चौथो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् आज्ञा कीधी के यो कदी'नी मटे जश्यो योग पे'ली म्हें विवस्वान् (सूर्य) ने कियो हो । वणा सूर्य मनु ने कियो, ने मनु इक्ष्वाकु नाम रा राजा ने शमझायो हो ।।१।।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ।। २ ।।

परम्परा शूँ यूँ पायो, राजाँ में ऋषि हा वणा ।
घणा दनाँ शूँ वो योग, लोप होय गयो अठे ।।२।।

यूँ परम्परा शूँ राजाँ में ऋषि हा वी अणी ने शुणता शमझता आया हा, पण हे परंतप अर्जुण! नराई समय शूँ अठे वो योग शूँ शमझणो ने शमझावणो मेट व्हे गियो ।।२।।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

जुगादी गुप्त वो हीज, योग आज थने कह्यो ।
भक्त थूँ मित्र भी जीं शूँ, छुपायो नहिं उत्तम ॥३॥

वो हीज यो ठेठ रो (सदीप रो) योग आज थनें म्हें पाछो कियो है, क्यूँ के यो उत्तम ने रहस्य (छुप्यो थको) है। पण थूँ तो म्हारो भक्त है, ने म्हारो मित्र[1] है जीं शूँ के' दीधो है ॥३॥

अर्जुन उवाच ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

अर्जुण कही ।

सूर्य हा जनम्या पे'ली, आप हो जनम्या अबे ।
आप पे'ली कह्यो या म्हूँ, कीं तरे, शमझूँ कहो ॥४॥

अर्जुण अर्ज कीधी के विवस्वान् तो पे'ली ह्विया हा, ने आप तो अवार हीज जन्म लीधो है, जदी म्हारे या कूँकर शमझ में आवे के आप पे'ली या वात विवस्वान् ने शमझाई ही ॥ ४ ॥

श्री भगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥ ५ ॥

भगवान् आज्ञा करी ।

म्हारा ने जन्म थारा भी, नराई वीर वीतग्या ।
म्हने वी याद है शारा, थने वी याद नी रह्या ॥५॥

श्री भगवान् हुकम कीधो के, हे अर्जुण! म्हारा ने थारा भी

१—मित्र (सखा) के'वा शूँ यो अभिप्राय, के म्हूँ थारा उत्तम सुभाव शूँ ठीक वाकब हूँ' जींशूं कियो है ।

नराई जन्म पे'ली व्हे गिया है । म्हूँ वणां सवां ने जाणूँ हूँ । पण, हे परंतप अर्जुण! थने वणा री खबर नी है ॥ ५ ॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

जन्मूँ नी म्हूँ मरूँ नी म्हूँ, सवाँ रो सरदार हूँ ।
म्हारी प्रकृति ने धार, माया म्हारीज शूँ वणूँ ॥६॥

अणी रो कारण यो है के म्हूँ अजन्मा हूँ तो भी, ने सवाँ रो मालक ने अविनाशी हूँ तो भी, म्हारी माया शूँ म्हारी प्रकृति ने धारण कर ने म्हूँ भी स्वतन्त्र रे' ने मुरजी व्हे जश्यो वण जावूँ हूँ ॥ ६ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

धर्म री घटती होवे, जीं जीं समय अर्जुण ।
अधर्म वधवा लागे, जदी म्हूँ अवतार लूँ ॥७॥

जदी जदी धर्म री घटती व्हेवे ने, हे भारत, अर्जुण! अधर्म वधवा लाग जावे है जदी म्हूँ म्हने वणाय लूँ हूँ । (मुरजी व्हे जश्यो ही वण जावूँ हूँ) ॥७॥

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि युगे युगे ॥८॥

वुरा काम करे वाँने, गाळवा, पाळवा भला ।
धर्म ने थापवा ने म्हूँ, जन्म लेऊँ जुगो जुग ॥८॥

और वो रूप म्हारो आछा मनखाँ री सा'य करणो, ने खोड़ीला रो नाश करणो अणी काम रो व्हे है । यूँ म्हूँ धर्म थापवा ने जुग जुग में वणूँ हूँ ॥८॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

जन्म कर्म अनोखा जो, म्हारा यूँ जाण ले सही ।
देह छोड़ म्हने पावे, फेर आवे कदी नहीं ।।९।।

हे अर्जुण! यूँ म्हारा जन्म, नें काम और ही तरे'रा हैं । अणी मरम ने ठीक तरे' शूँ जो जाण जावे तो वो भी अणी शरीर शूँ न्यारो व्हे ने पाछो शरीर धारण नी करे, क्यूँ के वो म्हारो रूप वण जावे है ।।९।।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ।।१०।।

रीश इच्छा डर वना, म्हाँ में राच्या जच्या हुवा ।
शुद्ध व्हे ज्ञान तप शूँ, मिल्या म्हाँ में नरा' नर ।।१०।।

अश्या म्हारो रूप व्हिया थका वा म्हारे आशरे रे'वा वाळा रे हरेक वात री हर नी रे'वे है, जो शूँ डर, ने रीश भी वणा री वीत जावे हैं, यूँ नराई जणा या ज्ञान री तपस्या कर, पवित्र व्हे ने म्हारो रूप वण गिया है ।।१०।।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।११।।

ज्यो ज्यूँ भजे म्हने नित्य, वणी ने म्हूँ फळूँ वश्यो ।
म्हारा ही पंथ पे चाले, शारा ही नर अर्जुण ।।११।।

हे पार्थ, अर्जुण! म्हारो आशरो तो शारा ही लेवे पण जश्यो भाव वणा रो व्हे, वश्यो ही म्हूँ भी वणा रे वण जावूँ हूँ । ई सबै मनख चौमेर फर रिया है सो सब म्हारे ही लारे (साथे) चाल रिया है, न्यारा नी चाले है ।।११।।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ।। १२ ।।

चावे जी कर्म री सिद्धि, रिझावे देवता अठे ।
कर्म शूँ सिद्धि व्हे आवे, झट ही नरलोक में ।।१२।।

कर्मां रा फळाँ ने चावता थका मनख अठे देवतां ने पूजे है, ने अणी मनखाँ रा लोक में काम रो फळ झट ही मल जावे है। यूँ वी न्यारा न्यारा दीखे है ॥१२॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥

वणाई चार ही जातां, देख म्हें गुण कर्म ने ।
वाणा रो भी म्हने कर्ता, अकर्ता जाण एक शो ॥१३॥

तो भी चार वर्ण (जातां) गुण रा कर्मां रे माफक म्हें हीज वणाई है । वणी वणावा रो वणणो भी म्हाँ शूँ हीज है । पण म्हूँ तो, वना वणावा वाळो, कई नी करवा वाळो, ने अविनाशी हूँ ॥१३॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥

म्हने कर्म नहीं लेपे, नी चावूँ कर्म रो फळ ।
यूँ म्हने जाण लेवे जो, वँधे वो कर्म शूँ नहीं ॥१४॥

ईं शूँ म्हने वणावा रा कर्म नी लागे, नी जो म्हने कर्मा रा फळ री इच्छा रे'वे । यूँ जो म्हने जाण लेवे तो वो भी अस्यो ही व्हे जावे अर्थात् कर्मां शूँ नी वँधे ॥१४॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥

यूँ ही जाण किया कर्म, मोक्ष रा अभिलाषियाँ ।
सदा शूँ करता आया, ईं शूँ यूँ कर कर्म ही ॥१५॥

यूँ हीज जाण ने पे'ली भी संसार शूँ छूटवा री इच्छा राखवा वाळा कर्म कीधा है, अणी शूँ थूँ भी यूँ ही नी करतो थको कर्म कर, क्यूँ के आगे यूँ ही करता आया है ॥१५॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १६ ॥

अकर्म कर्म रे माँय, डा'वा भी डाक चूक व्हे ।
जणी शूँ दु:ख मूँ छूटे, कहूँ म्हूँ कर्म वी थने ॥१६॥

करणो की ने कें'वे? ने नी करणो कई व्हे है? अणी में बड़ा बड़ा गबोळा में पड़ गिया है। वा हीज वात आज थने म्हूँ कें'वूँ हूँ के अणी ने जाण ने हीज थारा सब दु:ख छेटी व्हे जायगा—छूट जायगा ॥१६॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मण: ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति: ॥ १७ ॥

कर्म ने जाणणो चावे, जाणणो त्यूँ विकर्म ने ।
अकर्म जाणणो चावे, कर्म री गहरी गति ॥१७॥

कर्म ने भीं जाणणो चावे, खोटाई ने भी जाणणी चावे, ने नी करवा ने भी जाणणो चावे, क्यूँ के या वात हीज बड़ी गहरी है। (जाणवा जशी है) ॥१७॥

कर्मण्यकर्म य: पश्येदकर्मणि च कर्म य: ।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्त: कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

अकर्म कर्म में देखे, देखे कर्म अकर्म में ।
वो योगी ज्ञान वाळो वो, वणी कर्म किया सबी ॥१८॥

जो कर्म[1] में अकर्म देखे ने अकर्म में कर्म देखे, वो मनखाँ में बुद्धिमान् है। वीं री अखण्ड समाधि है। वो ही सब कर्म करवा वाळो है ॥१८॥

यस्य सर्वे समारम्भा: कामसंकल्पवर्जिता: ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहु: पण्डितं बुधा: ॥ १९ ॥

जणी रा कर्म है शारा, मन री कामना वना ।
वाळचा जीं ज्ञान शूँ कर्म, वीं ने पंडत जाणणो ॥१९॥

जणी रा सब काम; कामना, ने संकल्प वना रा है, अणी तरे' जो काम संकल्प शूँ रहित जाणणो है सो ही ज्ञानाग्नि वाजे है, ने अणी

१—कर्म-प्रकृति, अकर्म-पुरुष, ऊणा ने साथे देखे वो मुक्त ।

तरे शूँ जी रा अणी अग्नि शूँ कर्म वळ गिया है वो हीज शमझणाँ में शमझणो वाजे है ॥१९॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥ २० ॥

फळ रा संग ने छोड़, निराधार रहे सुखी ।
कर्म ने यूँ करे तो भी, करे है वो कई नहीं ॥२०॥

यूँ कर्म रा फळ रा संग ने छोड़ ने कर्म री आभड़ वना रो, सदा तृप्त, काम करतो थको भी वो तो कोई भी काम नीज करे है ॥२०॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

आशा प्रपंच जी छोड़्या, चित्त आत्मा किया वश ।
देह रा हीज कर्मां शूँ, पाप में वो पड़े नहीं ॥२१॥

वणी रा चित्त आदि सब थिर हीज है । वीं री चाहना छूट गी है । वणी री सब ममता मट गी है । वो शरीर रा हीज काम करतो थको दीखे है तो भी वो तो रत्ती मात्र नी करे ॥२१॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समःसिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ २२ ॥

मले वीं में रहे राजी, वुरो आछो न ईर्षा ।
वण्याँ में विगड्याँ में भी, एकशो जो वँधे न वो ॥२२॥

वो तो सब वाताँ में सुखी हीज है क्यूँ के कणी शूँ भी वीं रे खार नी है, ने दुविधा शूँ दूरो है । काम पूरो व्हे अथवा नी व्हे तो भी, ने कर ने भी, वो कदी नी वँधे है ॥२२॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

हूँ पणो छोड़ ज्यो मुक्त, ज्ञान में थिर चित्त व्हे।
करे जो यज्ञ रा कर्म, वणी रे कर्म नी रहे ॥२३॥

यूँ संग वना रो व्हेवा शूँ मुक्त व्हियो थको ने ज्ञान व्हे जावा शूँ ही स्थिर चित्त ने निःसंग व्हियो थको व्हे, वणी रे साधन रे वास्ते कर्म कीधा थका व्हे है, वी बिलकुल नी लागे है—एकभी—नाम भी ॥२३॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

ब्रह्म री अग्नि में होमें, ब्रह्म ने ब्रह्म ब्रह्म शूँ।
ब्रह्मशूँ ब्रह्म ने पावे, ब्रह्म कर्म समाध शूँ ॥२४॥

जणी शूँ देवे, वा जो वस्तु देवे, जणी में देवे, वा देवा वाळो ने वीं रो फळ सवाँ में ब्रह्म साथे है। या सब कर्मां में ब्रह्म समाधि है ॥२४॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

देव रा यज्ञ री योगी, नराई सेवना करे।
यज्ञ शूँ यज्ञ ने होमे, ब्रह्म री अग्नि में नरा ॥२५॥

यूँ कतरा ही योगी देवताँ रे साथे साधन करे है। यो भी वश्यो ही है क्यूँ के ई री भी हर वगत साधना व्हे शके है। कतरा ही चैतन्य ब्रह्म री अग्नि में साधन ने हीज होमवा रो साधन करे है ॥२५॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

कान आदिक इन्द्रयाँ ने, थिरता माँय होम दे।
इन्द्रयाँ रा शघळा स्वाद, इन्द्रयाँ में होम दे नरा ॥२६॥

कतरा ही शब्द आदिक विषयाँ ने कान आदिक इन्द्रियाँ में

होम दे है, और कतरा ही कान आदि इन्द्रियाँ ने संयम[1] की अग्नि में होम दे है ॥२६॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

आत्मा री थिरता अग्नि, ज्ञान शूँ शळगाय ने ।
इन्द्रयाँ ने प्राण रा शारा, कर्मा ने होम दे नरा ॥२७॥

कतराक तो सब इन्द्रियाँ रा कामाँ ने और प्राण रा कामाँ ने आत्म संयम रूपी योग री अग्नि में होम देवे है। या अग्नि ज्ञान शूँ शळगी थकी व्हे है ॥२७॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथा परे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥

धन रा तप रा योग, वाणी रा यज्ञ ज्ञान रा ।
चित्त रोक सदा सावे, गाढ़ी कमर बाँधने ॥२८॥

यूँ वा'रली वस्तुवाँ रा साधन, तप रा साधन और योग रा साधन तथा पाठ शुमरण ने ज्ञान रा साधन वाळा, मन रा गाढ़ा ने होंश्यार मनख व्हियाँ करे है ॥२८॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

उशाँश शाँश में होमे, शाँश होमे उशाँश में ।
उशाँश शाँश ने रोके, प्राण री साधना करे ॥२९॥

कतरा ही यो शाँश आवे जावे ईं री ही साधन करे है। यो ही वणा रे अखण्ड होम है। कतरा ही आवा जावा री गति में जो रोके है वणीज ने करवा वाळा (साधवा वाळा) व्हे है। अणा रे सदा ही प्राणायाम व्हे है ॥२९॥

१—संयम-त्रयमेकत्र संयमः (यो० सू० ३-४) ध्यान, धारणा और समाधि तीन ही एकत्र होवे जी ने संयम के'वे है।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

कतरा साध आहार, प्राणाँ में प्राण होम दे ।
ई सबी यज्ञ ने जाणे, यज्ञ शूँ हीण पाप ई ॥३०॥

कतराक बा'र शूँ लेणो शमेट ने शाँश ने शाँश में होम देवे है। मन री दौड़ रुकी ने शाँश आपो आप रुक जावे यो ही होमणो है। यूँ ई सब ही साधन ने जाणे है ने जाणणो ही होम है। यूँ याँ साधना शूँ ही दोष मट जावे है ॥३०॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

पावे वी ब्रह्म खावे जी, वंच्यो अमृत यज्ञ रो ।
वना यज्ञ न यो लोक, दूसरो तो कई जदी ॥३१॥

पछे साधन रो वंच्यो अमृत वी भोगे है। अखण्ड पर ब्रह्म ने पाय लेवे है। वना साधन रे यो ही लोक नी वणे जदी, हे कुरुसतम! दूसरा री तो आशा ही कूँकर व्हे शके ॥३१॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

यूँ नरी भाँत रा यज्ञ, वेद विस्तार शूँ कह्या ।
कर्म शूँ यज्ञ ई शारा, यूँ जाण्याँ छूट जायगा ॥३२॥

यूँ नरा ही साधन वेदाँ में विस्तार शूँ आवे है, वणा सब साधनाँ ने कर्म शूँ व्हेवा वाळा शमझणा, यूँ जाणवा शूँ हीज थूँ छूट जायगा, क्यूँ के थूँ तो कर्म शूँ व्हेवा वाळो ही नी ॥३२॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माखिलम् पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

ज्ञान रो यज्ञ यज्ञाँ में, शरे मोक्ष सरूप है ।
सम्पूर्ण शघळा कर्म, ई में होवे समापत ॥३३॥

हे परंतप अर्जुण, अणा सब यज्ञाँ में (साधनां में) ज्ञान ने साधन शिरोमणि है, क्यूँ के अणी में कई चीज नी चावे, ने ज्ञान व्हियां ने सब ही काम पूरा व्हे जावे, बाकी कई नी रे'वे। हे पार्थ, अर्जुण! जीं शूँ सब काम पूरा करणो चावे वीं ने ज्ञान कर लेणो चावे ॥३३॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

ई ने थूँ जाण सेवा शूँ, पूछवा शूँ प्रणाम शूँ ।
ज्ञान ने उपदेशेगा, ज्ञानी जी पहूँच्या थका ॥३४॥

वणी ज्ञान ने थूँ नरमी शूँ सेवा कर ने पूछेगा तो पूरा ज्ञानी थनें उपदेश करेगा ॥३४॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥

अणी ने जाण थूँ फेर, पायगा दुःख यूँ नहीं ।
आप में जग मारा ने, म्हारा में देखशी पछे ॥३५॥

हे पाण्डव! वणी ज्ञान ने जाण ने अवाणूँ री नाईं थने फेर कदी भी भ्रम, ने अज्ञान नी आवेगा, जणी शूँ सब संसार थाँ में हीज दीखवा लाग जायगा। अणी केड़े थूँ भी म्हारे में दीख जायगा ॥३५॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ ३६ ॥

पाप्याँ में थूँ महापापी, जो व्हे तो पण पाप शूँ ।
ज्ञान री नाव में बैठ, से'ल में तर जायगा ॥३६॥

जतरा पाप करवा वाळा है वणाँ में भी जो थूँ सब शूँ म्होटो पापी व्हेगा तो भी सब पाप शूँ अणी ज्ञान री नाव में बैठ ने तर जायगा ॥३६॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

टींडकाँ ने करे राख, लाय ज्यूँ शळगाय ने ।
यूँ ही या ज्ञान री लाय, सारा ही कर्म बाळ दे ।।३७।।

हे अर्जुण ! ज्यूँ खूब वधी थकी लाय टीडकाँ ने राखोड़ो कर न्हाँखे है, यूँ ही या ज्ञान री वास दी सब कर्माँ रो राखोड़ो कर न्हाँखे है ।।३७।।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।। ३८ ।।

पवित्र ज्ञान शो दूजो, अठे और कई नहीं ।
आप ही में मळे ज्ञान, कर्म योग शधे जदी ।।३८।।

थूँ नक्की जाण के ज्ञान शिवाय और आछो कई नीं है । यो हीज अणी मनखा जनम रो लाभ है । पण अश्यो ज्ञान साधन सध जावे जदी आपाँ में हीज वगत पाय ने लाध जावे है ।।३८।।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।। ३९ ।।

विश्वासी ज्ञान ने पावे, लागे जो थिर चित्त शूँ ।
ज्ञान रे साथ ही शान्ति, आवे, जावे कदी नहीं ।।३९।।

विश्वास वाळो, अणीज में लागो रे'वे ज्यो, ने इन्द्रियाँ ने जीतवा वाळो, ज्ञान ने पाय शके है; ने ज्ञान पायो ने परम शान्ति पावा में देर नी लागे, क्यूँ के ज्ञान को' के परम शान्ति को' एक है ।।३९।।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।। ४० ।।

विश्वास हीन अज्ञानी, भे'मी पावे विनाश ने ।
दो ही लोक मटे वीं रा, भे'मी रे सुख है नहीं ।।४०।।

पण अजाण में वना विश्वास रो ने भे'मी तो आपणा पग पे आप ही कुराड़ी वा'वे है । ज्ञान शूँ छेटी छेटी भागे है । जणी रे भे'म है वणी रे तो लोक-परलोक दोई वगड़ गिया । वो सुखी कूँकर व्हे ।।४०।।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥ ४१ ॥

कर्म ने योग शूँ छोड़े, ज्ञान शूँ भे'म जो तजे ।
आप ने पाय लेवे शो, कर्मा शूँ बँध नी शके ॥४१॥

हे धनंजय, अर्जुण! जणी रे साधन योग[1] शूँ कर्म छूट गिया, ने ज्ञान[2] शूँ भे'म मट गियो, वो आप रूप व्हे गियो। वणी ने कर्म कदी भी नी बाँध शके है ॥४१॥

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्री कृष्णार्जुनसंवादे "कर्मब्रह्मार्पणयोगो" नाम चतुर्थोध्यायः ।

ईं शूँ अज्ञान रो भे'म, आपणा ज्ञान खड्ग शूँ ।
हिया मूँ काट ने ऊठ, योग रो ठाट ठाट ले ॥४२॥

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्म विद्या योगशास्त्र में
श्री कृष्णअर्जुण संवाद मे "ज्ञान योग" नाम चौथो अध्याय समाप्त व्हियो ।

हे भारत, अर्जुण! अणी वास्ते थूँ अणी भे'म ने काट ने छेटी न्हाँख दे। यो ज्ञान री तरवार शूँ हीज कटे है। वा तरवार आपणीज है। यो अज्ञान शूँ व्हे, ने मन में रे'वे है। यूँ ईं ने काट ने यूँ काम कर, साधन कर, आळस छोड़ ने ऊठ जा ॥४२॥

ॐ वो सांचो है यूं श्री कृष्ण अर्जुण री वात चीत में श्री भगवान री भाषी
उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योग शास्त्र में "ज्ञानयोग" नाम रो चौथो
अध्याय समाप्त व्हियो ॥ ४ ॥



(१-२)—यो ही सांख्ययोग, ने कर्म करणो, ने वीं ने छोड़णो है। अर्जुन रा अ० ३ श्लो० १ रो उत्तर है।

ॐ

पञ्चमोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

ॐ पांचमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण कही ।

कर्म रो छोड़णो के'ने, साथे ही करणो कहो ।
दोयाँ में होय आछो जो, शो कहो शोच ने म्हने ॥१॥

ॐ पांचमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण कियो के हे कृष्ण! आप घड़ीक तो काम करवा री के'वो ने, पाछी साथे ही काम छोड़[1] देवा री भी के' दो हो, अणा दोई वाताँ में शूँ म्हने एक हीज वात आप ने के'णी चावे, ने वा वात अशी व्हेणी चावे के जणी शूँ म्हारो दुःख मट जावे। अशी रामबाण वात एक के'णी चावे ॥१॥

श्री भगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

१—'संन्यास' काम छोड़ देवा रो नाम है और 'सांख्य' ज्ञान रो, तत्त्वां रा (गुणां रा) सुभाव रो नाम है। गुणां रा सुभाव ने जाण ने करणो ही 'योग' वाजे है। अणीज योग रो वर्णन ह्वेवा शूं गीता 'योगशास्त्र' वाजे है। गुणां रो सुभाव जाण लेणो सहज है पण वणी रो निश्चय नी ह्वे तो वार वार हर एक काम में गुणा रा सुभाव ने देखतो रे'णो ही 'कर्मयोग' है। यो सब रे अनिवार्य है।

श्री भगवान् आज्ञाकारी ।

त्याग, ने कर्म रो योग, दो ही कल्याणकारक ।
अणाँ में कर्म छोड्याँ शूँ, कर्म रो करणो भलो ॥२॥

श्रीभगवान् हुकम कीधो के काम छोड़णो ने करणो दोयां शूँ दुःख मटे है, ने विलकुल मटे है पण अणा दोयां में भी काम छोड़वा[1] वच्चे काम करणो घणो आछो है ॥२॥

ज्ञेयः सनित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महावाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

संन्यासी जाणणो वीं ने, जीं ने चाह अचाह नी ।
जणी ने दोय नी दीखे, वणी ने बंध है कठे ॥३॥

हे महावाहू! (अर्जुण) वणी रा तो काम सदा ही छूटा थका ही जाणणा जो राग द्वेष नी करे है। जो राग द्वेष नी करे है वो और भी (सुख-दुःख, भलो-बुरो आदि) कई नी करे है। वणी रे बंधन शूँ छूटवा री भी नीं करणी पड़े, क्यूँ के छूटया रो कई छूटे। (छूटवा रो दुःख भी वीं ने नी पड़े है) ॥३॥

साङ्ख्ययोगौ[2] पृथग्वालाः, प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

छोड़णो करणो न्यारो, कहे मूढ़ न पंडित ।
एक भी आचर्याँ, आछ्याँ दोयाँ रो फळ पायले ॥४॥

थोड़ी शमझ वाळो हीज छोड़णो ने करणो न्यारो न्यारो जाणे है। जाणकार शमझणा तो दोई एक ही वात है, यूँ जाणे है, क्यूँ के एक ही में चोमेर शूँ लागो रेवे वो दो ही रो फळ पाय लेवे। (दो नाम है, वात एक है, जीं शूँ) ॥४॥

१—काम छोड़वा रो अभिप्राय खुद भगवान् आगे हुकम करेगा के 'जीं ने नी संन्यासी जाणणो चावे के जी रे चाह अचाह नी व्हे' ने या वात ज्ञान शूं व्हे है।

२—सांख्य=ज्ञान, योग=साधन, यो अर्थ करणो ।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।। ५ ।।

योगी ने भी मले वा ही, त्यागी ने ज्या जगाँ मले ।
एक ही त्याग ने योग, दीखे, दीखे वणीज ने ।।५।।

जो अणा ने (करणो-छोड़णो ने) एक ही देखे है, वो हीज देखे है, न्यारा देखे वणा रे आँखाँ नी है, क्यूँ के छोड़वा वाळा, ने करवा वाळा एक हीज ठकाणो पावे है ।।५।।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ।। ६ ।।

संन्यास तो घणो दो'रो, पावणो योग रे वना ।
योगी ने ब्रह्म पावा में, देर लागे घणी नहीं ।।६।।

हे महाबाहू! (अर्जुण) यो ज्ञान शूँ छोड़णो ने साधन रो करणो एक ही है । पण ज्ञान वना छोड़णो घणो अबको है, ने फेर साधन भी नी करे जदी तो के'णो ही कई ? पण ज्ञान सहित साधन वाळो तो घणो झट परमात्मा ने पाय लेवे है ।।६।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।। ७ ।।

योगी पवित्र रे तावे, आपो ने इन्द्रियाँ सबी ।
सबां री आतमा योगी, करे तो भी बँधे नहीं ।।७।।

ज्ञान सहित करवा वाळो है वो तो सदा ही शुद्ध है । वणी रे करवा रो कादो नी लागे है, वणीज आपने जीत लीधो, ने इन्द्रियाँ भी वणी रे हीज आधीन शमझणी, वो हीज आप हीज सबाँ री आत्मा व्हे रियो है वो करतो थको भी नी उळझे ।।७।।

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ।। ८ ।।

कई भी म्हूँ करूँ नीज, माने ज्ञानी अडोल यूँ ।
देखे शुणे अड़े शूँघे, खावे शाँस चले सुवे ॥८॥

क्यूँ के वो तत्व ने (साँच वात ने) जाणे है, अणी वास्ते म्हूँ कई नीं'ज करूँ हूँ, यूँ वणी रे निश्चय व्हे जावे है, ने अणी साँच रो वणी रे कदी वियोग नी व्हे है । वो देखतो थको, शुणतो थको, अटकतो थको, शूँघतो थको, खावतो शाँस लेतो, सूवतो थको ॥८॥

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९ ॥

बोले छोड़े तथा लेवे, आँखाँ मीचे उघाड़ले ।
इन्द्रचाँ रा धर्म इन्द्रचाँ ईं, करे यूँ धारतो रहे ॥९॥

खूब बोलतो, खूब देतो, ने खूब लेतो थको, ने आँखा खोलतो ने मींचतो थको भी वो या हीज जाणे है के इन्द्रियाँ आप आपणो काम करती रे'है ॥९॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १० ॥

ब्रह्म में मेल कर्मां ने, उळझ्याँ विन, आचरयां ।
पाप लेपे नहीं ज्यूँ नी, लेपे कमळ में जळ ॥१०॥

यूँ ब्रह्म में कर्मां रो भार मेल ने, वणा री उळझण छोड़ ने काम करे है, वो काम री उळझण में नी आय शके है, ज्यूँ कमळ रा पाना पाणी शूँ नी भीजे, यूँ ही वो कर्मां शूँ न्यारो हीज रे'वे है, क्यूँ के यो वीरो सुभाव है ॥१०॥

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

काया शूँ मन बुद्धी शूँ, इन्द्रचाँ शूँ पण केवल ।
आपने शोधवा योगी, उळझ्याँ विन आचरे ॥११॥

काया शूँ, मन शूँ बुद्धि शूँ ने केवल इन्द्रयाँ शूँ भी योगी कर्म करे है, पण वी कर्म शूँ न्यारा रे'ने आप रा शोधन रे वास्ते हीज कर्म करे है, अर्थात् कर्म में अकर्म ने देखता रे' है, ने अकर्म में कर्म ॥११॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ १२ ॥

कर्म रा फळ ने छोड़, योगी परम शान्ति ले ।
अयोगी कामनाँ राखे, फळाँ में लाग ने वँधे ॥१२॥

यूँ म्हारा में लागो थको कर्म रा फळाँ शूँ छूट जावे है, ने सदा सुखी व्हे जावे है । पण म्हारा शूँ न्यारो रे'वा वाळो तो फळ में लागो रे'वे ने इच्छा शूँ वँध जावे है ॥१२॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्नकारयन् ॥ १३ ॥

मन शूँ सब कर्माँ ने, योगी छोड़ रहे सुखी ।
नो द्वार पुर में जीव, करावे नी करे कई ॥१३॥

अणी नो पोळाँ री नगरी रो राजा तो नी तो अणी नगरी में कई करे, नी जो कई करावे है । या वात थूँ निश्चय जाण ले । वो तो सब कर्माँ ने मन सेथी कजाणाँ कदकाई छोड़ ने आणन्द शूँ वैठो है, वो कणी रे ही आधीन नी है ॥१३॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥

करे ईश्वर नी कीं रे, कर्म ने करता पणो ।
कर्म रा फळ नी जोड़े, ई सुभाव करे सभी ॥१४॥

ई जो थने कर्म, ने करवा वाळा, ने वणाँ कर्माँ रा भोग, संसार में दीखे है, अणा मेलो एक भी ईश्वर रो कीधो नी है, पण ई तो सुभाविक ही व्हे है ॥१५॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५ ॥

सबाँ में वस नी लेवे, कीं रा भी पाप पुंन वो ।
ढँक्यो अज्ञान शूँ ज्ञान, जीव जी शूँ भमे सभी ॥१५॥

ई अतरा मनख पाप पुन्न करता दीखे है, वणा शूँ परमात्मा विलकुल अटके ही नी है, या वो'त सही वात है, पण वो कणी शूँ छेटी भी नी है या एक फेर खूवी है। ई जीव जन्त जो आतमा ने पाप पुन्न करवा वाळो के है, ई रो कारण तो अणा रो अज्ञान है। अणी अज्ञान शूँ ज्ञान दव गियो है, जणी शूँ अशी ऊँधी वात अणा रे मन में शमाय गी है ॥१५॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

आपणा ज्ञान शूँ नाश, कर्यो अज्ञान रो जणा ।
वणा रो सूर्य शो ज्ञान, प्रकाशे पर ब्रह्म ने ॥१६॥

ने जणाँ, ज्ञान शूँ अणी वात ने जाण लीधी है वणा रो अज्ञान मट गियो, ने ज्ञान व्हे गियो, ने वणी ज्ञान आप शूँ ही पर ने जणाय दीदो, ज्यूँ दीवो, दीवो जोवा वाळा ने वतावे, ज्यूँ सूर्य सव संसार ने वताय दे ॥१६॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

वो ही बुद्धी वो ही आत्मा, ज्यां रे आधार आप वो ।
कधी भी नी फरे पाछा, ज्ञान शूँ हीण पाप वी ॥१७॥

ने एक दाण क्षण मात्र यूँ वीं ने जाण्या केड़े पछे वणी में हीज वुद्धि निश्चय, ने वणी रो ही रूप, ने वणी रो ही आसरो, या वणी रो शरणा वाळो व्हेवाय जाय, ने यूँ ज्ञान शूँ अज्ञान मट्याँ केड़े पाछो फर ने अज्ञान तो कदी भी नी आय शके है ॥१७॥

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

शुद्ध ब्राह्मण कुत्ता में, हाथी चंडाळ गाय में ।
शारां में समता जाणे, वाँ ने पण्डित जाणणा ॥१८॥

क्यूँ के विषमता ही अज्ञान है । वणा ने, वड़ा भण्या गुण्या ब्राह्मण में, हाथी में, गाय में, भंगी में ने कुत्तां में, आप में है वो ही आत्मा एक शरीखी जणाय जाय है । ज्यूँ शोनी ने शारा गे'णा में शोनो शरीखो ही दीखे । गे'णा और, ने शोनो एक ॥१८॥

इहैव तैर्जितःसर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥

अठे ही जन्म वी जीत्या, जणाँ रे समता शधी ।
समता ब्रह्म निर्दोष, जीं शूँ वी ब्रह्म में रहे ॥१९॥

अश्या समदर्शी ज्ञानी अठे हीज वणवा वगड़वा शूँ न्यारा व्हे गिया । (जमारो जीत गिया) क्यूँ के ब्रह्म में विषमता नी है अणीज वास्ते वी ब्रह्म में ठे'र गया; ने ठोकराँ मटी ॥१९॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

बुरी शूँ घबरावे नी, आछी शूँ हर्ष नी करे ।
सचेत स्थिर बुद्धी रो, ज्ञानी रो वास ब्रह्म में ॥२०॥

आछा शूँ राजी व्हेणो नी चावे, पण व्हेवाय जाय,क्यूँ के बुद्धि चञ्चळ है ने अज्ञान वद्यो व्हेवा शूँ कई शूझे नी, पण ब्रह्मज्ञानी तो ब्रह्म में हीज रे'वे जद वणी में ई कूँकर आय शके ॥२०॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनियत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

वा'रला स्वाद शूँ छूटे, पावे जो सुख आप में ।
वो योगी ब्रह्म रो रूप, वणी रो सुख नी मटे ॥२१॥

वा'रला[1] सुखाँ में तो वणी रो मन उळझे ही नी, क्यूँ के सुख ने तो वो आप ही में पाय लेवे है। अश्यो ही ब्रह्म योग में लागो थको योगी वाजे है, ने अखण्ड सुख वो हीज भोगे है ॥२१॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

वा'रला सुख सारा ही, दुःखां री हीज खान है।
वणे ने वगड़े याँ में, ज्ञानवान रमे नहीं ॥२२॥

हे कौन्तेय अर्जुण! वा'रला सुखाँ शूँ हीज मनख अपार दुःख पावे है। अणी में कई सन्देह नी है, क्यूँ के अणा रो आदि ने अन्त है जी शूँ शमझणा अणा में नी रमे है ॥२२॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

देह रे छूटवा पे'ली, अठे ही खम जो शके।
काम ने क्रोध रो वेग, वो योगी वो सुखी सदा ॥२३॥

शरीर रे छूटवा पे'ली ही काम ने क्रोध रा वेग ने जो मनख खम शके, वो अठे हीज अवश्य सुखी है ने योगी है, क्यूँ के वणी रे शरीर रे'ताँ थकाँ ही शरीर मन सेथी छूट गयो ॥२३॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

माँय ही जोत आनन्द, माँय ही रमतो रहे।
ब्रह्म रो रूप वो योगी, ब्रह्म ही में सुखी रहे ॥२४॥

जणी ने वा'रणे नी पी माँय ने हीज सुख लाध जावे. जदी पछे वो वा'रणे कई काम आवे? वो तो माँय हीज ठे'र जावे, क्यूँ के वणी रे

१—वा'रला सुख ने, मायला सुख में यो ही भेद है के वो तो फगी वा'रला वस्तु में दीखे, ने यो आपणे में हीज दीखे, सुख तो वो हीज एक ही है।

यो ठे'रणो मायला ज्ञान रा उजाळा शूँ है, अश्यो योगी ब्रह्म रो रूप[1] व्हियो थको हीज मोक्ष (ब्रह्मप्राप्ति) ने पावे है ॥२४॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

दुविधा पाप हीणा जी, भलाई सब री करे ।
मन हाते सदा ज्याँ रे, वी पावे ब्रह्म रो सुख ॥२५॥

पण अशी ब्रह्म प्राप्ति रूपी मोक्ष ने, जी ऋषि उत्तम आचार वाळा अज्ञान ने मटाय दे है, अणी शूँ जणा रे भेंम भी मट जावे है, अणी शूँ जणा रो मन भी अधीन व्हे ने जो समदर्शी व्हे जावे है,अणी शूँ सबाँ रो भलो करणो हीज जणा रो काम व्हे जाय है, वी पाय शके है ॥२५॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

काम क्रोध मचा ज्याँ रा, जत्याँ रा मन ठे,र ने ।
आपने ओळख्यो वाँ रे, मोक्ष है सब ही जगाँ ॥२६॥

यूँ आपाँ ने जाण लेवे वणा रे तो चौमेर शूँ ब्रह्म प्राप्ति रूपी मोक्ष व्हियो व्हेवायो ही है, पण अश्या मोक्ष रे वास्ते अज्ञान ने मटावणो[2] जरूरी है। जणा रो अज्ञान मट्यो वी तो काम क्रोध शूँ न्यारा, साधु, ने मन जीतवा वाळा हीज है ॥२६॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥

टोकी आड़ी करे कीकी, बा'रली वात वीशरे ।
नाशा में आवणो जाणो, शाशाँ रो ज्यो समाय ले ॥२७॥

१—ब्रह्मशुं न्योरो कोई मोक्ष नी है ।
२—अज्ञान ने मटावणो, सही वात जाण लेणो हीज है और गीता ने जाणणो हीज सही जाणणो, है । यो ही सही है ; बस ।

यूं वा'रला सुखाँ ने वा'रणे हीज जाण ने वा'रणे कर देणा और पछे भुँवाराँ रे वच्चे नजर ठे'राय देणी, अणी शूं नाक में आवा जावा वाळो श्वास ठे'र जाय है ॥२७॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

इन्द्रियाँ मन बुद्धी ने, जीत ज्यो आप में रमें ।
वना इच्छा भय क्रोध, सो सदा मुक्त हीज है ॥२८॥

जदी वणी रे मन बुद्धि भी अधीन व्हे जावे, ने वणी री साँची वाताँ में रुचि वध जावे । पछे तो इच्छा छूट जावा शूं भय क्रोध वणी में कूँकर रे'वे? ने जणी रो अश्यो मन व्हे गयो वणी रे अखण्ड मोक्ष व्हेवा में कई बाकी रियो? वो तो पेली ही मुक्त हीज हो, ने सदा मुक्त रूप हीज है ॥२८॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥

ॐ तत्सदिति श्री भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे "कर्मसंन्यासयोगो" नाम पंचमोऽध्यायः ।

भोगी यज्ञ तपस्या रो, सवाँ रो नाथ भी म्हनें ।
म्हने ही मित्र शाराँ रो, जाण ने शान्ति पाय ले ॥२९॥

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीता उपनिषत् में ब्रह्म विद्या योगशास्त्र में श्री कृष्ण अर्जुण संवाद में "कर्म संन्यासयोग" नाम रो पांचमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥

जतरे खुद ही यज्ञ तपस्या रो भोगवा वाळो वणे, ने म्हने सब शुभ कर्माँ रो भोगवा वाळो नी गणे, जतरे वीं ने सुख कूँकर व्हे? जो म्हने सवाँ में महा सामर्थ्य देवा वाळो, सवाँ रो भलो करवा वाळो जाण लेवे, वो सुख ने वधावे है, ने अनन्त सुख पाय लेवे है ॥२९॥

ॐ वो साँचो है यूँ श्रीकृष्ण अर्जुण री चर्चा में श्री भगवान् री भाषी थकी उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में "कर्म संन्यासयोग" नाम रो पाँचमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥५॥



ॐ

षष्ठोऽध्यायः ।

श्री भगवानुवाच ।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१॥

ॐ छट्ठो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

कर्म रा फळ ज्यो छोड़े, धर्म रा कर्म आचरे ।
वो संन्यासी वुही योगी, नी वना घरबार रो ॥१॥

ॐ छट्ठो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् हुकम कीधो के, जो करवा रा काम तो करतो रे'वे, पण वणी काम रा फळ[1] री आड़ी नी झुके, वणी रो हीज कामकरणो (योग) ने छोड़णो (संन्यास) सनद है, पण आपणा धर्म, कर्म (अग्नि ने क्रिया) छोड़वा शूँ कोई योगी ने संन्यासी थोड़ो ही व्हे शके है ॥ ॥१॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

जीं ने लोग कहे त्याग, योग वो हीज जाण थूँ ।
योगी कोई नहीं होवे, चावना त्यागियाँ वना ॥२॥

१—फळ री इच्छा नी राखणो, सांख्य ने सत्य मानणो हीज है । अर्थात् आत्मा ने अलग जाण लेणो ही फळ री इच्छा नी राखणो है ।

हे पाण्डव! (अर्जुण) जीं ने छोड़णो के'वे है वो करणो हीज है, ने करणो वो छोड़णो हीज है। मन रा विचाराँ ने नी छोड़े[1] जतरे कोई भी योगी (करवा वाळो) नी व्हे शके ।।२।।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।।३।।

योग पे चढ़णो चावे, वो मुनी कर्म शूँ चढ़े ।
योगारूढ़ रहे वो ही, ध्यान शूँ योग पे थिर ।।३।।

अश्या संन्यास वा योग पे चढ़वा रे वास्ते पे'ली काम करणो ही पड़े, (वना गाय दूध कूँकर व्हे?) ने वो करवा वाळो हीज जदी योगारूढ़ व्हे जावे पछे तो शान्ति हीज वणी रे उपाय रे'जावे। कणी भी काम री, वा छोड़वा री नी रे'वे ।।३।।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।।४।।

इन्द्रयाँ रा धर्म कर्मां में, ज्यो कधी उळझे नहीं ।
मन री दोड़ छोड़े ज्यो, योगारूढ़ कहाय वो ।।४।।

योगारूढ़ वी ने के'वे है के जणीं रा विचार न्यारा व्हे जावे (ज्यूँ हाथ मूँ लकड़ी छूट जावे) जदी वो नी तो इन्द्रियाँ रा स्वदाँ में उळझे, ने नी जो कणी काम में उळझ शके। (जाणे बेकरड़ा री थेली हाथ सूँ पड़गी) ।।४।।

उद्धरेदात्मनात्मनं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।५।।

चढ़ाणो आप ने आप, आप ने पाड़णो नहीं ।
आप ही आप रो वैरी; आप ही शेण आप रो ।।५।।

अणी योगारूढ़ पणा ने पावा रे वास्ते आपणी हीज दृढ़ बुद्धि काम दे है, अणी में कदी भी बेपरवाही कर ने आप घात नी करणो।

१—छोड़णो=न्यारो करणो। आत्मा रो ज्ञान ही करणो, ने छोड़णो दो ही है, यो भाव है।

थूँ नक्की जाण ने मनख आप ही आप रो वेरी है, ने आप ही आपरो शेण है ।।५।।

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।६।।

आप शूँ आप ने जीत्यो, आप रो शेण आप वो ।
आप शूँ आप नी जीत्यो, वेरी वो आप आप रो ।।६।।

जणी आपणे ऊपरे आपणो अधिकार कर लीधो, वो आप ही आप रो शेण है, ने जणी यूँ नीं कर ने आपणो आपो खोय दीधो वणी जाणे आपणे साथे आप ही वेरी रो वर्ताव कर लीधो । (जो आपाँ पे अधिकार नी कर रियो है वो आपणे साथे ही दुशमणी कर रियो है) ।।६।।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।७।।

पायो वो परमात्मा ने, आपने जीत ज्यो सुखी ।
समान सुख दुःखादि, मान ने अपमान भी ।।७।।

यूँ जणी आपा ने अधीन कर लीधो वीं ने परमात्मा मिल गियो, ने नी विछड़े जश्यो मिल गियो । वो शान्ति ने पाय गियो, (क्यूँ के कर-कशर अठे ही है वठे नीं) जणी यूँ परमात्मा ने पाय लीधो वणी ने पछे ठंड गर्मी ने मान-अपमान आदि में कणी भी वगत वो पाछो गमे नहीं ।।७।।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।८।।

ज्ञान ने ध्यान में राजी, इन्द्रियाँ जीत एक शो ।
योगारूढ़ हुयो वीं रे, धूळो धन समान है ।।८।।

क्यूँ के वो वारणे, ने मायने परमात्मा ने जाण ने धाप गियो है, वीं रे अबे कई वाकी नी रियो है, वो वणी अविचल जगा टें'र गियो है.

ने इन्द्रियाँ इग्यारा ही वणी आछी तरे'जीत लीधी है। गारो ने शोनो वणी रे शरीखो ही व्हे रियो है। अश्यो योगी ही लागो, ने परम पद पायो थको वाजे है। (दूज्यूँ वीं री तो वो हीज जाणे) ॥८॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुपु ।
साधुष्वपि च पापेपु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥६॥

पराया आपणा शारा, वैंरी शेण उदाश में ।
पापी ने पुंन वाळा में, समता सो सदा वड़ो ॥९॥

आपणा शुभ चिन्तक, मित्र, सदाचारी, उदास, गवाही, वैरी, लागती रा, पापी, ने पुन्न वाळा में भी अश्यो सम बुद्धि वाळो हीज सदा वत्तो गणणो। (करम छोड़वा वाळा तो ओछा है) ॥९॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

योगी साधे सदा योग, वैठ एकान्त एकलो ।
आशा ने ममता छोड़े, ठे'रावे देह चित्त ने ॥१०॥

ई शूँ योगी ने (साधन करवा वाळा ने) चावे के बरोबर आपाँ ने परमात्मा रे आगे हीज राख वा रो मा'वरो राखतो रे'वे, अणी वात ने कदी नी भूले के म्हारे, ने वणी रे वच्चे और कोई नी आय शके। यूँ एकंत में एकलो जम ने बैठ जावे, मन ने शरीर ने ठे'राय देवे आशा ने ममता छोड़वा शूँ यूँ व्हे शके है ॥१०॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

आछी जगा जमावे वो, समान थिर आशण ।
कुश पे मृगछाला रो, वस्त्र रो सव ऊपरे ॥११॥

पे'ली तो आछी जगा अणी कामरे वास्ते विचार ले, अठे शूँ पछे डग पच आपणो नी व्हे। अशी जगा पे पे'ली डाभ रो आशण विछावे, वणी पे हरण री खाल रो, नें वणी पे कपड़ा रो आशण विछावणो चावे।

पण वो घणो ऊँचो वा वणो[1] नीचो भी नीं रेणो चावे अर्थात् एक शरीरको जम जाय ॥११॥

> तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
> उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

> वठे आशण पे बैठ, रोक ने चित्त इन्द्रियाँ ।
> आपने शोधवा योगी, ठे'रावे मन आप में ॥१२॥

अश्या आशण पे बैठने इन्द्रियाँ, मन री चाल, ने शरीर री चाल जणी रे तावे व्हेगी व्हे, वो योगी मन ने एक कानी हीज जोड़े । अणी तरे' शूँ फे'र आपने सुधारे, ऊँचो चढ़ावे ॥१३॥

> समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
> संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

> शूधा ठे'राय ने राखे, शीश शांकळ नाड़की ।
> देखे नहीं कणी आड़ी, देख ने नाक री अणी ॥१३॥

वणी वगत थिर व्हियो थको वो योगी शांकळ, सब शरीर, गर्दन ने रोक ने हालवा नीं दे । यूँ शूधो बैठ नाक रा टोरक्या ऊपरे आँख रो आशण[2] ठीक तरे' जमाय देवे । पछे कठीने ही नी देखे । (आपणा नाकरी अणी देख ने पछे ठे'र जावे) ॥१३॥

> प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
> मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

> शान्तचित्त सदा योगी, ब्रह्मचारी वनाभय ।
> शमेट मन म्हा में, म्हांरा में ही लागियो रहे ॥१४॥

यूँ मनरा हिलोळा मटवा शूँ वणी रे कई भय नी र'वे ने ब्रह्म

१—घणो ऊँचो नीचो शरीर, नेत्र, मन, रो कोई भी आशण नी रे'णो चावे ।

२—एक एक आशण जमाय ने वदता जाणो, ने दूशरो जमावणो यो भाव है । देश रो, ने पछे आछी जगाँ रो, ने पछे कुशादि रो, ने पछे शरीर रो, ने पछे आंख रो, ने पछे मन रो, ने पछे आपणो आसण परमात्मा में जमावे ।

में हीज वीं रो वास व्हे जावे । अश्यो यूँ मन ने रोक म्हारे में मन ने लगाय केवे, वो लागो थको योगी म्हाँ में ही तत्पर व्हे ॥१४॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

ठे'राय आपने यूँ जीं, मन जीत लियो सदा ।
म्हारे में हीज वो पावे, योगी परम शान्ति ने ॥१५॥

यूँ वो साधक निरन्तर म्हारे में मन ने राखतो थको आधीन मन वाळो (आपने सुधारे है, ऊँचो चढ़ावे है, आपणो शेग व्हे है) म्हारी परम शान्ति जणी ने पर, मोक्ष वा सुख के'है वीं ने पाय लेवे है । क्यूँके यो म्हारे में हीज है ॥१५॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

घणो खावे नहीं खावे, घणो शोवे शुवे नहीं ।
वणी रे योग नी होवे, जणी रे परमाण नी ॥१६॥

अणी परम सुख ने पावा रे वास्ते नी तो घणो खावा री जरूरत है, नी जो भूखा मरवा शूँ हीज यो सुख मळे है । हे अर्जुण! यूँ ही खूब पड्या पड्या नींद काड़वा शूँ वा जागवा शूँ हीज या शान्ति मळती व्हे, या भी वात नी है ॥१६॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

हरणो फरणो काम, करणो परमाण रो ।
वणी रा योग शूँ दुःख, शघळा मट जाय है ॥१७॥

खावणो, पीवणो, हरणो, फरणो अथवा हरेक काम अन्दाज[1] रो करवा वाळा (कामने हकशर करवा वाळा) रे यो दुःख मटावा वाळो

१--आशणाँ री समता शधी ने पछे ब्रह्म तो दूज्यूँ ही सम हीज है । अठी री समता सधी ने वा समता आई ने वा जाणी ने या आई; एक सी वात है ।

योग व्हे है, क्यूँ के वणी रो शोवणो ने जागणो भी योग में हीज व्हे है ॥१७॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

जदी यो रुकियो चित्त, आप ही में रहे थिर ।
रहे नी कामना कोई, सोई योगी व्हियो सही ॥१८॥

जदी यूँ शध्यो थको आप में हीज ठे'र जावे है, जदी वीं रो साधन पूरो व्हियो शमझ लेणो। क्यूँ के सब कामना वणी रा अंतश में शूँ मट जावे है ॥१९॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९॥

रहे ज्यूँ लोळ दीवा री, एकशी वायरा वना ।
यूँ रहे चित्त योगी रो, लाग ने आपमें थिर ॥१९॥

वणी वगत, ज्यूँ वायरो नी लागतो व्हे वणी जगा रो दीवो वना हाल चाल रो एक शरीखो शलगतो रे' है, वशी हालत व्हे जाय है; क्यूँ के वो मायला मन ने आपणे में हीज (म्हा में) लगावतो रे' है। अणी शूँ म्हारे शवाय वणी साधक री और गती ही नीं है, जी शूँ वो (यतचित्त) अधीन चित्त वाळो वाजे है ॥१९॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

जदी यूँ शमटे चित्त, योग शूँ शाधियो थको ।
जदी यो आप शूँ आप, देख व्हे आप में सुखी ॥२०॥

यूँ योग री सेवा (साधना) करताँ करताँ जटे वणी रो मन

१—क्यूँ के और जगाँ जावे जदी हाले वणी शिवाय और जगाँ कठे है के वणी शूँ हाले अर्थात् डगे। डगवा में भी तो वो अडग है। (नाशी में अविनाशी ने जाणे सो ही सुजाण है)

ठे'र जावे है, क्यूँ के वो मन रोकवा शूँ नी पण योग सेवा शूँ स्वतः रुक्यो थको व्हे जाय, वणी वगत आप शूँ आप में हीज आप ने देखतो थको तृप्त व्हे जाय है ॥२०॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

अनंत सुख दीखे वो, बुद्धि शूँ इन्द्रियाँ वना ।
वीं ने पायाँ पछे वीं शूँ, यो कधी भी हटे नहीं ॥२१॥

वणी रो सुख हीज साँचो ने अखण्ड सुख है। वींने वणी रो जीव हीज जाणे है, अणाँ इन्द्रियाँ शूँ वो नी दीख शके। जठे यूँ अणी सुख ने जाणे है वठा शूँ असल में देख ने देखाँ तो यो नीज डगे है ॥२१॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

जणी लाभ वचे वत्तो, ओर लाभ गणे नहीं ।
अणी में ठे'र ने म्होटा, दुःख शूँ भी डगे नहीं ॥२२॥

क्यूँ के अणी शिवाय और कोई वत्तो लाभ (सुख) है ही नी, ने वो माने ही नी है ने वठा शूँ म्होटा शूँ म्होटो दुःख भी ईं ने नी हलाय शके है ॥२२॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

योग नाम अणी रो यो, वियोग दुख रो करे ।
जरूर शाधणो योग, नाम नी घबरावणो ॥२३॥

अणीज ने योग के'वे है, ने जाणणो, के जठे दुःख रा संयोग[1] रो वियोग व्हे जावे है। अणी वास्ते सदा सुखी रे'वा रे वास्ते योग में मन

[1]—दुःख रो वियोगतो हर कीं रे ही व्हे तो रे'वे है, ने वो हीज सुख वाजे है पण, दुःख रा संयोग रो वियोग नी व्हेवा शूँ पाछो दुःख आय जावे है। दुःख रा संयोग रो वियोग व्हियाँ केड़े पछे पाछो दुःख आय ही नी शके यो रहस्य है।

लगाय ने साधन करणो चावे, क्यूँ के धीरप शूँ व्हेतो व्हे तो ही व्हे है ॥२३॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥

मन री कामना शारी, शेमूळी भूल जावणी ।
इन्द्रयाँ ने सब आड़ी शूँ, मन शूँ ही शमेट ने ॥२४॥

मन रा विचाराँ शूँ हीज इच्छा व्हे है, ने इच्छा ही अनर्थ रो मूल है, अणी वास्ते इच्छा ने तो शेमूळी मटाय देणी । या इन्द्रियाँ ने रोकवा शूँ मटे है पण इन्द्रियाँ ने भी मन शूँ हीज रोकणी चावे ने चोमेर शूँ रोकणी चावे ।बारणे शूँ रोके, ने मायने खुली रे'वे जदी तो रुकी नी रुकी वरोवर ही है ॥२४॥

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥२५॥

बुद्धी में धीरता धार, धीरे-धीरे शमावणो ।
आप में मन ने मेल, कई भी चिन्तणो नहीं ॥२५॥

पे'ली तो अणी वात री नक्की कर लेणी, पछे वी ने डगवा नी देणी, पछे धीरे धीरे अणीज में रंगाय जाणो । झट निकळ जावा शूँ गे'रो रंग नी चढ़े, जी शूँ अणी में डूब जाणो चावे । आप में लागने पछे कई नी विचारणो ॥२५॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

थिरता छोड़ ने जावे, जीं जीं पे मन चंचळ ।
आप रे माँय ले आवे, वीं वीं में शूँ शमेट ने ॥२६॥

एक दाण में हीज यूँ नी व्हेवाय है, क्यूँ के मन रो सुभाव

चळवीदो है जी शूँ वीं ने एक जगा ठे'रणो नी सुँवावे है। जी शूँ यो[1] जठी जठी जावे वठी वठी शूँ ले ने पाछो आपणै ही आधीन कर दे। यूँ धीरप ने निश्चय शूँ करवा शूँ मन ने ठे'रवा में सुख दीखवा लाग जावेगा ॥२६॥

प्रशान्त मनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

मन शान्त व्हिया योगी, ब्रह्म रूपी महा सुखी ।
करणो छूट ने वीं रो, तरणो पाप शूँ हुवो ॥२७॥

जदी अणी साधक ने असली सब शूँ वत्तो सुख आवा लागेगा (सहज में शगत ही आय जायगा) क्यूँ के अणी री चंचळता तो पे'ली धोवायगी साधन शूँ, पछे छेटी जाणतो ज्या नजीक आयगी, जदी फेर करणो कई बाकी रियो। पछे तो हेरे तो वणीज रो रूप आप व्हे गियो ॥२७॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥२८॥

यूँ साधतो सदा योग, होय निर्मळ पाप शूँ ।
से'ल में पाय लेवे वो, परमानन्द ब्रह्म ने ॥२८॥

ऊपरे किया माफक निरन्तर वणी रे सन्मुख रे'वा रो मा'वरो करवा शूँ वणी योगी रो मेल मट जावे है, ने पछे तो से'ल में ही शगत ब्रह्म वणी रे आय ने लपट जावे है, ने ई'रो मिलणो ही बड़ो ने अनंत सुख है सो मिल जावे है ॥२८॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

१—जठे जठे मन जाय वठे ही वठे ब्रह्म वना रो नी है। ब्रह्म वना अणी रो जावणो आवणो ही कूंकर व्हे शके? यो तो कर्ता है, भोक्ता वना कर्ता ने कूण जाणे?

सवाँ में आप ने देखे, सवाँ ने आप मायने ।
सवाँ में समता देखे, सदा योगी व्हियो सुखी ॥२९॥

पछे तो जठे जठे मन जावे वठे[1] वठे ही आपो आप दीखे ।(सब आप में, ने सवाँ में आप ने देख्याँ करे है) यूँ देखवा रो कारण वणी ने (असली वात) ब्रह्म लाध गीयो है, ने लाधवा रो कारण वणी रो साधन है, ईं शूँ ही सर्वत्र एक ही एक दीखे है ॥२९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

ज्यो म्हने सब में देखे, म्हाँ में देखे सबी सदा ।
म्हूँ नी छोड़ शकूँ वीं ने, वो नी छोड़ शके म्हने ॥३०॥

यूँ ज्यो म्हने सर्व में देखे ने म्हाँ में सर्व ने देखे, वणी रे, ने म्हारे अश्यो मेळ व्हे जाय के पछे म्हाँ चावाँ तो ही त्याग नी व्हे शकाँ ॥३०॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

एकता पाय ज्यो जोगी, सवाँ मांय म्हने भजे ।
शारा काम करे तो भी म्हारे में हीज वो रहे ॥३१॥

जो आपणो एक पणो वना मटायाँ अनेकाँ में म्हने एक ने जाणे है; जाणे कई एक हीज व्हे गियो है, अशी हालत में वणी रो तो रूँ रूँ म्हारे में व्हे गियो है। अवे वो चावे ज्यूँ ही रे'वे, चावे ज्यो ही करे तो भी म्हारे में हीज वणी रा सब काम व्हे है। वणी रा कई म्हारा हीज के'णा चावे ॥३१॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

सवाँ रा सुख दुःखाँ ने, आपशा जाण लेय ज्यो ।
भिन्न भाव नहीं जीं रे, वो योगी सब शूँ वड़ो ॥३२॥

१—यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ।

यूँ जो सबाँ ने आपणी नाई ही (मुक्त) एक शरीखा देख लेवे, ने सुख दुःख भी वणा रे ज्यूँ ही आपाणे, ने आपाणे ज्यूँ ही दूजा रे जाण लेवे, वो तो परम योगी है, अणी में कई भे'म शरीखी वात नी है ।।३२।।

अर्जुन उवाच ।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिरां ।।३३।।

अर्जुण कही ।

यो जो आप कह्यो कृष्ण, समता योग उत्तम ।
मन चंचळ होवा शूँ, थिर ठे'र शके न यो ।।३३।।

अर्जुण अरज[1] करी के हे मधुसूदन! यो जो आप समता रो योग हुकम कीधो यो यूँ थिर कूँकर रे'तो व्हेगा ? जाण्यो, थोड़ी देर ठे'र भी जावे तो भी सदा ही तो यूँ नी रे' शके ।।३३।।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढं ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।३४।।

जोरावर घणो गाढ़ो, मन चंचळ उद्धमी ।
अणी रो रोकणो दो'रो, वायरो रोकवा जश्यो ।।३४।।

हे कृष्ण! यो मन तो चळवीदो है, ने उथल पाथल करदे है, बळ वाळो, ने हठीलो है, गाढो है, अश्या मन रो रोकणो दोरो है । भलेई कोई अणी वायरा ने ढाव ले पण मन तो नी ढबे ।।३४।।

श्री भगवानुवाच ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।३५।।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

मन रो रोकणो दो'रो, साँचो ही मन चंचळ ।
साधना और वेराग, होय तो मन नी डगे ।।३५।।

१— अठे दोड़ता थका मन में भी समता बताई है, या वात अर्जुन रे आशे नी आई जीं शूँ पूछे है ।

श्री भगवान् फरमाई के हे महावाहू अर्जुण! थूँ साँची के है। यो मन हाते आवे जश्यो नी है, क्यूँ के अणी रो सुभाव ही चळवींदो है। पण हे कुन्ती रा कुँवर! साधना ने वेराग व्हे तो मन से'ल[1] में ही पकड़ाय जाय ॥३५॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

योग रो पावणो दो'रो, जणा रे मन हात नी।
मन हात सदा साधे, पाय लेवे उपाय शूँ ॥३६॥

अणीं मन ने पकड़वा रो साधन वैराग शिवाय और उपाय ही नी है, ने जणी रो जीव हत्तु नी व्हे, वो साधन वैराग कूँकर कर शके। जीं शूँ जीव हत्तु व्हे ने उपाय करे, तो मन हात आवतां देर नी लागे। दू ज्यूँ तो म्हारी जाण में दो'रो हीज है ॥३६॥

अर्जुन उवाच।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥

अर्जुण कही।

योग में लायगा चित्त, वच्चे ज्यो रुक जायगा।
पायगा ब्रह्म नी वो, तो, जायगा जायगाँ कणी ॥३७॥

अर्जुण अर्ज कीधी के हे कृष्ण भगवान्! सब छोड़ ने मन पकड़वा री करे ने फेर भी मन हाते नी आवे तो वीं री कई गत व्हेती व्हेगा? क्यूँ के मन रो हाते आवणो तो से'ल नी है ॥३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महावाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

१—से'ल में रो भाव यो है के ज्यूँ दोड़ती रेल ने पकड़े तो हाते नी आवे, पण टेशण पे टिकट ले ने मांय वैठ जावे जदी तो दोड़े तो ही पकड़ी थकीज है। टिकट=साधन, वैठणो=वैराग, टेशण=सत् संगति।

वखरचा वादळा ज्यूँ वो, वच्चे ही नाश व्हे कई ।
ब्रह्म रा पंथ में भूल्यो, निराधार व्हियो थको ॥३८॥

ने वैराग शूँ सब छोड़ ने योग रो हीज साधन पकड़े, ने यो भी पूरो नी व्हे जदी कई वो दोई आड़ी शूँ परो जाय ? ज्यूँ वादळो वखर जाय, यूँ ही कई वो वखर जावे है? हे महाबाहू! यो सवाल वणी रे वास्ते है के मुकाम तो नी मल्यो, ने गेला में ही अंधारो व्हे गियो सो गेलो नहीं दीखे॥३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्तानह्युपपद्यते ॥३९॥

सेमूळो काटणो चावे, म्हारो यो भे'म केशव ।
अणी ने काटवा वाळो, और आप वना नहीं ॥३९॥

हे कृष्ण! अणी भे'म शूँ म्हूँ उळझाय रियो हूँ सो आप अणी भे'म ने बिल्कुल काट शको हो । ई रे मट्याँ वना म्हारे शूँ कई नी व्हे शकेगा, ई शूँ यो भे'म तो नाम ही म्हा रे आप मती रे'वा दो । आप रे शिवाय दूसराँ शूँ यो भे'म मटे जश्यो भी नी' है, क्यूँके जीं ने अठा री ही खबर नी' है जदी अणी ने छोड़्याँ केड़ली वीं ने कई खबर व्हे ॥३९॥

श्री भगवानुवाच ।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

अठे वठे कठेई भी, वणी रो नाश होय नी ।
भलाई कर ने भाई, बुराई पाय कोइ नी ॥४०॥

श्री भगवान् हुकम कीधो के हे पार्थ! वो अठा शूँ छूटे नी है, शामो अठा रो काम वीं रे पे'ली शूँ आछो व्हेवा लागे है । नी जो वच्चे

कोई वणी रे बगड़वा री बात है। हे भाई! भलाँ आछो काम करवा वाळा रे बुराई कूँकर व्हेगा! (वणी रे तो अठा री भलाई गणे. जणी न ही बुराई गणी जाय है) वठा रो खोटो ने अठा रो आछो बगवर है ॥४०॥

प्राप्य पुण्यकृतांलोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

सुखाँ रा लोक पावे तो, विनावे वर्ष मोकळा।
पवित्र धन वाळाँ रे, घर में जन्म ले पछे ॥४१॥

जठे दूसरा म्होटा म्होटा पुन्न करवा वाळा जावा री भावना राखे है, वठे ई योग रा बगड़्या थका से'ल में ही घणाँ वर्षां तक वास करे है (आनन्द करे है)। जणा ने अठे घणा पवित्र ने धनवान मान्या जाय हैं, वणा रे अठे फेर वठा शूँ पड़ने वी आगम पावे है और ई ने वी भ्रष्ट व्हेणो गणे है ॥४१॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

अथवा बुद्धिमनाँ रे, योग्याँ रे हीज जन्म ले ।
घणो दुर्लभ यो हीज, अश्याँ रे घर जन्मणो ॥४२॥

पण आछा योगी व्हे ने फेर भी कई कारण शूँ पायाँ पे'ली ही दूसरो जन्म लेणो पड़े तो वी आछा समझणा जोग्याँ रे घरे हीज जन्म लेवे है, ने यो हीज वणा रे गेला रो विश्राम है, जठा री मदत शूँ फेर वी आछा नवा उत्साह शूँ आगे वधे है। अश्यो जन्म पावणो हीज घणो दुर्लभ है ॥४२॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥४३॥

पे'ली री साधना सो ही, पाछी आय मले अठे।
आगे छूटा वठू साधे, साधना ब्रह्म पाववा ॥४३॥

दूसरा ऊँचा लोकाँ में वा धनवानां रे जन्मवा वच्चे योगी रे घरे जन्मवा में यो लाभ है के वच्चे वणी रे उलझण नी व्हे, ने पे'ली री साधना हीज वींने पाछी आय मले है, जीशूँ वणी रे वच्चे तार नी टूटे जीशूँ फेर वो वाकी रो गेलो झट ही पूरो कर लेवे है। हे कुरुनन्दन! क्यूँ के वो तो मुकाम पे पूगणो ही आपणो काम गणे है। जदी कूँकर रुके ॥४३॥

पूर्वाभ्योसेनतेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते ॥४४॥

खेंच ले आप री आड़ी, पे,ली री साधना सही।
चावना ब्रह्म पावा री, शारा ही पुन्न शूँ शरे ॥४४॥

नवो वींने कई नी करणो पड़े वो तो आपो आप ही पे'ली योग रो प्रारम्भ कर दीधो, ज़णी शूँ मुकाम री कानी खेंचायो थको चल्यो जाय है, ठे'रणो चा'वे तो भी नी रुक शके है, जो योगने जाणणो चावे वो भी शब्दाँ रा जंजाळ ने उळाँघ जावे, जदी योग में लाग जावे वीं री तो कई के'णी ॥४४॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

लाग ने योग ने साधे, धोय ने पाप आप रा।
अनेक जन्म शूँ सिद्ध, होवे पावे परंपद ॥४५॥

यूँ नराई जन्माँ[1] रा सत्कर्म शूँ जणी योगी रा दोष धुप जावे है, क्यूँ के वीं रो अभ्यास बरोबर विधि युक्त चालतो हीज रे'वे है, पछे वो वच्चे विलम्व नी लगाय, ने योग्याँ रा कुल में जन्म ले, ने परम पद पाय लेवे है। परम पद पावा रो पे'लो पगत्यो योग्याँ रा[2] कुल में आवणो है ॥४५॥

१—नराई जन्म पे'लीं किया जी ऊंचा जन्म, वणी शूँ पाप धुपणो सुख वासना भी मिटणो, यो भाव है।

२—योग करवा लाग जाणो योग्यां रा कुल में आवणो वाजे है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

तपस्वी शूँ वड़ो योगी, वड़ो है ज्ञानवान शूँ ।
कर्मी शूँ भी वड़ो जीं शूँ, योगी अर्जुण होव थूँ ॥४६॥

क्यूँ के तपस्वी[1] शूँ भी योगी वत्तो है, अणीं शूँ ज्ञानी[1] शूँ भी वत्तो है, ने कर्मी[1] शूँ भी वत्तो है, जीं शूँ अर्जुण! थूँ योगी हीज व्हे जा ॥४६॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

ॐ तत्सत् इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

म्हां, में ही मन ने मेल, प्रेम शूँ ज्यो भजे म्हने ।
शारा ही योग वाळाँ में, वो म्हारी राय में वड़ो ॥४७॥

अ तत्सत् इति श्री मद्भगवद्गीता उपनिषत् में ब्रह्मविद्या योग शास्त्र में श्री कृष्णार्जुन संवाद में आत्मासंयमयोग नाम छट्ठो अध्याय समाप्त विह्यो ॥६॥

फेर सब योग्याँ में भी जो म्हने भक्ति शूँ भजे है, ने अंतरा म्हारे में जणी रो छेंट गियो है वो हीज म्हारी जाण में पूरो योगी है ॥४७॥

ॐ वो साँचो है यूँ श्री भगवान् री कथी थकी उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुण रा सम्वाद में "आत्म संयम" योग नाम रो छट्ठो अध्याय समाप्त व्हियो ॥६॥



1—अठे कोरा तपस्वी, कोरा ज्ञानी, कोरा कर्मी, यो भाव है ।

ॐ

सप्तमोऽध्याय: ।

श्री भगवानुवाच ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

ॐ सातमो अध्याय प्रारम्भ

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

म्हारे में मन ने मेल, म्हारे में योग साध ने
वना सन्देश शारो यूँ, थूँ म्हने जाणशी [illegible] जावे

ॐ सातमो[1] अध्याय प्रारम्भ

श्री भगवान् हुकम कीधो के हे पार्थ! म्हारे में ही साधन, म्हारे में ही सिद्धि, दोही मल्या ही चाले, अश्यो उत्तम योग थने केवूँ हूँ। म्हारो आशरो राख ने सब काम करणो ही परम योग हैं। यूँ म्हने थूँ जरूर हूँ ज्यूँ जाण लेगा। अणी में कोई भे'म भटकवा री बात नी है। ई ने शुण ने जाण्यो ने म्हने पायो ॥१॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

१—पे'ली ६ ठा अध्याय में अन्त में हुक्म कीधो के-अणा आत्म संयमी योगियाँ में, जणा में थने वच्चे भटकवा रो भे'म है वणा वच्चे ही उत्तम, बे खटका रो उपाय म्हारे में लाग ने काम करता रें णो है। यो ही म्हारो भजन है। अबे अठे अणी बात ने हुक्म करे के यूँ कूँकर ह्वे है? दो ही कूँकर व्हे? ईं रो जवाब यो अध्याय है।

ज्ञान संसार रा सारे ब्रह्म ज्ञान कहूँ सभी ।
ईं ने जाण्या पछे, फेर नी बाकी जाणणो रहे ॥२॥

म्हूँ थने कठी ने ही छोड़ा मेलो नी कराय ने मेरा में रेवे ज्यूँ ही रे'वा देने सब ज्ञान केवूँ हूँ । ने यो अश्यो उत्तम ज्ञान है के ईंने अबार हीज जाण लीधो, ने पछे फेर कई भी बाकी करणो-जाणणो नी रियो ॥२॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

हजाराँ मनखाँ में शूँ योग कोईक आचरे ।
म्हने हजार योग्याँ मूँ सही कोईक ओळखे ॥३॥

अश्या म्हने पावा रा उपाय ने हजाराँ मनखाँ में शूँ कोईक हीज करे है । यूँ तो फेर भी नराई उपाय भी करे, ने वणाँ रा उपाय सिद्ध भी व्हे जावे, तो भी म्हने हूँ ज्यूँ तो कोईक हीज जाणे है ॥३॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

मन बुद्धि जमी पाणी, अग्नि आकाश वायरो ।
अहंकार हुई म्हारी, प्रकृति आठ भाँत या ॥४॥

भूमि, जळ, अग्नि, वायरो, आकाश, मन, अहंकार, ने बुद्धि नो मुख्य है हीज, बस या यूँ म्हारी प्रकृती हीज आठ तरे'री व्हेगी है ॥४॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

या म्हारी प्रकृती ऊळी, ईं शूँ पर्ली अबे सुण ।
जाण थूँ जीव रूपी वा, धार्यो जगत यो जणी ॥५॥

हे महाबाहू अर्जुण! या प्रकृति जो आठ तरे'री की है या तो ऊळीज है, पण अबे अणी शूँ भी आगे री परम प्रकृति है वींने हीज

थूँ जाण ले, क्यूँके यो जगत वणी परा प्रकृति हीज धारण कर राख्यो है। वा हीज कुल प्रकृति री जीव है। वणी शिवाय कोई नी है ॥५॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥

शारा ई प्रकृती शूँ ही, होवे निश्चय जाण या।
उत्पत्ति नाश म्हाँ शूँ ही, होवे संसार सर्व रो ॥६॥

जतरा कई देख्या शुण्या जाय है, सब जड़ चेतन अणीज प्रकृति रा स्वरूप है। अणाँ शूँ न्यारी अणी ने थूँ जाणणो चावे तो कदी नी जाण शकेगा। या नक्की कर लीजे और अणी आखा संसार रो व्हेणो, नी व्हेणो, म्हारे शूँ हीज है या भी निश्चय है ॥६॥

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

म्हारे शूँ और वत्तोनी, दूसरो कोइ अर्जुण।
म्हाँ में ही सब ई पोया, ज्यूँ पोया सूत में मण्या ॥७॥

हे धनञ्जय! म्हारे शूँ भी कोई फेर वत्तो व्हेगा अश्यो थूँ विचार तो व्हे तो मोटी भूल या हीज[१] थूँ करे है। ई थूँ जतरा विचारे, ने देखे है सब म्हारे में हीज यूँ पोया थका है ज्यूँ डोरा में माळा रा मण्याँ, सब मण्याँ डोरा रे आशरे हीज रे' है ॥७॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥

शब्द आकाश में, ॐ हूँ, वेद में, जळ में रस।
चाँद सूरज में जोत, नराँ माँय उपाय म्हूँ ॥८॥

हे कुन्ती रा कुँवर! ई ने थूँ यूँ शमझ के पाणी में रस, चन्द्र-सूरज में उजाळो सब वेदाँ में ॐ, आकाश में शब्द, मनखाँ में मनखपणो ॥८॥

१—ज्यूँ सबाँ रो व्हेणो म्हारे शूँ सावत व्हे रियो है, यूँ ही म्हारो भी दूसरा शूँ व्हे तो व्हेगा, या बात नी व्हे शके—यो भाव है।

पुण्यो गंधः पृथिव्याञ्च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ।।९।।

पवित्र गन्ध पृथ्वी में, अग्नी में तेज हूँ म्हुँ ही ।
जीवाँ में जीवणो जाण, तपसी में म्हुँ ही तप ।।९।।

धरती में गन्ध म्हूँ हूँ तो भी पवित्र[1] हूँ, अग्नि में ऊँना पणो भी म्हूँ हूँ, सबाँ रो जीवन, ने तपसी में तप म्हूँ हीज हूँ ।।९।।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।।१०।।

सदा शूँ बीज शाराँ रो, म्हने ही जाण अर्जुण ।
बुद्धी हूँ बुद्धि वाळाँ में, तेज हूँ तेजवान् में ।।१०।।

यूँ ही हे पार्थ! जो कई व्हे है, सत्ता है, वणी सत्ता री सत्ता (बीज) भी थूँ म्हने जाण । पण बीज वगड़, ने रूँख बणे ज्यूँ म्हारे विकार नी व्हियो है । म्हूँ तो बीज रो बीज हीज सदा शूँ हूँ या थूँ शमझ लीजे । यूँ ही बुद्धिमानाँ में बुद्धि, तेज वाळाँ में तेज भी म्हने जाण जे ।।१०।।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।११।।

बळ हूँ बळ वाळा में, मोह ने कामना बना ।
धर्म रो काम शाराँ में, म्हने जाण धञ्नजय ।।११।।

बळ वाळाँ में बळ भी म्हूँ हीज हूँ, पण कामना रो जो फन्दो राग (अनुराग) वाजे है वणी शूँ बिलकुल अलग हूँ, या बात थूँ कठे ही भूल जावे मती । (अणीज वास्ते बच्चे बच्चे या बात म्हूँ थने चेतावतो जाय रियो हूँ) क्यूँ के म्हारे संसार रे साथे म्हने शमझावणो है या पे'ली ही म्हें थने की ही । हे भरतर्षभ! सबाँ में ज्यो काम है वो भी म्हूँ हीज हूँ परन्तु तो भी म्हूँ वणी में मल नी जाऊँ हूँ. पण न्यारो हीज रे'ने भेळो रे'ऊँ हूँ ।।११।।

१—सबाँ में आपणो व्हेणो बतायो, ने वणाँ रा विकाराँ शूँ न्यारा रे'णो भी बच्चे बच्चे "पवित्र" आदि शब्द दे ने बतायो ।

ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।।१२।।

सात्विकी राजसी और, तामसी सब जी ह्विया ।
म्हूँ वाँमें नहिं वी म्हाँ में, म्हाँ शूँ ही जाण वी सबी ।।१२।।

अबे यूँ कठा तक कियाँ जाऊँ । जो कुछ सतोगुण शूँ रजो गुण शूँ वा तमो गुण शूँ कई व्हेतो व्हेवावतो दीखे है, वो सब म्हारे शूँ हीज है या थूँ निश्चय जाण लीजे, साथे ही या भी याद राखजे के ई नी तो म्हारे में है, ने नी जो म्हूँ अणा में हूँ ।।१२।।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्यम् ।।१३।।

अणाँ तीन गुणा शूँ ही, मोहियो जग यो सबी ।
म्हने याँ शूँ नहीं जाणे, गुणाँ शूँ पर एकशो ।।१३।।

जो कुछ है सब अणाँ तीन गुणाँ रो हीज फेलाव है और अणी गुणाँ री गुळछी में हीज आखो जगत् उळझ ने हिया हीण व्हे रियो है । (बे'क रियो है) या तो शूधी वात है के गुण म्हने नाम भी नी जाण शके, ने सब ही गुणाँ रा हीज रूप है, जदी म्हने कोई कूँकर जाण शके? क्यूँ के ई तो ई नी के' शके, ने हरवो फरवो भी अणा रो सुभाव है, पण म्हूँ तो सदा एक रस, अज, अविनाशी हूँ या ये हीज शाबत कर रिया है, म्हारे के'वा री कई जरूर है ।।१३।।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।१४।।

देवी गुणाँ री या माया, म्हारी कठिन है घणी ।
म्हारे ही शरणे आवे, माया शूँ तर जाय वी ।।१४।।

यूँ अणाँ गुणाँ री जतरी छाण करो वतरा ही गुण ही गुण में उळझाय है; अणी वास्ते अणी ने छोड़ ने जो म्हारे शरणे आय जावे वो हीज अणाँ गुणाँ री माया जाळ शूँ निकळ शके है; दूज्यूँ तो ई

शूँ निकळणो दो'रो है ॥१४॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

कुकर्मी मूढ़ नी आवे, शरणे नर नीच वी ।
दानवी भाव वी पाया, माया शूँ मोहिया थका ॥१५॥

मूर्ख, पापी, मनखाँ में नीच, म्हारे शरणे तो भी नी आवे क्यूँ के या तो शूधी, आछी, वणी वणाई वात है । (अणी में करणो कई है?) अणी रो कारण यो है के वी माया जाळ में गे'दूल व्हे रिया है, जणी शूँ दानवी सुभाव हीज वणा ने आछो लागे है ।(अर्थात् खोटायाँ छोड़णो ने मरणो वणाँ ने शरीखो ही लागे है)॥१५॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

भागवान भजे लोग, म्हने ई चार भाँत रा ।
दुःख शूँ लाभ शूँ और, जाणवा जाण ने पण ॥१६॥

हे अर्जुण! चार तरे' रा मनख हीज म्हने भजे है । ई चार ही पुण्यात्मा, ने म्हारा भक्त है । वणाँ में एक तो दुःख व्हे जणी शूँ भजे, एक म्हने जाणवा रे वास्ते भजे, एक लोभ, सुखरी चावना शूँ भजे और एक ज्ञानी म्हारा भक्त हीज है ॥१६॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

ज्ञानी सदा वड़ो याँ में, जणी रे भक्ति एक ही ।
म्हूँ ज्ञानी ने घणो प्यारो, ज्ञानी प्यारो म्हने घणो ॥१७॥

अणा में ज्ञानी हीज सबाँ शूँ वदे है, क्यूँ के वणी री हीज सांची भक्ति है । वो सदा ही म्हारे में लाग गियो है । वणी रो ने म्हारो विछोह असम्भव है । सब शूँ वत्तो प्यारो, ज्ञानी ने म्हूँ हुँ, ने म्हने भी ज्ञानी सब शूँ वत्तो वा'लो है ॥१७॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥

सारा ही भक्त ई तो भी ज्ञानी म्हारीज आत्मा ।
सव शू श्रेष्ठ म्हारे में ज्ञानी नित्य मिल्यो रहे ॥१८॥

यूँ तो सारा ही भक्ताँ पे म्हने मोह है हीज अणी में कई भेम नी है, क्यूँ के चावे ज्यूँ ही व्हो वी म्हने हीज भजे है, पण ज्ञानी तो म्हारो जीव हीज है। या वात म्हारी अन्तश री थने की है। म्हारे शूँ वत्तो कई नी है, ने ज्ञानी या जाण निखाळस म्हारे में हीज हर वगत वण्यो रे' है, क्यूँके वो, ने म्हूँ तो शेळ भेळ व्हे रियाँ हाँ ॥५८॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

घणो दुर्लभ यूँ ज्ञानी होवे जन्म नराइ शूँ ।
जणी ने सव ही दीखे वासुदेव सरूप ही ॥१९॥

नराई[1] जन्माँ रो अन्त व्हे, जदी ज्ञानी व्हे ने म्हारे शूँ मल है। (वणी री घणा जन्म री कमाई व्हे है) सब ही में म्हने वासुदेव ने जाणे वो ही महात्मा दुर्लभ है। यूँ जाणणो ही जाणणो है ॥१९॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

जीं जीं सुभाव रा वीं वीं काम शूँ वींज भाँत शूँ ।
वीं वींज देव ने पावे अज्ञानी छोड़ने म्हने ॥२०॥

यूँ या शूधी वात है तो भी तरे' तरे' री कामना शूँ आँधा व्हे रिया है, जीं शूँ आँपणा सुभाव रे माफक बंध्या थका न्यारा न्यारा देवता रो आशरो ले है। (शूधा गेला पे भी आँधा वना कूण भटके) ॥२०॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

१—नराई जन्मा रो अन्त व्हेणो ही ज्ञानी व्हेणो है, नराई जन्म = नराई विचार, अन्त = विचार रो दृष्टा ॥

जो जणी देह ने भक्त, पूजे विश्वास राख ने।
वणीज देह में वीं रो, म्हूँ विश्वास जमाय दूँ ॥२१॥

यूँ ज्यो जणी शरीर[1] ने विश्वास भक्ति शूँ भजणो चा'वे वणींज शरीर में वणी रो म्हूँ हीज भरोशो वधाय ने जमाय दूँ हूँ ॥२१॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥२२॥

वणी विश्वास शूँ वी री, भक्त आराधना करे।
देवाँ शूँ फळ पावे वी, म्हारो हीज दियो थको ॥२२॥

यूँ भरोशो आय जावा शूँ वो वणीज शरीर ने भजवा लाग जावे, वणी शिवाय कई नी चावे, ने वणी शूँ वणी री कामना भी सब पूरी व्हे, पण वी वणी शरीर शूँ नी, वी म्हारे शूँ हीज पूरी व्हे है, (पण वो शरीर शूँ जाणे) ॥२२॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

ओछी अक्कल वाळाँ रे, फळ वो ठे'र नी शके।
देवाँ रा भक्त देवाँ ने, म्हारा पावे म्हने सदा ॥२३॥

परन्तु कामनाँ[2] रो पूरो व्हेणो थोड़ा दना रो है, तो भी वणाँ रे गाढ़ी शमझ नी व्हेवा शूँ वी ने ही पूरी शमझ ले है। बस म्हारे में ने दूसरा देवताँ में यो हीज भेद है। यूँ ही देवता रा भक्त देवता ने पावे, ने म्हारा व्हे जी म्हने भी पावे, पण अणी पावा पावा में नरो ही फरक है ॥२३॥

१—शरीर भगवान नी है, जदीज शरीर रो न्यारा पणो के' ने वणी में सकामता वताय ने वणाँ ने अज्ञानी वताया, क्यूँ के घणाँ श्रम में थोड़ो नाशमान फळ पावा ने भटके है ॥
२—म्हारे शूँ आत्म रूप, ने दूसरा शूँ शरीर रो भाव है। दूज्यूँ तो दोष आवे पण तो भी नी शमझे ॥
३—"भी" शूँ पावे कई, पायो थको हीज है पण व्यवहार यो ही है ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

देह माने म्हने मूढ़, म्हारो यो भाव भूल ने ।
निराकार सदा सत्य, सब शूँ श्रेष्ठ एक सो ॥२४॥

वी देवाँ रा भक्त शाँची ही वना श्यान रा हीज है, दूज्यूँ अणी दीखे जणी में हीज भक्ति क्यूँ करता? यो तो नाशमान नीचो भाव है, ने ऊली आड़ी री वात है, पण ईं ने जाणवा वाळो तो ऊपर लो, अविनाशी, सर्वोत्तम, अणी शूँ न्यारो है। पण वींने नी जाणे जदीज अतरी मेनत शूँ न कामी वात चा'वे, से'ल, उत्तम नी चावे ॥२४॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

आळखे योगमाया रे म्हूँ शूझूँ सब ने नहीं ।
मूढ़ संसार नी जाणे अजन्म्यो एक सो म्हने ॥२५॥

अश्यो शूधो भी म्हूँ सब ने प्राप्त नी व्हेऊँ। अणी रो कारण केवल म्हारी योग[1]माया हीज है। अणी शूँ म्हूँ पलेटाय गियो व्हूँ ज्यूँ व्हे गियो हूँ, जीं शूँ दीखतो ही नी दीखूँ हूँ। अणी योग माया में वेंडो व्हियो थको यो संसार म्हने अणाँ शूँ न्यारो, वना जनम्यो, ईं शूँ ही अविनाशी, नी जाण शके है। म्हूँ तो जाणे तो सब कार्ना हूँ ॥२५॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

जाणूँ म्हूँ व्हे गया ज्याँ ने, जाणूँ म्हूँ व्हे रया सबी ।
म्हूँ जाणूँ होगया सो भी, नी जाणे कोइ भी म्हने ॥२६॥

म्हूँ हीज व्हेगी ज्यो, ने व्हे री है ज्यो, ने व्हेगा ज्यो सब वाताँ जाणूँ हूँ। पण अश्यो नखे हीज धाड़ धाड़ करता थका म्हने कोई भी नी जाणे। अणी शिवाय महा मूर्खता कई व्हेगा? (देखे ने के'वे के आँखाँ नी है) ॥२६॥

[1]—योग माया = जड़ चेतन रो योग शमझणो ही माया है।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥

जन्म शूँ साथ लागा ई, जंजाळ सुख दुःख रा ।
भटके भूल ने याँ में, खार ने हेत शूँ सवी ॥२७॥

आछो बुरो, आछो बुरो, अणी थन्थ शूँ हे भारत, अर्जुण! वणा री शमझ ढंक री है, जणी शूँ वणे जणीज वगत रा सब ही ई मूर्ख व्हे रिया है, अर्थात् जन्म रा ही वेंडा है । हे परंतप! या वात थूँ नक्की जाण जे । दूज्यूँ म्हने जाण ने पछे तो वेंडो कोई व्हे ही नी शके, पण ई तो ठेठ शूँ ही है ॥२७॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्य कर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

नराँ रा पुन्न वाळाँ रा, जणा रा पाप खूटग्या ।
द्वन्द रा फन्द शूँ छूट, वी भजे लाग ने म्हने ॥२८॥

यूँ सबाँ रे ही वेंडपणो रे'णो हीज है या तो वात नी है । जणाँ पुण्यात्मा रे पाप पूरा व्हे गिया है वी अणी आछा वुरा री थन्थ शूँ छूट ने म्हने हीज भजवा लाग जावे । पछे वणा रो वो भजन छूट ही नी शके । छूट्यो तो पे'ली ही कश्यो हो पण शमझ नी ही ॥२८॥

जरामरण मोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्न मध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

म्हारे ही आशरे लागे, जरा मरण मेटवा ।
वी शारा ब्रह्म ने जाणे, अध्यात्म कर्म भी सवी ॥२९॥

यूँ जरा, ने मौत सदाई छूट जावे अणी रे वास्ते म्हारो आशरो ले ने जी उपाय करे है, (काम करे है) अश्या हीज वास्तव में वणी ब्रह्म ने जाणे है । दूज्यूँ तो आँधा रो हाथी कर राख्यो है, ने वी हीज ठीक ठीक अध्यात्म ने सब कर्म जाणे है ॥२९॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ।।३०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे "ज्ञान-विज्ञान-योगो" नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अधिभूत अधीयज्ञ, अधिदैव समेत ज्यो ।
जाणे सो ही म्हने जाणे, योगी वो अंत में पण ।।३०।।

ॐ तत्सत् इति श्री मद्भगवत्गीता उपनिषत् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्णार्जुन संवाद में ज्ञानविज्ञान योग नाम सातमो अध्याय समाप्त व्हियो ।।७।।

यूँ ही जी अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ सेती म्हने जाण ले है, वी आखर री वेळाँ ने हरताँ फरताँ भी म्हने जाणे है, क्यूँ के वणा रो मन तो म्हारो मन व्हे गियो, ने वी म्हारा व्हे गिया ।।३०।।

ॐ वो साँचो यूँ श्री भगवान् री भाषी थकी उपनिषत् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्री कृष्ण अर्जुन रा सम्वाद में ज्ञान-विज्ञान योग नाम सातमो अध्याय समाप्त व्हियो ।।७।।

ॐ

अष्टमोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच ।

किं तद्‌ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥

ॐ आठमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण कही ।

कईं यो ब्रह्म अध्यात्म, कईं है कर्म केशव ।
अधिभूत कहे कीं ने, कईं है अधिदैव भी ॥१॥

ॐ आठमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण कियो के हे पुरुषोत्तम भगवान्! वो ब्रह्म कई है? अध्यात्म कीं ने के' है ? कर्म कई वाजे है? अधिभूत ने भी जाणणो चावू हूँ और अधिदैव भी कीं ने के'वे है ॥१॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले[1] च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

अठे ईं देह में कूण, अधियज्ञ कणी तरे, ।
योगी कणी तरे' जाणे, आप ने अंतकाळ में ॥२॥

१--नियतात्मा (स्थिर मन) रो प्रयाण क्यूं कर ने प्रयाण री वगत (चंचळता में) ज्ञेय कूंकर व्हे ? (जाण्या कूंकर जावे) क्यूं के स्थिर शूं भी जाणणो सहज नी, वो प्रयाण में कूंकर जणावे ? या वात 'च' शूं भी सूचित व्हे है के स्थिरता में जणायो सो तो ठीक, पण चलता में कूंकर जणायो ? या प्रश्न व्हे जशीज वात है ।

हे मधुसूदन कृष्ण! अणी देह में अठे हीज अधियज्ञ कूण है, ने कूँकर है? और अन्त री वगत में शमझणा आदमी आप ने कूँकर जाणे है ॥२॥

श्री भगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

अविनाशी पर ब्रह्म, जो अध्यात्म सुभाव वो ।
जणीं शूँ सब ही होवे, कर्म नाम कहाय वो ॥३॥

श्री भगवान् हुकम कीधो के जो अमिट है वो ही पर ब्रह्म वाजे है और सुभाव ने अध्यात्म के'वे है। अणाँ सबाँ रो ही फैलणो ने शमटणो जणी शूँ व्हे है वो ही कर्म रा नाम शूँ कियो जाय है ॥३॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञो[1]ऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥४॥

नाशमान अधीभूत, जीव सो अधिदैव है ।
अठे ईं देह में जाण, म्हने ही अधियज्ञ थूँ ॥४॥

खरवा वाळी जी चीजाँ है वी अधिभूत वाजे है। पुरुष (जीव) अधिदैव वाजे है। अणीज देह में अठे हीज म्हूँ हीज अधियज्ञ हूँ। हे देह भृतांवर, (देहधारियाँ में श्रेष्ठ) अर्जुण! अणी वात ने मनख हीज जाणवा रो अधिकारी है। थूँ तो मनखाँ में भी श्रेष्ठ है ॥४॥

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

१--अधियज्ञ म्हूँ हीज हूँ, ने अठे हीज हूँ, अणी वास्ते कणी भी वगत की शूँ भी छेटी नी पड़ूँ। अणी वास्ते म्हने जाणे वणी रे वास्ते प्रयाण ने स्थिर काल शरीखा ही है, पण देहभृतां वर, अर्थात् मनुष्य हीज विरला अश्यो म्हने जाण शके है। और देहभृत (शरीरधारी) म्हने नी जाण शके है। 'मामेव' रो भाव यो' के दूसरा भाव में भी म्हने हीज शमझे। दूसरा भाव पे' ली रा प्रश्नां रा शमझणा।

अन्त में भी म्हने ही जो, चिततो देह ने तजे।
म्हने ही पाय लेवे वो, अणी में भे'म नी रती ॥५॥

अन्तकाल में भी म्हने हीज सुमरण करतो थको जो शरीर ने छोड़ ने जावे है वो और जगाँ कठे ही नी जावे है, पण म्हारो हीज रूप व्हे जावे है, अणी में नाम भी भे'म, नी है ॥५॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

जीं जीं ने चिततो छोड़े, देह ने अन्तकाळ में।
वीं वीं ने पाय लेवे वो, सदा री भावना शुँ ही ॥६॥

यूँ ही जणी ने याद करतो थको शरीर ने छोड़े वींज ने वो पाय लेवे है। हे अर्जुण! अणी रो कारण यो है के सदाही रो मा'वरो अन्त में भी याद आपो आप ही आय जावे है ॥६॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥७॥

ईं शूँ सदा म्हने हीज, याद में राख ने लड़।
मन ने बुद्धि जो म्हाँ में, तो म्हाँ में मलशी सही ॥७॥

अणी वास्ते थूँ लड़्याँ भी कर, ने म्हने भी हर वगत में भूले मती। बस, पछे थारे म्हने पावा में देर नी है। मन ने बुद्धि जणी म्हारे भेट कर दीधा, पछे वो म्हने भूल ही कूँकर शके? वो तो म्हने पावे है, अणी में संशय कूँकर करणी आवे भलाँ ॥७॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥८॥

अडोल चित्त शूँ चिते, साधना शूँ सध्या थका।
परं पुरुष ने पावे, अलौकिक अनूप ने ॥८॥

यूँ नी व्हे तो अभ्यास रो म्हारे शूँ योग करणो, ने मन ने ओ'ठे

नी जावा देणो। अणी शूँ पछे मन रे भी आगे रो अनोखो पुरुष है वीं ने तो साधक घड़ी घड़ी रो याद करतो थको पाय लेवे है। हे पार्थ! या शागे है ॥८॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥९॥

कवी पुराणो सब शूँ महीं वो, जगत् पती ने शुमिरे सदा ज्यो।
अचित आधार सदा सबाँरो, सूर्य स्वरूपी न वठे अँधारो ॥९॥

जो अणी बोलता, पुराणा, सबाँ रा गवाळ, ना'ना शूँ ना'ना, सब रा आधार अचितरूप, सूर्य शरीखा, अंधारा शूँ आगे, (छेटी) रेवा वाळा, अणी ने शुमरे, सब रे साथे याद करे, वो अणी ने पाय लेवे है ॥९॥

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्तया युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुष मुपैति दिव्यम् ॥१०॥

मरे जणी वार चढ़ाय प्राण, भक्ती तथा साधन जोर आण।
वचे भुँवारा मन ने शमेट, अनूप पावे परधाम ठेट ॥१०॥

अश्यो शरीर छोड़ती वगत भक्ति, ने योग रा बळ वाळो मन ने ठे'राय, आछी तरे शूँ भुँवारा रे वच्चे जीव ने जमाय ने वणी अलौकिक परम पुरुष ने पाय लेवे है। (आछी तरे शूँ पाय लेवे है) ॥१०॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

जीं ने कहे वेद विनाश हीण, जती विरागी जिण माँय लीण,
जो धाम चावे सब ब्रह्मचारी, थोड़ाक में वोहि कहूँ विचारी ॥११॥

जणी जगाँ ने वेद जाणवा वाळा अविनाशी के'है। जणी ने वेरागी इन्द्रियाँ ने जीतवा वाळा पावे है। जणी रे वास्ते ब्रह्मचर्य रो साधन करे है। वा जगाँ थने थोड़ा में ही के'वूँ हूँ ॥११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुद्धय च ।
मूर्द्धन्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥

रोक ने सब द्वारां ने, हिया में मन रोक ने ।
माथा में मेल ने प्राण, योग री धारणा कर ॥१२॥

सब बारणा बन्द कर मन ने हिया[1] में रोक लेणो, अणी शूँ आपणो मायलो वळ ताळवा री जगाँ में थोड़ीक जगाँ में, भेळो व्हे जावे है। अणी रो नाम योग री धारणा है। ओर जगाँ में धारणा करवाशूं मन हालतो रे'वे है। पण अणी शूं एक सांथे सब कानी शूँ शमट[2] जावे है ॥१२॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

एक अक्षर ॐ ब्रह्म, कहतो चिंततो म्हने ।
जो देह तज ने जावे, पावे वो परमा गती ॥१३॥

पछे एक अविनाशी शब्द ॐकार हीज रे' जावे है, ने वणी रे सांथे ही म्हारो स्मरण व्हे है। यूँ जो शरीर ने छोड़ देवे वो परमगती पाय लेवे है ॥१३॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

थिर चित्त म्हने चिंते, सदा ही ज्यो निरंतर ।
वो मल्यो नित ही म्हाँ में, वीं रे सुलभ म्हूँ घणो ॥१४॥

हे पार्थ, अर्जुण! यूं कठीने ही मन नी जावे अश्यो म्हारो अखंड भजन करे है, वणी रे म्हूँ घणो सुलभ व्हे जावूँ हूँ। या तो के'वा री रीत है, दूज्यूं वो तो म्हारे में हीज रे'वे है फेर सुलभ, दुर्लभ कई रियो ॥१४॥

१—बारणा बंद व्हे तो भी मन ज्यूं रो ज्यूं रे'वे, पण हिया में चेतन है जणी शूं वठे रोकवा शूं वो वणी शूं मल जावे, यो भाव है ।

२—ज्यूं दर्पण पे भाफ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

नाशमान नहीं पावे, दुःखाँ रा घर जन्म वी ।
म्हने पाया महात्मा वी, पाया परम सिद्धि ने ॥१५॥

यूँ म्हने पाय लेवे है वणी रो पछे जन्म व्हेणो बन्द व्हे जावे है। यो जन्म व्हेणो ही दुःखाँ रो घर है, क्यूँ के जन्म्या ने दुःख लारे लागा, ने फेर मरणो भी पड़े, ने फेर यूँ रो यूँ व्हियाँ ही करे। पण जी महात्मा व्हे जावे वणा रो जन्म कूँकर व्हे शके? वी तो परम सिद्धि ने पाया है ॥१५॥

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

पाछा फरे धरे जन्म, पाया जी ब्रह्म लोक भी ।
म्हने पाया पछे पाछो, कोई जन्मे कदी नहीं ॥१६॥

हे अर्जुण! ब्रह्मलोक तक शूँ भी मन पाछो जन्म मरण रा फेरा में आय जावे है, जदी औराँ री तो केणी ही कई? पण हे कौन्तेय, कुन्ती रा पुत्र! एक अश्यो तो म्हूँ हीज हूँ के जठे गियाँ केड़े, फेर जनम व्हेणो रे'वे ही नी ॥१६॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥

हजार युग री रात, हजार युग रो दन ।
रात ने दन ने जाणे, ब्रह्म रा ज्ञानवान यूँ ॥१७॥

हजार युग पूरा व्हे त्रो ब्रह्मा रो एक दन मान्यो जाय, ने यूँ ही हजार युग री ब्रह्मा री एक रात व्हे है। अणा ब्रह्मा रा रात दन ने जाणे जी हीज रात दन ने ओळखवा[1]वाळा है ॥१७॥

१—रात दन ने ओलखे वो रात दन शूँ न्यारो व्हे जावे। ब्रह्मा रा रात, ने दन प्रकृति, ने विकृति है। याने जाणे सो ही ज्ञानी है, यो भाव है ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।।१८।।

मले अलख में राते, होवे अलख शूँ दने ।
यूँ वणे वगड़े शारा, ब्रह्म रा दन रात में ।।१८।।

दन व्हे जणी वगत अव्यक्त[1] प्रकृति में शूँ ई व्यक्त[2] वस्तुवाँ वण जावे है, ने राते पाछा अणीज अव्यक्त नाम री प्रकृति में मल जावे है ।।१८।।

भूतग्राम: स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवश: पार्थ प्रभवत्यहरागमे ।।१९।।

अणी तरे, शूँ ई शोक, व्हे व्हे ने वगड़े सबी ।
आपो आप दने होवे, विलावे रात ने परा ।।१९।।

हे पार्थ अर्जुण! यो रो यो ही सब संसार यूँ रो यूँ व्हे व्हे ने पाछो शमटतो जावे है । (ज्यूँ शास आवे ने जावे है) यूँ ही आपो आप राते शमटे दने पाछो वण जावे ।।१९।।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातन: ।
य: स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।।२०।।

लखे अलख यो जीं शूँ, वो थूँ अलख ओळख ।
मेटे तो भी मटे नी वो, ऊला अलख ने लख ।।२०।।

परन्तु अणी शमटवा, फैलवा, अव्यक्त, ने व्यक्त शूँ भी आगे एक भाव वस्तु है । वो अणी फैलवा ने तो देखे हीज है पण अव्यक्त भी वणीज शूँ सावत व्हे है । या वस्तु अव्यक्त, ने व्यक्त शूँ और ही तरे' री है, सदा शूँ एक शरीखी है, और वा वस्तु अशी है के सवाँ रे मटवा पै भी कदी नी मटे है ।।२०।।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहु: परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।२१।।

१—नी दीखे ज्यो । २—दीखे ज्यो ।

अलेख अविनाशी वो, वो ही है परमागती ।
जठा शूँ नी फरे पाछो, म्हारो परमधाम वो ।।२१।।

अणी ने अव्यक्त अक्षर, यूँ शास्त्राँ में के'वे है और अणी ने हीज़ परमगति भी के'वे है, और जठा शूँ पाछो कदी नी फरे वो म्हारो परम धाम भी यो हीज है ।।२१।।

पुरुषः स परः पार्थ भक्तया लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ।।२२।।

परं पुरुष भी वो ही, वो मले एक भक्ति शूँ ।
जणी में सब यो आयो, ज्यो आयो सब मांयने ।।२२।।

और परम पुरुष भी यो हीज है, अनन्य भक्ति शूँ हीज यो मले है, जणी माँयने सब ई शमट जावे, ने जणी शूँ सब फैले है वो भी यो हीज है, (अर्थात् जणी में ई सब है, ने ज्यो सब में है) ।।२२।।

यत्रकाले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ।।२३।।

जीं समै जन्म लै पाछो, पाछो जन्मे न जीं समै ।
वो समै म्हूँ कहूँ पार्थ, योगी रे देह त्याग रो ।।२३।।

पण हे भरतर्षभ! जणी वगत योगी पाछो आवे ने यूँ ही जणी वगत पाछो नीं फरे वी वगत ने म्हूँ थने के' वूँ हूँ, क्यूँ के चालती वगत पे'ली मुकाम री गम कर लेणी ।।२३।।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।।२४।।

अगनी जोत उजाळो व्हे, दन सूरज उतर ।
ई समे देह छोड़े ज्यो, वो ज्ञानी ब्रह्म में मले ।।२४।।

अग्नी व्हे, उजाळो व्हे, दन व्हे, शुक्ल पक्ष व्हे, ने पछे उत्तरायण रा

१—अग्नि शूँ मतलब कोरा उजाळा रो है । ज्यूँ अंगीरा रो । उजाळा शूँ मतलब

छ महीना व्हे, अणी वगत में निकळ्या थका योगी ब्रह्म ने पाय लेवे है। अश्या योगी ब्रह्मविद् बाजे है ॥२४॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

धूँवों रात अँधारो व्हे, सूर्य व्हे दक्षिणायन ।
उजाळो चाँद रो पाय, योगी पाछो फरे वठूँ ॥२५॥

यूँही धूँवों व्हे, रात व्हे, कृष्ण पक्ष व्हे, ने छ महीना दक्षिणायन रा व्हे, वणी वगत योगी चन्द्रमा री ज्योति ने पाय ने पाछो फर जावे है ॥२५॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥२६॥

अँधारा री उजाळा री, सदा संसार री गती ।
एक पाय फरे पाछो, एक शूँ फेर नी फरे ॥२६॥

ई उजाळा रा, ने अंधारा रा दो ही गेला संसार में सदा शूँ व्हे रिया है। अणा ने अधिकारी जाणे हे। वणा में एक उजाळा रा गेला शूँ तो पाछो नी फरे, ने दूसरा अंधारा रा गेला शूँ पाछो फर जावे है ॥२६॥

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

झलगती अग्नि रो है, ज्यूँ दीवा रो। यूँ उत्तरोत्तर ज्ञान बढ़तो जावे वो दक्षिण मार्ग समझणो। निष्काम कर्म वा ज्ञान योग ही उत्तरायण है। अणी में क्रम क्रम शूँ उजाळो वधतो जावे, क्यूँ के या गति प्रकाश शूँ प्रारंभ व्हे है, ने पूर्ण प्रकाश उत्तरायण तक पूगावे है। पण सकाम कर्म मार्ग अंधारा शूँ शुरू व्हे, ने थोड़ो सो सुख चन्द्रमा री नाई क्षययुक्त पाय ने योगी पाछो चक्कर में पड़ जावे है। अणी रो अर्थ दूसरो भी तराई प्रकार रो व्हे है, पण भगवान रो भाव तो ऊपरे लिख्यो जी शूँ हीज है। क्यूँ के अणी गेला रा मर्म ने जाण ने कोई योगी नी भटके. (श्लो० २७) ने वेद, तप, यज्ञ, दान रा सकाम मार्ग ने छोड़ निष्काम में आयजावे। (श्लो० २८) या स्वयं श्री मुख शूँ ही की है।

ई गेला जाण ने योगी, कोई भी भटके नहीं ।
ई शूँ थूँ योग में लाव, सदा ही मन अर्जुण ॥२७॥

हे पार्थ ! अणा गेला ने जाणे वो योगी गेभूल नी रे'वे, भलेई चावे ज्यो ही योगी व्हो' पण झट सावधान व्हे जावे । अणी वास्ते हे अर्जुण! थूँ भी सदा ही योग में हीज लागो रीज्ये । अणी में भूल करे मती ॥२७॥

वेदेषु यज्ञेषु तपः सु चैव, दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा, योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे "अक्षरब्रह्म-योगो" नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

वेदाँ शुँ यज्ञाँ शुँ तपाँ शुँ पाया, दानाँ शुँ जी पुंन नरा बताया ।
यो जाण ई सर्व उलाँघ जावे, योगी परं धाम अनादि पावे ॥२८॥

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुण संवाद में "अक्षर-ब्रह्म-योग" नाम आठमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥८॥

क्यूँ के वेदाँ में, यज्ञाँ में, तपाँ में, और दान देवा में भी जी जी महा पुण्य मान्या है, ने व्हे है, वाँ रो फळ अणी वात ने जाण ने योगी कई गणे ही नी है, ने शूधो आदि स्थान जो परम पद है वी ने पाय लेवे है, ने यूँ नी जाणे तो वो भटक ने अंधारा रे गेले लाग, ने ऊपरे किया वणाँ फळाँ में उळझ, ने पाछो चक्कर में आय पड़े है ॥२८॥

ॐ वो साँचो यूँ श्री भगवान् री कथी थकी उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्री कृष्ण अर्जुण री बाताँ में "अक्षर ब्रह्मयोग" नाम आठमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥८॥

ॐ

नवमोऽध्यायः ।

श्री भगवानुवाच ।

इदं तु[1] ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यन[2]सूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥

ॐ नवमो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

यो तो घणो छुप्यो ज्ञान, कहूँ संसार ब्रह्म रो ।
ईं ने जाण्याँ मिटे बन्ध माया रो सब सज्जन ॥१॥

ॐ नवमो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् हुकम कीधो के, या तो म्हूँ थने घणीज गे'रीं[3]वात केवूँ हूँ, क्यूँ के थूँ म्हारी वात रा गुणाँ ने शमझे है, ने अणी में खोटायाँ

१—'तु' अठे पे'ली शूं न्यारा पणो बतावे है। पेली रा ८ अध्याय में अक्षर ब्रह्म योग हो जो के जीवभूता (पुरुष) नाम री परा प्रकृति रो नाम है, ने अठे पुरुषोत्तम शूं मतलब है।

२—'अनसूयु' के'वाशूं विश्वास री हीज अणी में आवश्यकता है। या वात "सतत युक्ता भक्ता" (अ० १२ श्लो० १) शूं भी शावत व्हेगा। अक्षर ब्रह्म योग शूं विश्वास व्हे, ने पछे कीनेक यो राज योग प्राप्त व्हे है, ने भाग्यवान विश्वासी ने तो पे'ली हीज सहज प्राप्त है हीज।

३—भगवान राज विद्या सांख्य ने हुकम करे है। वणी में प्रकृति, ने पुरुष तीन किया है। प्रकृति रो ज्ञान ही अव्यक्तोपासना है, ने घणी दोरी है पण, विकृति में साक्षी री उपासना ही व्यक्त वा साकारोपासना है। यूँ नी जाण ने नराई पुरुष साकार ने निराकार मान ने लड़े है। या तो चोड़े धाड़े भूल है। उपासना तो निर्गुण व्हे ही नी शके। हां व्यक्त-अव्यक्त व्हे है, जी की' है।

नी देखे है। यो ब्रह्म ज्ञान अणी संसारी ज्ञान रे साथे हीज केवूँ हूँ जी ने जाण[1]ने अशुभ शूँ छूट जायगा ॥१॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥

राजविद्या घणी गुप्त, पवित्र श्रेष्ठ धर्म है।
शागे ने अविनाशी भी, सुख शूँ शध भी शके ॥२॥

या विद्या[2]री राजा है जीशूँ राजविद्या वाजे है, ने राजा भी अणी ने नी जाणे है, क्यूँ के या गे'राई में भी राजा है। यूँ ही या पवित्र, है, उत्तम है, प्रत्यक्ष प्राप्त है, धर्म है, सुख शूँ व्हे शके, नें अविनाशी है ॥२॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

ई पे विश्वास नी ज्याँ रो, नराँ रो भागहीण वी।
मोत रा पंथ इन्द्रयाँ में, रवड़े छोड़ ने म्हने ॥३॥

हे परंतप! पण मनख अणी आपणा धर्म पे तो भी विश्वास नी करे,[3]ने अणी अविश्वास शूँ वणा रा घर ने वना[4]पायाँ ही मौत रो गेलो जो संसार है वणी में रवड़ता फरे है ॥३॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥

अरूपी रूप म्हूँ व्याप्यो, अणी संसार सर्व में।
म्हारे में सब ही ई है, म्हूँ अणा माँयने नहीं ॥४॥

१—जाणवा शूँ हीज ॥

२—राजविद्या है पण घणी गे'री व्हेवा शूँ मनख नी जाणे, पण है पवित्र। यूँही सब विशेषण अणी री सहज प्राप्ती रा है।

३—कोई बात असी नी के जणी शूँ अणी विद्या शूँ विमख'रेवे, केवल अविश्वास है।

४—पाछा थका छोड़ ने फरे, ई शूँ "निवर्तन्ते" कियो।

दूज्यूँ भलाँ मोत रा रस्ता में फरवा री वात ही कई है। म्हैं हीज म्हारी अव्यक्त[1] मूर्ति शूँ यो आखो संसार फेलाय राख्यो है, ने म्हारे में हीज ई सब है, पण म्हैं अणा माँयने नी हूँ, या थूँ भूले मती ॥४॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥५॥

म्हाँ में ई कोइ भी नी है, देख म्हारी अलेपना ।
सवाँ ने धार ने न्यारो, सवाँ रो करता म्हुँ ही ॥५॥

ने फेर देख ने देखे तो ई कोई[2] भी म्हारे में नी है। यो तो म्हारा योग[3] रो विभव है। ई ने थूँ गौर करने देख जे, क्यूँ के यो ही म्हारो रहस्य है। सवाँ रो भरण कर ने भी म्हैं वणा शूँ न्यारो हूँ, क्यूँ के म्हारा रूप में हीज सवाँ री भावना है ॥५॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

सदा आकाश में रे'वे वायरो ज्यूँ सवी जगाँ ।
यूँ हीज सब ही रे'वे, म्हारे माँय चराचर ॥६॥

ज्यूँ वड़ो, ने वेग शूँ दौड़वावाळो, ने सब जगाँ जावावाळो वायरो सदा ही आकाश में हीज स्थित है। आकाश रे बारणे नी रे' शके। यूँ ही अणा सवाँ ने म्हारा में 'रेवा वाळा है यूँ थूँ खूब निश्चय कर, ने निश्चय ने भी म्हाँ में हीज निश्चय जाण ले ॥६॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

१—प्रकृति ।
२—पुरुष प्रकृति री भिन्नता बताई है।
३—योग प्रकृति पुरुष रो संयोग, ई शूँ एक एक में जणावे है।
४—ज्यूँ वायरो खूब दौड़े, ठे'रे तो भी आकाश में हीज है। यूँ ही संसार रो फेलाव ने समटणो म्हारा में है।

जुगाँ रा अन्त में सारा, म्हारी प्रकृति में मले।
जुगाँ रा आद में पाछा, म्हूँ याँ ने उपजाय दूँ ॥७॥

हे कौन्तेय! ई सब म्हारीज प्रकृति में मले है, शमटे है, वो कल्प रो क्षय वाजे है। फेर पाछो कल्प रो प्रारम्भ व्हे जदी अणा सवाँ ने म्हूँ छोड़ दूँ हूँ, अर्थात् उधेड़ न्हाखूँ हूँ ॥७॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

वार वार करूँ त्यार, म्हारी प्रकृति धार यूँ।
प्रकृती रे पराधीन, होवे संसार यो सवी ॥८॥

यो शमेटवा रो ने उधेड़वा रो काम म्हारो सुभाविक ही व्हे है। म्हारी प्रकृति रे म्हूँ आधीन[1] व्हे ने यो काम नी करूँ पण प्रकृति ने म्हारे आधीन करने करूँ हूँ। यूँ यो आखो संसार आपो आप ही प्रकृति रे आधीन व्हियो थको वणे वगड़े[2] है ॥८॥

न च मां तानि कर्माणि निवध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥

प्रकृती रा किया कर्म, म्हने बाँध शके नहीं;
एकशो वैठ देखूँ म्हूँ, अणा में उळझूँ नहीं ॥९॥

हे धनंजय! ई संसार रा कर्म म्हने अणीज वास्ते नी बाँध शके है, क्यूँ के म्हूँ प्रकृति शूँ वना ही अड़्याँ ई करू हूँ। म्हने कर्म नी वाँधे जीं रो कारण यो हीज है के म्हूँ अणा कर्मा में परोक्ष री नाईं हीज निश्चल वैठो रेवूँ हूँ, अर्थात् अणा रा राग द्वेष में राग द्वेष नी करूँ हूँ।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

१—भाव यो है के म्हारा शूँ ई सब शावत व्हे है, ने अणी शूँ म्हूँ वंध नी शकूँ ज्यूँ सूर्य शूँ सब व्हे ने भी अलग है, यूँ।

२—यूँ आखो ही संसार प्रकृति रे आधीन है। एक म्हूँ हीज अणी शूँ वंच्यो हूँ, पण हाको तो म्हारो भी उड़ गियो है।

करे प्रकृति संसार म्हारी ही देख रेख में ।
अणी कारण शूँ सारो धारो संसार रो चले ॥१०॥

अश्या उदासीन अचळ, म्हारी आधीन में हीज या प्रकृति चराचर ने उपजावे है, ने जी शूँ हीज जगत् रो धंधो चाल र्‌यो है। हे कौन्तेय! या बात सहज शमझवा जशी है ॥१०॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

मानवी देह में म्हारो, मान नी मानवी करे ।
जाणे जी रूप नी म्हारो, सवाँ रो परमेश्वर ॥११॥

पण मूरख यूँ तो नी शमझे, ने शामो मनख शरीर रे आशरे म्हन माने । भलाँ अणी शवाय म्हारो और कई अनादर व्हेतो व्हेगा? के जणी रे आशरे आखो विश्व है वीं' ने एक साड़ा तीन हात रा शूगला नाशमान शरीर रे आशरे गणे । पण वीतो मूरख ठे'र्‌या जतरी ऊँची शमझे वतरी ही थोड़ीज है। वी' म्हारो परम भाव जो सवाँ रो महे-वर पणो है, वणी ने नी जाणता थकाँ यूँ करे है ॥११॥

मोघांशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

नकामाँ जाण वाँराँ थूँ, आशा करम ज्ञान ने ।
राक्षसी आसुरी माया, मोहनी में अचेत वी ॥१२॥

वी हिया फूटा व्हेवा शूँ म्हारो विश्वाधार रो आशरो तो नी लेवे' ने राक्षसी, देताँ री, ने बात या है के, मोहनी प्रकृति रो आशरो वणा ने आछो लागे है, जणी शूँ वणा री आशा, काम, ने ज्ञान सब फोगट परा जावे है ॥१२॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

महात्मा तो म्हने हीज, भजे देव सुभाव रा ।
जाण ने सब रो आदी, अविनाशी निरन्तर ।।१३।।

पण,हे पार्थ! महात्मा तो देवताँ राँ सुभाव रो आशरो ले है। क्यूँ के महात्मा[1] में यो सुभाव आपो आप आवे है। वी म्हने सबाँ रो आदी, अविनाशी जाण लेवे है; अणी वास्ते वणा रो मन और जगाँ कठे जावे ।।१३।।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ।।१४।।

म्हाँ में जतन म्हाँ में ही, बोलणो दृढ़ताव्रत ।
म्हाँ शूँ ही मिलिया सेवे, भक्ति शूँ नमता थका ।।१४।।

वणाँ रा तो शघळा उपाय भी म्हारे में हीज व्हे है। वणा रे रात दन रो म्हारो हीज कीर्तन है। वी तो भक्ति प्रेम शूँ म्हने हीज नमे है। वी तो सदा ही म्हारा शूँ अरश परश हीज रे'वे है, ने या हीज वणारी दृढ़ श्रद्धा है, दूज्यूँ तो शारा ही है तो अश्या हीज, पण विश्वास रो हीज फेर है ।।१४।।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ।।१५।।

सर्व रूपी म्हने सेवे, ज्ञान रा यज्ञ शूँ नरा ।
भजे अनेक भाँताँ शूँ,भेद शूँ ने अभेद शूँ ।।१५।।

ने कतराक तो ज्ञान रा होम में सब होम ने, अणीज ज्ञान यज्ञ शूँ म्हारी उपासना, सेवा करे है, ने यूँ भी म्हने हीज पावे है। म्हूँ तो चोमेर हूँ, ने अनेक तरे' शूँ हूँ, अवे भले ई म्हारी एकता[2] शूँ एक ही शमझ

१—महात्मा = मनख शरीर रे आशरे म्हने (आत्माने) नी माने पण म्हारे आशरे सब ने माने जो महात्मा वाजे ।

२—एकत्व प्रकृति में जाणणो, पृथकत्व विकृति में जाणणो, या साकार निराकर उपासना है। दोयाँ शूँ ही म्हूँ मलूँ हूँ पण प्रकृति में उपासना करणी पे'ली कठिन है। अणी वास्ते अनेक में (विकृति में) म्हने सुमरणो सहज है। अणी वात ने भगवान ठेठ वारमाँ अध्याय तक शमझाई है, ने अर्जुण रे भी आशे आई है, सो विचार लेणी ।।

ने उपासना करो, भावें अनेक रूप शूँ करो ॥१५॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

म्हूँ ही क्रतु म्हुँ ही यज्ञ, स्वधा म्हूँ औषधी म्हुँ ही ।
मंत्र म्हूँ घृत भी म्हूँ ही, अग्नि ने होम भी म्हूँ ही ॥१६॥

म्हूँ ही क्रतु नाम रो यज्ञ, ने होम नाम रो यज्ञ, स्वधा जो यज्ञ में (पित्रेश्वराँ रे निमित्त) के' वे, ने औषध जो होमे, मन्त्र, घृत, अग्नि. ने आहुति भी म्हूँ हीज हूँ ॥१६॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥१७॥

दादो माता पिता म्हूँ हूँ, आधार सब रो म्हूँ ही ।
जाणवा जोग ॐकार, पवित्र वेद भी म्हूँ ही ॥१७॥

अणी आखा जगत रो पिता-माता, ने पिता मह भी म्हूँ हीज हूँ, यूँ ही एक अनेक म्हूँ हूँ ,जाणवा योग्य जो पवित्र ॐकार है,वो ही म्हूँ हूँ. जदी वणी शूँ व्हिया थका ऋक्, साम, यजुर्वेद, भी म्हूँ हूँ हीज ॥१७॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥

मित्र भर्ता प्रभू साक्षी, निवास शरणो गती ।
उत्पत्ती नाश रो स्थान, ख्वान म्हूँ बीज एक सो ॥१८॥

सबाँ री गति, पाळवावाळो, समर्थ, ने साक्षी भी म्हूँ हूँ, ने रे'वा री जगाँ आशरो (शरणो) ने मित्र, भलो चा'वा वाळो, ने उपत-खपत री जगाँ कई खजानो, ने अविनाशी बीज भी म्हूँ हीज हूँ ॥१८॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

तपूं म्हूँ वरषूं म्हूँ ही, लेवा देवो करूँ म्हुँ ही ।
म्हूँ ही अमृत ने मौत, साँच ने झूंठ भी म्हुँ ही ॥१९॥

म्हूँ हीज तपूँ हूँ, वर्षूं हूँ, ने जळ ने खेंच ने छोड़ भी देवूँ हूँ। अमृत तो म्हूँ हूँ हीज, पण मौत भी हूँ, ने हे अर्जुण! साँच, ने झूंठ भी म्हूँ हूँ, अब के' म्हने कोई कूँकर भूले ॥१९॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा, यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्तिदिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०॥

जी देवता रूप म्हने रिझावे, जी यज्ञ शूँ स्वर्ग पवित्र चा'वे ।
मले वणाँ ने सुख देवताँ रा, जठाक ताँई शुभ कर्म वाँरा ॥२०॥

पण[१] तो भी यूँ नी जाणवावाळा बे'क जावे है । वी वेद ने जाणे है, सोम (पवित्र रस) पीवे है, यज्ञ शूँ म्हने राजी करे है, पण चा'वे स्वर्ग रा सुखाँ ने है । अश्या पुण्या शूँ वी इन्द्रलोक ने पाय ने देवताँ रा अनोखा ऊँचा सुखाँ ने भुगते है ॥२०॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना, गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

भोगे घणो स्वर्ग अनूप वी तो, पाछा पड़े पुन्न मटे जदी तो ।
पड़ा चढ़ी में पड़ वेदधर्मी, छोड़े नहीं आश विनाश धर्मी ॥२१॥

वी वणी ने भोग ने (स्वर्ग ने भोग ने), जो फेर घणो ने घणा समय तक रे'वा वाळो है तो भी, पुण्य पूरा व्हे ने पाछा अणी जनम मरण रा फेरा में आय पड़े । यूँ वेद रा धर्म रो, हीज आधार राख ने भी कामना राखवा वाळा आवागमन शूँ नी छूटे, क्यूँ के वणा रे म्हारी उपासना नी है ॥२१॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

१—यूँ म्हारी सर्वां में उपासना नी करवावाळा, ने कोरा ही सत्कर्म करवा वाळा अश्या म्होटा २ काम कर ने भी विमुख हीज रे' जावे है, ने म्हारी सर्वत्र उपासना करवा वाळा म्हने से'ल में ही पाय लेवे है । ज्यूँ "क्रिया दक्षो दक्षः" महिम्न में कियो है ।

ओराँ ने छोड़ ने एक, म्हने ही मन दे भजे ।
जो सदा ही मिल्या म्हाँ में, वाँरा काम करूँ म्हुँ ही ॥२२॥

ने जी म्हारा भक्त म्हने हीज सबाँ में देखे है, वणा रे तो म्हूँ चोमेर हाजर रेवूँ हूँ, ने वी भी म्हारे में ही सदा रे'वे है। अबे वणा रे कई बाकी रियो? वणा रे तो सब लावणो[1] अवेरणो म्हूँ हीज कर लेवूँ हूँ, भलाँ म्हारे शिवाय वणा रे दूजो कूण है ॥२२॥

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

जी भजे देवता दूजा, राख विश्वास भक्ति शूँ ।
वी भी भजे म्हने हीज, परन्तू रीति रे वना ॥२३॥

ने जी दूसरा देवताँ रा भी भक्त है, ने वणा री विश्वास शूँ आराधना करे है, वी भी वा आराधना करे तो म्हारी है, पण हे कौन्तेय! वा वणा री वना[2] रीत री अँवळी भक्ति है ॥२३॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥२४॥

म्हूँ हीज सब यज्ञाँ रो, भोगी मालक भी म्हुँ ही ।
म्हने सही नहीं जाणे, वाँ ने वो फळ नी मले ॥२४॥

वी अशी मे'नत तो करे, ने फेर अशी ओछी आराधना क्यूँ करे? ईं रो कारण यो है के सब यज्ञाँ रो भोगवा वाळो, ने समर्थ मालक धणी हीज म्हूँ हूँ, पण म्हने[3] वी चोमेर नी जाणे अणी वास्ते वी शाँची वात शूँ टळ जावे है ॥२४॥

१—स्वर्ग(सुख) कामी तो स्वर्ग पावे ने मे'नत घणी पावे, पाछा पड़े । म्हारा व्हे जी वना मेंनत म्हने पावे, सुख भी पावे ।

२—वना रीत शूँ अतरी कठिनता कर ने जन्म मरण शूँ नी छूटे, ने रीत शूँ सहज में छूट जावे, ने फेर वी सुख तो म्हूँ वणा ने वना माँग्या ही घणा ही देवूँ हूँ । अठे स्पष्ट आप परमात्मा पणो वताय रिया है, संकीर्णता नी है । भाव यो है के सब रो कर्ता म्हूँ हीज व्हे जावूँ हूँ, यद्यपि म्हूँ हीज हूँ तो भी यथार्थ ज्ञान नी व्हेवा रो, ने व्हेवा रो नरोई भेद है; सोही सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

३—म्हने तो नीज जाणे है, दूज्यूँ अतिश्रम करने अल्प फळ क्यूँ लेता ।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥२५॥

देवाँ रा भक्त देवाँ ने, पित्राँ ने पित्रपूजक ।
भूताँ रा भक्त भूताँ ने, म्हारा पावे म्हने भज ॥२५॥

जी देवता री आराधना करे वी देवता ने पावे । पितरेशराँ (पूर्वजाँ) रा भक्त पूर्वजाँ नें पावे । भूताँ रा भक्त भूताँ ने पावें । म्हारा भक्त म्हारे आशरे सब काम करता थंका म्हने भी पाय लेवे । म्हने पावणो अतरा ज्यूँ नी है, म्हूँ तो याँ शूँ अनोखो हूँ, जणी आपाँ ने म्हारा में लगाय दीधो वणी रो सब म्हारो, ने म्हारो पछे वणी रो व्हे गियो ॥२५॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

जो म्हने भाव शूँ अर्पे, पान फूल फळादिक ।
भक्ताँ रो म्हूँ दियो खावूँ, म्हूँ भूखो भाव रो सदा ॥२६॥

पानो, फूल, फळ, ने जळ ज्यो कई वो भक्ति शूँ देवे, वो ही म्हारे भोग लाग जावे है; या वात सत्य हैं ॥२६॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

जो जो होमे तथा खावे, देवे जो जो करे सदा ।
जो जो तापे सवी सो सो, म्हारे ही कर अर्पण ॥२७॥

हे कौंतेय! अबे बाकी कई रियो, थूँ जो तपस्या, होम, दान, अथवा खावो-पीवो करे वो भी म्हारे ही अर्पण कर दियाँ कर । देख केतरी शूधी म्हारी प्राप्ति है ॥२७॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

कर्माँ रा बन्ध यूँ छूटे, थाग शारा भला बुरा ।
संन्यास योग यूँ माध, मुक्त व्हे पायगा म्हने ॥२८॥

ने यूँ करवा शूँ होज कर्मां रा फळ रा बन्ध शूँ थूँ छूट जायगा। संन्यास योग में थारो मन लाग जावेगा, ने थूँ मुक्त व्हे जायगा, म्हने पाय लेगा ॥२८॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

वैरी शेण नहीं म्हारे, समान सब तो पण ।
वी म्हाँ में म्हूँ रहूँ वाँ में, जी भजे भक्ति शूँ म्हने ॥२९॥

म्हारे तो कणी री भी रख-पख नी है, म्हारे तो सारा ही सरीखा है। नी तो कोई शेण है, ने नी जो वैरी है। पण जी भक्ति शूँ म्हने भज ने खुद ही म्हारे नखे आय जावे, जदी तो भलाँ वणाँ ने दूरा भी कूँकर करणी आवे? पछे तो वी म्हारे में मल्या, तो म्हूँ भी वाँ में मल्यो हीज ॥२९॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥

जो वो महा दुराचारी, म्हारी भक्तीज आदरे।
साधू ही जाणणो वींने, वींरो निश्चय उत्तम ॥३०॥

पछे तो वो चावे जश्यो म्होटो पापी व्हे तो भी वणी शूँ म्हारी भक्ती तो नी भागणी आवे, ने थूँ ही के' नी जो म्हारी भक्ति करेगा वो ही पापी रे' जावे जदी पुण्यात्मा फेर कश्यो व्हेगा? म्हारी जाण में तो वणीज जनम सुधारयो, ने महाधर्मी व्हियो ॥३०॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

झट वो होय धर्मात्मा, अखूट सुख पाय ले ।
नी म्हारा भक्त रो नाश, प्रतिज्ञा कर म्हूँ कहूँ ॥३१॥

हे कौन्तेय! या वात साँची है के धर्मात्मा म्हने पावे, पण अणी ने धर्मात्मा व्हेता देर ही कतरीक लागे? वो तो धर्मात्मा रे ही आगे रो

अखण्ड सुख पावा में ही देर नी लगावे, जदी धर्मात्मा कठी ने चाल्या। यूँ देख ने देखे तो धर्मात्मा[1] ईं रो हीज नाम है। थूँ या नक्की कर ले, ना'म भेम राखे मती। म्हारो भक्त दूजाँ ज्यूँ कदी नी पड़े है ॥३१॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥३२॥

म्हारो ही आशरो ले ने, जो होवे पापजूण भी।
वाण्या, कमीण, नारयाँ भी, पाय लेवे परं पद ॥३२॥

हे पार्थ! म्हारो भक्त व्हेवा री देर है, पछे भलेईं जन्म रो ही महापापी व्हे तोई कई अटकाव नी। काम तो म्हारो आशरो लेवा री देर है। लुगायाँ, वाण्याँ, ने शूद्र धरा धरू भी' परमगति म्हूँ हूँ जणी ने पाय लेवे है। वी भी ऊली कानी कठे ही नी ठे'रे ॥३२॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

शुद्ध ब्राह्मण राजर्षि, याँरो तो कहणो कई।
ईं ठो यो दुःख रो स्थान, जग जाण म्हने भज ॥३३॥

जदी फेर पवित्र ब्राह्मण, ने राजऋषियाँ री तो बात ही कई के'णी। वी तो पावे हीज। क्यूँ के दुराचारी ही पावे, वणी ने सदाचारी पावे, अणी में वत्ताई ही कशी है। यूँ है जदी अबे अणी मोका ने नी चूकणो चावे, क्यूँ के यो मनख जनम सदा ही नी रे'वेगा, ने अणी संसार में तो सुख है ही नी। अणा[2] दो वाताँ ने आछ्याँ गाढ़ी कर ने अबार ही म्हारे आशरे लाग जा, भजन कर, देर करे मती ॥३३॥

१—धर्म-आपणोस्वभाव; वो हीज आत्मा-जीवन, जीं रो व्हे वो धर्मात्मा वाजे। आपणो सुभाव छोड़ पराया रो सुभाव ले वो ही पापात्मा वाजे। या वात धर्म रा नाम शूं जगाँ २ गीताजी में की' है ॥

२—मनख अणा दो वाताँ में हीज रे जावे है। एक तो पछे, ने एक सुभीतो देखवा में। सो अनित्य, असुख शूं आज्ञा कीधी के, ईं भरोशे मत री' जे ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ।।३४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे "राजविद्याराजगुह्ययोगो" नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

भक्त होवे म्हने चित, म्हने पूज म्हनें नम ।
म्हने ही पायगा लाग, म्हाँ में ही लहलोट व्हे ।।३४।।

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योग शास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में "राजविद्या राजगुह्य" योग नाम नवमो अध्याय समाप्त व्हियो ।। ९ ।।

ने करणो कई पड़े है? म्हारे में मनवाळो व्हेणो, म्हारी सेवा करणी, म्हने नमस्कार करणो । यूँ खुद आप ने ही म्हारे सुपरद कर देवेगा, ने म्हने हीज पाय लेवेगा । अतरी शूधी वात है के म्हारे में हीज लागा रे'णो, ने लागो कूण नी रे' है, पण माने नी ।।३४।।

ॐ वो साँचो है यूँ भगवान् री भाषी थकी उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योग-शास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुन रा संवाद में "राजविद्या राजगुह्य योग" नाम रो नवमो अध्याय पूरो व्हियो ।।९।।

ॐ

दशमोऽध्यायः ।

श्री भगवानुवाच ।

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

ॐ दशमो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

फेर भी वात या म्हारी, शुण उत्तम लाभ री ।
अणी पे प्रेम थारो है, जणी शूँ म्हूँ कहूँ थने ॥१॥

ॐ दशमो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् आज्ञा कीधी के, हे महाबाहू! थूँ ध्यान दे ने शुण, फेर भी थने म्हूँ परम वचन[1] के वूँ हूँ । अणा म्हारा वचनाँ री होड़ रा दूसरा वचन व्हे ही नी शके है । अश्या वचन भी म्हूँ थने अणी वास्ते के'वूँ हूँ के थूँ अणी ने शुण ने अन्तश शूँ राजी व्हे रियो है, ने म्हूँ ज्यो थारो परम हित चावूँ हूँ, दूज्यूँ नी कूँ ॥१॥

१—ई परम वचन है, जदीज भगवान अणा रो आखी गीता में कावो देता गिया है । आखी गीता रो भी यो हीज भाव है, ने अणी अध्याय रो तो नाम ही विभूति योग हीज है। वास्तव में देखने देख्यो जाय तो विभूति योग रे शिवाय प्रभु ने पावा रो और उपाय ही नी व्हे शके । जदीज के'वे के शंख रे साथे वजावा वाळा ने देख । कतरा ही वींने अणी शूँ न्यारो देखवा री करे वणा ने मे'नत घणी है, ने लाभ तो यो हीज है । यूँ ही कोरी विभूति में उळझ रे'णो अनुचित है, या वात ऊपरला ३।४। आदि श्लोकाँ शूँ शमझाई है, ने विभूति रा न्यारा नाम लेने वणाँ रे शाथे आँपणी याद कराई है । सब में आत्मा ने देखणो यो भाव है ।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणाञ्च सर्वशः ॥२॥

म्हारी उत्पत्ति नी जाणे, देवता ने महाऋषी ।
म्हूँ ऋषीश्वर देवाँ रो, सवाँ रो, आदि कारण ॥२॥

अतरीं व्हेवा वाळी चीजाँ ज्यूँ म्हने भी जाणवा री इच्छा करणी मोटी भूल है, सव देवता, ने महर्षि भी म्हारो व्हेणो जाण ही नी शक्या; ने अनादि रो आदि जाण ही कूँकर शके, पण म्हूँ तो सव देवताँ रो, ने महा ऋषियाँ रो चोमेर शूँ रत्ती रत्ती रो आदि हूँ हीज ॥२॥

यो मामजमनादिञ्च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

म्हने जाणे अनादी ज्यो, अजन्मा सव रो धणी ।
वो छूटे सव पापाँ शूँ, नराँ में वुद्धिमान वो ॥३॥

अवे म्हारो जाणणो यो हीज व्हियो के जनम्याँ रे साथे अजनम्यों, आदि वाळाँ रे साथे अनादि, अनीश्वर जगत् रे साथे महेश्वर जाण लेणो ही म्हारो जाणणो है। अणी शिवाय री खटपट में पड़ेगा तो हाते कही नी आवणो है। यूँ नी जाण ने हीज म्हने जाणे वो हीज शमझणो मनख है, ने वो हीज अमर व्हे सव पापाँ शूँ छूट जावे है ॥३॥

वुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयञ्चाभयमेव च ॥४॥

वुद्धी ज्ञान क्षमा साँच, ओशान शम ने दम ।
है न है सुख ने दुःख, डँरणो डरणो नहीं ॥४॥

अवे कतरा ही म्हने वुद्धि, ज्ञान, सावधानता, क्षमा, साँच, इन्द्रियाँ री रोक, ने मन री रोक, सुख-दुःख व्हेणो, नी व्हेणो, भय, अभय हीज ने ॥४॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥५॥

स्तुती निन्दा दया दान, सन्तोष समता तप ।
म्हारा शूँ हीज जीवाँ रा, न्यारा न्यारा शुभाव ई ।।५।।

अहिंसा, समता, तुष्टि, ९ तरे' रो सन्तोष, तपस्या, दान, यश, अपयश, हीज मान बैठे है या कतरी म्होटी भूल है । ई सब न्यारा न्यारा है । म्हूँ भी कई न्यारो व्हे शकूँ हूँ? ई तो वणे जणा रा भाव है । म्हूँ कई वणे ज्यो हूँ? ई म्हारे शूँ ही व्हे जतरे कई ई म्हूँ व्हे शकूँ हूँ ।।५।।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।।६।।

चार ही मनु पे'ली रा, सात ही जी महाऋषी ।
ई म्हारा मन रा भाव, यां रा शा'रा चराचर ।।६।।

पे'ली शूँ भी पे'ली रा, सात ही जी महाऋषि, ने चार मनु है पण ई भी जदी म्हारा भाव है अर्थात् म्हारा मन शूँ व्हिया है, जदी अणाँ शूँ व्हिया थका ई लोक, ने वणाँ शूँ व्हिया थका ई जीव जन्त म्हूँ कूँकर व्हे शकूँ? पण मनख बे शमझ शूँ याँ ने हीज म्हने शमझ ले है।।३।।

एतां विभूति योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।।७।।

आछ्याँ जो जाण ले कोई, अणी वैभव योग ने ।
वो ही अचळ योगी है, ई में सन्देह है नहीं ।।७।।

पण जो अणी ने म्हारी विभूति शमझे अथवा म्हारो अणा रे साथे शुमरण करे' ठीक तरे' शूँ जाण ने, तो वणी रो अखण्ड योग (समाधि) व्हे जाय; अर्थात् वो म्हारे शूँ मल जावे है, अणी में बिलकुल भे'म नी है ।।७।।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ।।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ।।८।।

म्हारे शूँ सब ही होवे, चाले म्हाँ शूँ सबी जग ।
मल्या ई भाव में भक्त, म्हने यूँ जाण ने भजे ।।८।।

म्हूँ हीज सबाँ री उपजवा री जगाँ हूँ, ने म्हारे शूँ हीज सब चाले है। यूँ जाण ने सुजाण भावना शूँ म्हने भजे है, क्यूँ के यूँ जाण्या केड़े तो म्हारे भजन ही भजन है ॥८॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥९॥

म्हाँ में ही चित्त ने प्राण, माँहो माँहें प्रबोधता ।
म्हने ही कहता नित्त, म्हाँ में ही राच ने रमे ॥९॥

पछे तो वणा रो चित्त भी म्हारे में हीज आय जावे है, ने और तो कई वणा रो जीवणो भी म्हारे में हीज व्हे जावे है। पछे तो दीवा शूँ दीवा री नाईं हर कणी ने ही आँपणे शरीखा करता फरे है। यो हीज वणा रो काम व्हे जाय है। क्यूँ के वणाँ रे तो म्हारीज चर्चा सर्वदा रे'वे। और व्हे ने और री वात करे। फेर वणाँ ने म्हारी चर्चा में हीज सन्तोष शान्ति मले है, ने वणी में हीज रम्या करे है, ज्यूँ जाळ में माछळा व्हे ज्यूँ ॥९॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०॥

ज्याँ रो वास सदा म्हाँ में, जी भजे प्रीति शूँ म्हने ।
वणा ने बुद्धि देवूँ वा, जीं शूँ वी पायले म्हने ॥१०॥

वी म्हारे में निरन्तर लागा रे' है, ने आनन्द शूँ म्हारो भजन करे है, जदी म्हूँ भी वणाँ ने अश्यो बुद्धि योग देऊँ के जणी शूँ वी म्हारे में वत्ता वत्ता नखे रे'वे, जी शूँ वणाँ ने फेर म्हारे में वत्तो रे'णो शुहावे। यूँ म्हारो देणो ने वणा रो लेणो कदी खूटे ही नी है, अश्यो म्हारो, ने वणा रो प्रेम वदे है ॥१०॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११॥

आत्मा म्हूँ सब रो तोभी, अश्या ही पे दया करूँ।
अज्ञान रो हरूँ सारो, अँधारो ज्ञान जोत शूँ ॥११॥

दूज्यूँ तो म्हूँ सबाँ में, ने सब म्हारे में रे'ने भी म्हने नी देखे तो म्हारे ही कई गरज पड़ी है। म्हूँ भी म्हारा भक्ताँ रो हीज आत्मा व्हे ने वणा रो अज्ञान रो अन्धारो मटाऊँ हूँ; क्यूँ के वणा पे म्हूँ महेरबानी करणो चावूँ हूँ, ने अणी शिवाय और महेरबानी व्हे ही कई ? जी ने म्हूँ करूँ। म्हूँ तो वणा रो आत्मा व्हियो थको अखण्ड प्रकाश मान ज्ञान रो दीवो दे ने, हमेशाँ रे वास्ते अज्ञान रो अन्धारो मटाय देऊँ हूँ, पछे वी कूँकर कठे भमे ॥११॥

अर्जुन उवाच।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥

अर्जुण कही।

परंब्रह्म परंधाम, आप पूरा पवित्र हो।
अज आदि अनोखा हो, सदा पुरुष व्यापक ॥१२॥

अर्जुण अरज करी, हे भगवान् ! आप ने सबाँ शूँ बड़ा, ने न्यारा, ने परम तेज, ने परम पवित्र, अज, अलौकिक, आदि, व्यापक, एक शरीखा रे'वा वाळा पुरुष के'वे है या वात म्हारे ठीक जचगी ॥१२॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

यूँ कहे ऋषि शारा ही, असित व्यास देवल।
कहे नारद भी यूँ ही, पोते ही आप भी कहो ॥१३॥

यूँ आप ने एक दो जणा अश्या वश्या हीज नीं के'वे है, पण शारा ही महाऋषि के'वे है, ने देवता में जो नारद ऋषि है वी, तथा असित, देवल, व्यास जी भी या हीज वात के' है। फेर सबाँ री आत्मा

खुद आप हीज हुकम कर रिया हो। अबे म्हने कीने पूछणो वाकी रियो? आप म्हने हुकम करो वीं में कई भे'म ॥१३॥

सर्वमेतदृतंमन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

सो सभी साँच मानूँ म्हूँ, जो कहो आप केशव ।
देव दानव कोई भी, नी जाणे रूप आप रो ॥१४॥

अणी वास्ते हे केशव ! जो जो आप म्हने हुकम करो वा सव वात म्हूँ साँच हीज मानूँ हूँ। साँची ही देवता वा दानव, आप ने अतरी चीजाँ ज्यूँ तो कोई नी जाण शके या वात नक्कीज है ॥१४॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश, देवदेव जगत्पते ॥१५॥

आप शूँ आप ही जाणो, आप ने पुरुषोत्तम ।
जग कर्ता जगन्नाथ, देवां रा देव ईश्वर ॥१५॥

हे पुरुषोत्तम ! आप ने जो कोई जाण तो व्हेगा तो वी खुद आप हीज आप ने जाणता व्होगा। और री तो या शामर्थ व्हे[१] ही नी शके जो आप ने जाणे। क्यूँ के जतरी चीजाँ वणे सवाँ ने आप हीज भावना शूँ जाणो हो, ने सवाँ रा मालक, ने आधार आप हो। सव देवताँ रा ही देवता आप हीज हो। आप ही आखा जगत् पति (जगदीश) हो ॥१५॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥

कहो वो आपरो शारो, अनोखो योग वैभव ।
जणी वैभव शूँ आप, रह्या व्याप जहान में ॥१६॥

अणी वास्ते आप रा सव वैभव ने आप हीज खुद हुकम करो, क्यूँ के आप रो वैभव भी अलौकिक है, वीं ने भी और कूण के' शके ?

१—विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति श्रुतेः ॥

जणी वैभव शूँ आप अणी आखा जगत में व्यापक व्हे रिया हो शो सब हुकम करो ॥१६॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

कीं तरे, आप ने जाणूँ, सदा ही चिन्ततो थको
कीं कीं में भगवत् चिन्तूँ, म्हूँ योगीश्वर आपने ॥१७॥

हे महा योगी ! सबाँ में मल्या रे'वा वाळा आप ने म्हूँ कूँकर ओळख शकूँ? क्यूँके आप ने तो कोई जाण ही नी शके है, या वात सब तरे' शूँ शाबत व्हे गी है, ने आपरा शुमरण कीदां वना भी छुटकारो नी है। अणी वास्ते हे भगवान् ! मण्याँ रे ऊपरे आप रो नाम लेवाय ज्यूँ निरंतर आप रो शुमरण व्हे तो रे'वे अश्या जो ई आप रा मन रा भाव है अणां रे साथे कणी कणी में आप री याद म्हने करणी चावे ॥१७॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिञ्च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८॥

कहो विस्तार शूँ फेर, महिमा योग आप रो ।
नाथ अमृत शूँ ईं शूँ, धापूँ नी शुणतो थको ॥१८॥

या वात आप म्हने आछी तरे' शूँ विस्तार कर ने शमझाय दीजो, क्यूँ के अणी शूँ हीज आप री कृपा व्हे शके है। हे जनार्दन ! आप रो विभव, ने वणी में आप रो मल्यो रे'णो, फेर आप हुकम करो। क्यूँ के पे'ली भी आप यो हुक्म कीधो हो, पण या बात है के अणी अमृत ने शुण तो थको म्हूँ धापूँ नी हूँ, क्यूँ के म्हारो जन्म-मरण रो दुःख मटवा रो यो ही उपाय है ॥१८॥

श्री भगवानुवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९॥

श्री भगवान् आज्ञाकरी ।

घणी आछी कहूँ म्हारी, अनोखी महिमा थने ।
पार विस्तार रो नी पी, सार सार शुणाय दूँ ॥१९॥

श्री भगवान् हुकम कीधो, हे कौरवाँ में श्रेष्ठ! शाँची ही थें श्रेष्ठ वात ने पकड़ लीधी । अणी शूँ म्हूँ घणो राजी व्हियो । ले भाई ! अबे तो म्हारी अलौकिक महिमा थने के' दूँगा शो थूँ ध्यान दे ने शुण जे, पण थें कियो के विस्तार शूँ की'ज्यो शो सब महिमा जो के'वा बैठूँ तो वणी रो पार ही नी आवे, अणी वास्ते मुख्य मुख्य के'वूँ शो थूँ शमझणो है शो यूँ ही सब शमझ लीजे, ने अणी शिवाय और उपाय भी नी है ॥१९॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यञ्च भूतानामन्त एव च ॥२०॥

म्हूँ ही आतमा गुडाकेश, हिया में सब रे वशूँ ।
आद मध्य तथा अन्त, सवाँ रो जाण थूँ म्हने ॥२०॥

हे गुडाकेश! शुण, सबाँ रे हृदय में जो आत्मा थिर व्हे रियो है, जणी रे आशरे हीज सब काम व्हे है, वो सबाँ में आत्मा म्हूँ हीज हूँ । अर्थात् थारे शाथे हीज म्हूँ भी हूँ । या भी कई भूलवा जशी वात है, कदी नी । फेर देख, हरेक वस्तु रो आदि, मध्य ने अन्त व्हे है शो ई तीन ही वाताँ म्हूँ व्हेवूँ, जदी कणी वगत म्हारो शुमरण नी व्हे शके, ने ई तो म्हूँ हूँ हीज निश्चय ॥२०॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

आदित्याँ में म्हुँ ही विष्णु, उजाळा माँय सूरज ।
मरीची पवना माँय, तारा में चन्द्रमा म्हुँ ही ॥२१॥

आदित्याँ में विष्णु म्हूँ हूँ, प्रकाशमाना में किरणाँ वाळो सूरज, मरुताँ में मरीचि हूँ, नक्षत्राँ में म्हूँ चन्द्रमाँ हूँ ॥२१॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ।।२२।।

देवाँ रे माँय हूँ इन्द्र, वेदाँ में सामवेद हूँ ।
मन हूँ इन्द्रियाँ माँय, प्राणियाँ माँय चेतना ।।२२।।

वेदाँ में सामवेद हूँ, देवाँ में इन्द्र हूँ, इन्द्रियाँ में मन हूँ, जीवजन्ताँ में चेतना हूँ ।।२२।।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ।।२३।।

कुबेर यक्ष रक्षाँ में, रुद्राँ रे माँय शंकर ।
सुमेर पर्वताँ में हूँ, वसुवाँ माँय पावक ।।२३।।

रुद्राँ में शंकर हूँ, यक्ष राक्षसाँ में कुबेर हूँ, वसुवाँ में पावक हूँ, मगराँ में सुमेरु हूँ ।।२३।।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ।।२४।।

परो'ताँ में म्हने मुख्य, जाण पार्थ बृहस्पति ।
सेना नायक में स्कन्द, तळावाँ में समुद्र हूँ ।।२४।।

हे पार्थ! परो'ताँ में भी म्हने ही मुख्य बृहस्पति जाण, सेना रा मुखियाँ में स्कन्द (स्वामी कार्तिक) हूँ, सरोवराँ में सागर हूँ ।।२४।।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ।।२५।।

वाणी रे माँय ॐकार, म्हूँ हूँ भृगु महा ऋषि ।
जप हूँ सब यज्ञाँ में, थिराँ माँय हिमाचळ ।।२५।।

महा ऋषियाँ में म्हूँ भृगु, नं वाणी में एक अक्षर हूँ, यज्ञाँ में जप यज्ञ हूँ, अचळाँ में हिमालय (हेमाळो) हूँ ।।२५।।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणाञ्च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥२६॥

पीपळो सब रूँखाँ में, देवर्षी माँय नारद ।
म्हूँ चित्ररथ गन्धर्व, मुनि कपिल सिद्ध में ॥२६॥

सब वृक्षाँ में पीपळो, ने देवताँ रा ऋषियाँ में नारद हूँ, गन्धर्वां में चित्ररथ हूँ, सिद्धाँ में कपिल मुनि हूँ ॥२६॥

उच्चैः श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

उच्चैः श्रवा म्हने जाण, घोडाँ रे माँय अर्जुण ।
म्हूँ ऐरावत हात्याँ में, राजा मनख माँय ने ॥२७॥

घोड़ाँ में अमृत शूँ निकळ्यो थको म्हने उच्चैः श्रवा जाण, वड़ा वड़ा हात्याँ में ऐरावत, ने मनखाँ में वणाँ रो मालक (राजा) जाण ॥२७॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

वज्र हूँ आवधाँ माँय, गायाँ में कामधेनु हूँ ।
साँपाँ में वासुकी म्हूँ हूँ, काम हूँ जनमाववा ॥२८॥

आवधाँ में म्हूँ वज्र हूँ, ने गायाँ में कामधेनु हूँ, उपजावा वाळा में कन्दर्प (काम) हूँ, साँपाँ में वासुकी हूँ ॥२८॥

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

प्रचेता जळ जीवाँ में, नागाँ में शेष नाग हूँ ।
पित्राँ में अर्यमा हूँ म्हूँ, दण्ड दायक में यम ॥२९॥

ने नागाँ में अनन्त हूँ, जळाँ रा देवाँ में वरुण हूँ, पितराँ में अर्यमा हूँ, ने रोक में यम हूँ ॥२९॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणाञ्च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।।३०।।

हिंशाब्याँ में मुँही काळ, देंताँ में प्रहलाद हूँ ।
पशुवाँ माँय ने ना'र, म्हूँ हूँ गरुड़ पक्षि में ।।३०।।

देंताँ में प्रहलाद हूँ, विचारवा वाळा में काळ (समय) हूँ, (अथवा गणती करवा वाळा में काळ) पशुवाँ में न्हार भी म्हूँ हूँ, ने पंखेरू में गरुड़ ।।३०।।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ।।३१।।

राम हूँ शस्त्रधारयाँ में, दोड़वा माँय वायरो ।
नदियाँ माँय गंगा हूँ, मच्छाँ रे माँय मंगर ।।३१।।

दोड़वा वाळा में वायरो हूँ, आवध राखवा वाळा में राम हूँ, मच्छा में मंगर भी म्हूँ हूँ, नद्याँ में गङ्गा हूँ ।।३१।।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ।।३२।।

सृष्टि रो आदि ने अन्त, मध्य म्हूँ हीज अर्जुण ।
अध्यात्म विद्या विद्या में, बोली में निरणो मुँही ।।३२।।

हे अर्जुण! और कई जो जो संसार वणे है वणाँ रो आद अन्त ने मध्य भी म्हूँ हीज हूँ, सब विद्या में अध्यात्म विद्या, नें बोलवा वाळाँ में वाद हूँ ।।३२।।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ।।३३।।

द्वन्द्व हूँ म्हूँ समासाँ में, अक्षराँ में अकार हूँ ।
अखूट काळ हूँ म्हूँ ही, आधार सबरो म्हूँ ही ।।३३।।

अक्षराँ में अकार हूँ, समासाँ में द्वन्द्व हूँ, अखण्ड काळ भी म्हूँ हीज हूँ, चोमेर मूँडा वाळो विधाता म्हूँ हूँ ।।३३।।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ।।३४।।

मोत हूँ कोश लेवा में, भाग में वड़ भाग हूँ ।
लुगायाँ में म्हने जाण, सात ही धर्म री स्त्रियाँ ।।३४।।

सब ने शमेटवा वाळी मोत म्हूँ हूँ, ने उत्पत्ति भी उपजे–वधे जणा री म्हूँ हूँ । लुगायाँ में कीर्ति, शोभा, बोली, याद, भूलणो नी, धीरज, क्षमा, (खमणो) ई सात ही वाताँ हूँ ।।३४।।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ।।३५।।

सामाँ माँय बृहत्साम, गायत्री छन्द माँय हूँ ।
मार्गशीर्ष महीना में, ऋतुवाँ में वसन्त हूँ ।।३५।।

सामाँ में बृहत्साम, यूँ ही छन्दाँ में गायत्री हूँ, महीनाँ में मगसर, ने ऋतुवाँ में वसन्त हूँ ।।३५।।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ।।३६।।

तेज हूँ तेजवाळाँ में, छळियाँ माँय हूँ जुवो ।
उपाय जीत हूँ म्हूँ ही, सज्जनाँ में भला पणो ।।३६।।

छळवा वाळाँ में जुवो, तेजस्वियाँ में तेज हूँ, हिम्मत वाळा में म्हूँ हिम्मत हूँ और वणी हिम्मत शूँ व्हेवा वाळा उपाय, ने जीत म्हूँ हूँ हीज ।।३६।।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ।।३७।।

यादवाँ में म्हुँ ही कृष्ण, पाण्डवाँ मांय अर्जुण ।
मून्याँ रे मांयने व्यास, कव्याँ रे मांय शुक्र हूँ ।।३७।।

वृष्णी (यादवाँ) में वासुदेव हूँ, पाण्डवाँ में धनञ्जय हूँ, मुनियाँ में भी व्यास, ने कवियाँ में उशना (शुक्राचार्य) कवि हूँ ।।३७।।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।।३८।।

दवावा माँय हूँ दण्ड, जीत रे माँय नीत हूँ ।
छुप्याँ रे माँय हूँ मौन, ज्ञान हूँ ज्ञानवान में ।।३८।।

दमन करवा में दण्ड, जीतवा वाळा में नीति हूँ, छुप्याँ में मून भी म्हूँ हूँ हीज, ज्ञानवानाँ में शाँचो ज्ञान हूँ ।।३८।।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।।३९।।

जो कोई बीज शाराँ रो, शो म्हूँ ही एक अर्जुण ।
कठेई भी कई कोई, होवे म्हारे वना नहीं ।।३९।।

हे अर्जुण ! यूँ कठा तक कियाँ जाऊँ, जतरो कई थने जणावे है वणाँ सबाँ रो बीज तो म्हूँ हूँ हीज। चराचर में अश्यो कई नी है ज्यो म्हारे वना ठेरे ।।३९।।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ।।४०।।

अनोखी महिमा म्हारी, अणी रो पार है नहीं ।
यो तो वैभव विस्तार, सार सार कह्यो थने ।।४०।।

हे परन्तप ! म्हारी ऊँची ऊँची महिमा रो ही पार नी आवे जदी सब तो कूँकर के'वाय शके? ने यो जो म्हें कियो है वो तो ओळखावा रे वास्ते थोड़ाक नाम ले लीधा है, अणी शूँ थूँ ईं रो अठोठो बाँध शकेगा के यूँ विस्तार करे तो कतरोक वदे ।।४०।।

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ।।४१।।

जो जो प्रताप शोभा ह्वे, दीखे जो जो वड़ा पणो ।
वीं वीं ने थूँ हुवो जाण, म्हारा ही तेज अंश शूँ ।।४१।।

अवे म्हारा वैभव ने ओळखवा री एक शूधी कूँची वताऊँ हूँ, के ज्यो ज्यो थने वत्ताई वाळी वात दीखे, शोभा सहित दीखे, ने वदी थकी दीखे, वणी वणी ने थूँ म्हारा तेज रा अंश शूँ व्ही थकी हीज जाण लीजे, म्हारा तेज रो अंश वीं में देख लियाँ कर ।।४१।।

अथवा वहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।।४२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिपत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे "विभूति योगो" नाम दशमोऽध्यायः ।।१०।।

अथवा यूँ नरो जाण, थने है करणो कई ।
अनन्त जग यो फेल्यो, म्हारा छोटाक अंश में ।।४३।।

ॐ तत्सत् इति श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्री कृष्ण अर्जुन संवाद में "विभूतियोग" नाम दशमो अध्याय समाप्त व्हियो ।।१०।।

अथवा हे अर्जुण, म्हारा मित्र ! थने अतरो ही परिश्रम करवा री कई आवश्यकता है, यो तो फेर भी विस्तार हीज रियो है, ने नरोई है। म्हूँ तो थने शूधी शूँ शूधी ने आछी शूँ आछी वात वतावणो चाऊँ हूँ। ई शूँ थूँ तो या निज वात हीज पकड़ले के यो जो थने जणावे अणी आखा ही संसार ने माँय वारणे वीटोळ ने म्हारा एक छोटाक अंग में म्हें हीज धारण कर राख्यो है, ने म्हूँ तो थिर हीज हूँ ।।४२।।

ॐ वो साँचो यूँ भगवान् री भाषी थकी उपनिषद् ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुण रा संवाद में "विभूतियोग" नाम रो दशमो अध्याय पूरो व्हियो ।।१०।।

ॐ

एकादशोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच ।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥

ॐ इग्यारमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण कही ।

कृपा कर कह्यो श्रेष्ठ, छुप्यो अध्यात्म ज्ञान ज्यो ।
अणी ने शुण यो म्हारो, भ्रम भाग गयो अबे ॥१॥

ॐ इग्यारमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण अर्ज कीधी, के जी ने अध्यात्मज्ञान के' है ने, जो घणो गुप्त ज्ञान है, जणी शूँ वत्तो कोई नी है, वो ही म्हारे भला रे वास्ते आप ई वचन किया जणा में हुकम कीधो, ने अणी शूँ म्हारो अनन्त जुगाँ रो अज्ञान वात री वात में कठी रो कठी परो गियो । म्हारो यो अज्ञान आप शिवाय कूण मिटाय शके है ॥१॥

भवाप्ययौ हि भूतानां, श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष, महात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

शुणी संसार सारा री, नाश उत्पत्ति आप शूँ ।
अखूट महिमा भी वा, शुणी विस्तार शूँ अठे ॥२॥

हे कमळ री पाँखड़ी जश्या नेत्रवाळा भगवान् ! म्हने या खवर

नी ही, के अतरा ई पदार्थ कणीं शूँ वणे, ने कणी शूँ मटे। अवे या विस्तार शूँ शुण लीधी, के यो काम तो आप शूँ हीज व्हे रियो है और या महिमा आप री सदा अखण्ड है, ई ने म्हें आप शूँ समझ लीधी ॥२॥

> एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानं परमेश्वरम् ।
> द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥

> आप रे वासते आप, जो कहो सो सही सवी ।
> अश्यो म्हूँ देखणो चावूं, आप रो रूप माधव ॥३॥

हे परमेश्वर! आप रे वास्ते आप ज्यो हुकम की धो, वी में रत्ती भी कशर नी, वास्तव में आप अश्या हीज हो, जश्या आप हुकम कर रिया हो। अणी में बिलकुल सन्देह जशी बात ही नी री' है, पण[१] तो भी, हे पुरुषोत्तम! आप रा अश्या ईश्वर रूप रा दर्शणाँ री म्हारी इच्छा है। ई में सन्देह है, या बात नी है, पण अणी में विश्वास व्हे गियो, जीशूँ या इच्छा व्ही है ॥३॥

> मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
> योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

> देखावा जोग जो जाणो, आप रो रूप वो म्हने ।
> तो योगीश्वर देखावो, आप रूप अखण्ड ने ॥४॥

परन्तु हे प्रभु! म्हारा में वणी रूप ने देखवा री योग्यता[२] आपने दीखती व्हे, तो हे योगेश्वर! आप रा वणी अविनाशी शरूप री भी झाँकी कराय दो। आप रा अश्या रूप ने आप हीज वताय शको हो ॥४॥

१—स्वयं भगवान हुकम कीधो-आत्म साक्षी सब शूँ वत्तो है, आप्तवाक्य ई रो हो नाम है, "विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धिनी" योग सूत्र पा १ सू० ३५ रा भाष्य में लिखी है, के दृढ़तारे वास्ते कोई विशेष प्रत्यक्ष करणो आवश्यक है, यो घटे देखणो चावे ॥

२—आप तो अश्या हीज हो, पण अवे अश्या रूप रा दर्शण नी व्हे शके, तो म्हने म्हाराज अयोग्यता मानणी चावे ॥

श्री भगवानुवाच ।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

श्री भगवान् आज्ञा कीधी ।

हजाराँ शेंकड़ाँ रूप, म्हारा ई देख अर्जुण ।
अनेकाँ रंग रूपाँ रा, अनोखा भाँत भाँत रा ॥५॥

श्री भगवान् हुकम कीधो, के हे पार्थ! म्हारा शेंकड़ाँ रूप भलेई थूँ देखे नी, थारे शूँ कई छुपावणो है, यो तो थारे जश्या रे वास्ते हीज हैं। ई म्हारा रूप अलौकिक है, तरे' तरे' रा घाट रा, तरे' तरे रा है। (एक शूँ एक नी मले है।) ॥५॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥

अश्विनी पुत्र ई रुद्र, वसू पवन सूर्य ई ।
पेली जी थें नहीं देख्या, अचंभा देख आज वी ॥६॥

आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विकुनीमार, मरुत तथा पे'ली देख्या ही नी अश्या, हे भारत! म्हारा नरा ही शरूप देख ले ॥६॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

म्हारी ई देहरा एक, अंश में देख थूँ सबी ।
और भी देखणो व्हे शो, देख आज अठेज ही ॥७॥

आखो ही चराचर जगत् आज थूँ अणीज जगाँ[१] बेठो बेठो देख ले। क्यूँ के यो अठे म्हारे में हीज विस्तार शूँ रे' रियो है, अणी शिवाय जो कई भी थारे देखवा री मुरजी व्हे, वो सब ठीक तरे' शूँ, हे गुडाकेश!

१—अश्यो एक हीज जगा आखो जगत् देख लेवा रो मोको नी तो कीं ने पे'ली मल्यो, ने नी जो कीं ने ही अबे मलणो है, क्यूँ के अश्यो तो एक म्हूं हीज हूँ; और (दूजो) म्हे ने मले ॥

म्हारा शरीर में देख ले। क्यूँ के, अठा शिवाय यो और कठे ही नी है ॥७॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव[1] स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

ईं थारी आँख शूँ ही तो, शकेगा देख नी म्हने।
अनोखी आँख दूँ जीं शूँ, देख यो योग वैभव ॥८॥

अणा हीज थारी आँखाँ शूँ तो यूँ म्हने थूँ कदी नी देख शकेगा अणी वास्ते थोड़ी देर थारी आँखाँ म्हने सोंप दे, अथवा म्हारी अलौकिक आँखाँ थने दे दूँ, सो म्हारी आँखाँ शूँ ही म्हारो योग रो ऐश्वर्य (महिमा) देख ॥८॥

संजय उवाच।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय, परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

संजय कही।

यूँ कहे ने जदी राजा, जोगीश्वर वड़ा हरी।
वतायो आप रो रूप, परमेश्वर पार्थ ने ॥९॥

संजय कियो, के हे राजा! यूँ के'ने महा जोगेश्वर भगवान् (हरि) वणीज वगत वणी ने आपणा अलौकिक नेत्र दे दीधा, ईं में देर ही नी लागी, ने देर लागे ही कीं री। असल में तो पेली ही अर्जुण तो वणा रो हीज हो, खाली वणा रे चा'वा री देर व्ही ने वतावा री देर नी व्ही। अवे तो जठी देखे जठी भगवान् रो हीज रूप दीखवा लाग गियो।

१—"अनेनैव" में हीज विश्वरूप दर्शन रो रहस्य (कूंची) है, अर्थात् यूँ थारी जणी नजर शूँ देखे है, वणी शूँ तो दीख ही नी शके, या तो उतरी थकी नजर है। जो शूँ म्हारी शून्यता रहित नजर शूँ देख (के'वे है के लैले ने मजनू की नजर शूं देखो) नजर रो हीज फुल भेद है ॥

यो ईश्वर[1] रो रूप अणी ऊली शमझ में नी है। भगवान् अर्जुण ने यूँ आपणो परमेश्वर रूप बतायो ॥९॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

अनेकाँ मुख आँखाँ रो, अनोखा दरशाव रो ।
गहणा भी अनोखा ही, उगाम्या शस्त्र भी अश्या ॥१०॥

अणी रूप में भगवान् रा अनेक मुख, अनेक नेत्र, अनेक आकार, अनेक गे'णा और अनेक आवध उगराम राख्या थका दर्शण व्हिया। पण ई सब अबार दीखे ज्यूँ नी है। ई तो ईं शूँ अनोखा, अलौकिक, ने अचम्भो व्हे जश्या है ॥१०॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

अनोखा कपड़ा सारा, सुगंधी फूल चंदण ।
अनंत सब ही आड़ी, अचंभा रीज खान वो ॥११॥

भगवान् रे धारण री माळा, पोशाक, ने शरीर रे सुगंध रो चंदण भी अलौकिक हीज धारण हा। ई तो समझवा रे वास्ते के'णा पड़े। दूज्यूँ अर्जुण ने दर्शन व्हियो वणा भगवान् रो तो अन्त हद ही नी ही, ने सब ठकाणे ही अलौकिक हो। अबे कई केवाँ? सब अचम्भो ई अचम्भो[2] हो! अणी अक्कल रो तो वठे काम ही नी; या तो वात ही और व्हेगी ॥११॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य, भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सास्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

हजाराँ सूर्य जो ऊगे, साथे ही आशमान में ।
तो भी अणी महात्मा रे, उजाळा रे समान नी ॥१२॥

१—जगत् रूप ही परमेश्वर रो रूप है, केवल शमझ रो फेर है, ने अणीज (शमझ) में बंध-मोक्ष है ।

२—"श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्" योग दर्शन (पा० १ सू० ४९)

जो आकाश में हजाराँ सूरज रो उजाळो एक साथे फैले, तो अणी ईश्वर रा प्रकाश री होड़ कर शके। पण तो भी नी कर शके। क्यूँ के, ईश्वर तो फेर महान् आत्मा है ॥१२॥

> तत्रैकस्थं जगत् कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
> अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

> वठे वीं देह रे मांय, तिलसी ठोड़ मांय ही।
> मायग्यो सब संसार, विसतार अपार शूँ ॥१३॥

वठे वणाँ ईश्वर रा प्रकाश[1] में एक जगाँ आखो जगत् अनेक प्रकार शूँ, न्यारो न्यारो विस्तार सहित साफ साफ निस्सन्देह अर्जुण वणी वगत देखवा लागो। देवताँ रा ही देवता भगवान् रा शरीर में कठी ने ही नामेक जगाँ में यूँ अपार संसार अर्जुण देख दंग व्हे गियो ॥१३॥

> ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
> प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

> रूँ रूँ हरख शूँ छायो, अचम्भा मांय आय ने।
> नमावा कृष्ण ने शीश, हात जोड़्याँ कह्यो वणी ॥१४॥

अबे तो अर्जुण अचम्भा शूँ चोमेर भराय गियो, वणी अचम्भा रा काम करवा वाळा खुद धनंजय रा अचम्भा शूँ रूँ रूँ ऊभा व्हे गिया, वणी हाथ जोड़्याँ थकाँ माथो नमाय, (पगाँ लागवाने) कृष्ण मित्र है, या वात तो वीरा मन शूँ निकळगी, ने ई देवाँ रा ही देव ईश्वर है, यूँ जाण, यूँ के'वा लागो, केवा कइ लागो, ई तो सब काम वणी शूँ व्हेवा लाग गिया ॥१४॥

अर्जुन उवाच।

> पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
> ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

1—ज्यूँ कोई वस्तु अंधारा में और ही तरे'री दीखे, पण ज्यूँ ज्यूँ उजाळो व्हे तो जावे, ज्यूँ ज्यूँ वा वत्तो स्पष्ट, साफ स.फ, ने व्हे जशी दीखवा लाग जावे। यूँ होज यो संसार प्रभु (महान् आतमा) रा प्रकाश में स्पष्ट, ने यथार्थ दीख्यो ॥

अर्जुण कही ।

दीखे म्हने माँय शरीर थारा, टोळा नरी भाँत चराचराँ रा ।
ब्रह्मा महादेव समाव धारी, साधू अनोखा सुर साँप भारी ॥१५॥

अर्जुण के'वे के म्हूँ देखूँ हूँ, हे देव! आपरी देह में सब देवता एक आप महादेव में है । सब तरे' रा छोटा म्होटा जीव जन्त भी है । जाणे जीवाँ री नद्याँ कई समुद्र हीज भराय गियो, ने एक भी बाकी नी रियो, सामा अनन्त है, वत्ता हैं । संसार रा कर्त्ता समर्थ कमळ में विराजवा वाळा ब्रह्माजी भी कमळ सेती अणी में आय गिया, ने सब ऋषि, अनोखा उरग भी आप में हीज म्हूँ देख रियो हूँ' चोड़े ॥१५॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं, पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं, पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥१६॥

अनेक बाहू मुख पेट आँखां, दीखे सबी ठोड़ सरूप थाँका ।
नी अन्त आदी वच है कठे ही, जगत् स्वरूपी जगदीश थें हो ॥१६॥

हे विश्वरूप, हे विश्व रा ईश्वर! आप रो आदि, अन्त, ने मध्य तो म्हने नीज दीख्यो है, और तो सब आप में दीख रिया है । अनेक भुजा, पेट, मुख आँखाँ वाळा आप दीखो हो, चोमेर दीखो हो, अपार दीखो हो, दीखो हो, आप हीज दीखो हो ॥१६॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणञ्च तेजो राशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

हाताँ गदा चक्र धर्‌याँ किरीटी, थाकूँ अणी मायँ चलाय दीठी ।
थें तेज री खान जहान छाया, लायाँ तथा सूर्य लखे लजाया ॥१७॥

माथा पे किरीट, हाताँ में गदा, ने चक्र धारण कीधाँ थका, तेजरा ढगला, जाणे शळगती थकी वासदी वा झग-झगता सूर्य जश्या प्रकाश वाळा, घणी मुशकल शूँ दीखवा वाळा, ने या वुद्धि भी नी पूगे अश्या, आपने म्हूँ चोमेर प्रकाश रूप देख रियो हूँ ॥१७॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

थें जाणवा जोग विनाश हीणा, थें हीज हो ईं जग रा खजीणा ।
थें धर्म रा हो नित रा रुखाळा, जच्या म्हने आप अनादवाळा ॥१८॥

अविनाशी ने जाणवा जश्या तो आप हीज हो, ने अणी आखा जगत् रा भण्डार ने सवाँ शूँ न्यारा, ने एक शरीखा रे'वा वाळा, नी मटवावाळा[1], धर्म रा रखवाळा, ठेठ रा पुरुष कें' वे जी, म्हारी समझ में तो आप हीज हो ॥१८॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं, स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥१९॥

महाबली स्यान अनंतता का, अनंत बाहु शशि सूर्य आँखाँ ।
दीखो मुखाँ मूँ अगनी धकाता, ई तेज शूँ लोक सभी थकाता ॥१९॥

आप रो आद, वच, ने अन्त तो है ही नी, जदी दीखे कठूँ, पण सवाँ रे आदि, वच, ने अन्त आप ही हो । आप री शक्ति रो भी पार नी, आप रा हाताँ रो भी पार नी, यूँ चन्द्र, ने सूर्य नेत्र है, झग झगता अगनी रा मुख है, ने अणी आखा विश्व ने तपाय रियो है सो आप रो तेज है ॥१९॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥२०॥

यो ऊंच नीचो सब व्याप लीधो, थां ही दिशा छाय निवास कीधो ।
देखे अनोखा विकराळ थांने, शाता कठे है जग बापड़ा ने ॥२०॥

ई आप एकला ही ऊँचा शूँ नीचा, ने वच, ने सब दिशा में व्याप रिया हो । हे अश्या महा वड़ा शरीर वाळा! यो आप रो अश्यो अनोखो अद्‌भुत ने भयावणो रूप देख ने म्हूँ एकलो कई आखी त्रिलोकी घबरायगी है ॥२०॥

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्ध संघाः, स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥

१—नी मटवा वाळो धर्म, प्रकृति ने पुरुष, ई आप शूँ हीज है, यो नाय ।

ई आप में देव नरा समावे, ई हात जोड़े डरपे मनावे ।
कल्याण के'वे मुनि सिद्ध शारा, वखाण थांरा कर ने हजाराँ ॥२१॥

जणा ने वड़ा वड़ा देवता जाणता हा, वी हीज ई आप में शमाय रिया है, ने सो भी एक दो नी, टोळाँ वँधां रा ठकाणा नी है । कतराक डरशूँ हात जोड़ रिया है, जणाँ ने वड़ा गण ने दूजा हात जोड़्याँ करे है, वी हीज ई है । देवता हीज नी, ई महा ऋषि, ने सिद्धाँ री जमाताँ री जमाताँ, कल्याण व्हो! कल्याण व्हो! यूँ के'ता जावे, ने तरे तरे री खूब आप री महिमा के'के'ने आप ने रिझाय रिया है ॥२१॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्याः, विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा, वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

ई देवता दानव पित्र यक्ष, गंधर्व सिद्धादिक ई प्रतक्ष ।
भारी अचम्भो मन में अणाँ रे, दाँताँ दियाँ आँगळियाँ निहारे ॥२२॥

रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, सव जी अचम्भा शूँ भरया थका वाजे है, वी सव टोळा रा टोळा आपने देख ने अचम्भा में डूब रिया है । ज़दी फेर म्हारी कई चाली? यो तो अचम्भा रो ही बड़ो अचम्भो व्हे जश्यो आप रो रूप है ॥२२॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

वाहू अनेकाँ पग पेट आँखाँ, डाढ़ाँ कराली मुख जाँघ लाखाँ ।
म्होटो अश्यो रूप निहार थाँरो, धूजे हियो लोक समेत म्हारो ॥२३॥

आप रो रूप यो सव शूँ म्होटो, वड़ो भारी है । अणी रा नरा मूँडा, आँखाँ, हात, जाँघा, पग, ने पेट है । हे महावाहू! आप रो सव ही महा है । क्यूँ के, महा मूँडा रे नेत्र भी महा हीज चावे है, ने पेट महा व्हे जदीज महा हाताँ शूँ भरणा पड़े, डाढ़ाँ फेर अणाँ मूँडा में घणी भयंकर है । अणा ने देख ने म्हूँ तो घवराय गियो, म्हूँ ही कई, म्हने तो अणा शूँ नी डरपे जश्यो कोई दीखे ही नी है । अतरा घवराया ज्यूँ म्हूँ भी घवराणो; ई में नवी वात कई व्ही ॥२३॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥

दीखे अणाँ रा रँग रूप लाखां, फाड़े रया हो मुख फेर आँखां ।
म्हारे हिये धूजणियाँ घणी है, शाता अबे धीरजता कणी है ॥२४॥

हे विष्णु! आकाश रे अटके जश्या, दीपूँ दीपूँ करता, तरे तरे रा रंग रा मूँडा फाड़्याँ थकाँ, ने म्होटी म्होटी आँखाँ (ने वी भी धक धकती वाशदी जशी) वाळा, आप रा अणी रूप ने देख ने म्हारो तो जीव घबरावे है । म्हारी वणी धीरज ने तो अबे तो हेरूँ तो भी नी पाय शकूँ हूँ । अबे म्हारो जीव अमूझवा लाग गियो है, अबे शान्ति भी गम गी है, भलाँ आप अश्या हो, या म्हूँ कई जाणूँ ॥२४॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

ई डाढ़वाळा विकराळ ऊँडा, है काळ री ज्वाल समान मूंडा ।
म्हूँ भूल जावूं लख सर्व भान, करो कृपा नाथ कृपानिधान ॥२५॥

हे देवेश! हे जगन्निवास! दया करो! म्हूँ तो भयंकर डाढ़ाँ वाळा प्रलयकाळ री अगनी जश्या अणा आप रा मूँडा ने देख देख[1] ने हीज बीजळवायो व्हे गियो हूँ । नी तो म्हने दिशा री खबर है, नी जो म्हने सुख री खबर है, के सुख कई हो? अटे तो आप री दया[2] हीज पार लगावा वाळी है ॥२५॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

म्हारा वणाँ रा सब फोज फाँटा, राजा सबी ई रण माँय राँटा ।
ई भीष्म द्रोणादिक सूत पुत्र, दीखे म्हने ई धृतराष्ट्र पुत्र ॥२६॥

ई धृतराष्ट्र रा सब बेटा भी, ने फेर वड़ा वड़ा राजाँ री फोजाँ

१—देखताँ ही अश्यो है, जदी पड़्या थकाँ रे कश्यो व्हेगा?
२—जदीज 'प्रसीद' कियो, क्यूं के, खुद ही जो अणी में शमावे, वो अणी सूं कई बेंचाय शकेगा? यो भाव है ॥

ई आप में देव नरा समावे, ई हात जोड़े डरपे मनावे।
कल्याण के'वे मुनि सिद्ध शारा, वखाण थांरा कर ने हजाराँ ॥२१॥

जणा ने बड़ा वड़ा देवता जाणता हा, वी हीज ई आप में शमाय रिया है, ने सो भी एक दो नी, टोळाँ बँधां रा ठकाणा नी है। कतराक डरशूँ हात जोड़ रिया है, जणाँ ने बड़ा गण ने दूजा हात जोड़्याँ करे है, वी हीज ई है। देवता हीज नी, ई महा ऋषि, ने सिद्धाँ री जमाताँ री जमाताँ, कल्याण व्हो! कल्याण व्हो! यूँ के'ता जावे, ने तरे तरे री खूब आप री महिमा के'के'ने आप ने रिझाय रिया है ॥२१॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्याः, विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा, वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

ई देवता दानव पित्र यक्ष, गंधर्व सिद्धादिक ई प्रतक्ष।
भारी अचम्भो मन में अणाँ रे, दाँताँ दियाँ आँगळियाँ निहारे ॥२२॥

रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, सब जो अचम्भा शूँ भरचा थका वाजे है, वी सब टोळा रा टोळा आपने देख ने अचम्भा में डूब रिया है। जदी फेर म्हारी कई चाली? यो तो अचम्भा रो ही बड़ो अचम्भो व्हे जश्यो आप रो रूप है ॥२२॥

रूपं महत्ते वहुवक्त्रनेत्रं महावाहो वहुवाहूरुपादम्।
वहूदरं वहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

बाहू अनेकाँ पग पेट आँखाँ, डाढ़ाँ कराली मुख जाँघ लाखाँ।
म्होटो अश्यो रूप निहार थाँरो, धूजे हियो लोक समेत म्हारो ॥२३॥

आप रो रूप यो सब शूँ म्होटो, बड़ो भारी है। अणी रा नरा मूँडा, आँखाँ, हात, जाँघा, पग, ने पेट है। हे महाबाहू! आप रो सब ही महा है। क्यूँके, महा मूँडा रे नेत्र भी महा हीज चावे है, ने पेट महा व्हे जदीज महा हाताँ शूँ भरणा पड़े, डाढ़ाँ फेर अणाँ मूँडा में घणी भयंकर है। अणा ने देख ने म्हूँ तो घबराय गियो, म्हूँ ही कई, म्हने तो अणा शूँ नी डरपे जश्यो कोई दीखे ही नी है। अतरा घबराया ज्यूँ म्हूँ भी घबराणो; ई में नवी बात कई व्ही ॥२३॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥

दीखे अणाँ रा रँग रूप लाखां, फाड़े रया हो मुख फेर आँखां ।
म्हारे हिये धूजणियाँ घणी है, शाता अने धीरजता कणी है ॥२४॥

हे विष्णु! आकाश रे अटके जश्या, दीपूँ दीपूँ करता, तरे तरे रा रंग रा मूँडा फाड़्याँ थकाँ, ने म्होटी म्होटी आँखाँ (ने वी भी धक धकती वाशदी जशी) वाळा, आप रा अणी रूप ने देख ने म्हारो तो जीव घवरावे है। म्हारी वणी धीरज ने तो अवे तो हेरूँ तो भी नी पाय शकूँ हूँ। अवे म्हारो जीव अमूझवा लाग गियो है, अवे शान्ति भी गम गी है, भलाँ आप अश्या हो, या म्हूँ कई जाणूँ ॥२४॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

ई डाढ़वाळा विकराळ ऊँडा, है काळ री ज्वाल समान मूँडा ।
म्हूँ भूल्या जावूँ लख सर्व भान, करो कृपा नाथ कृपानिवान ॥२५॥

हे देवेश! हे जगन्निवास! दया करो! म्हूँ तो भयंकर डाढ़ाँ वाळा प्रलयकाळ री अगनी जश्या अणा आप रा मूँडा ने देख देख[१] ने हीज वीजळवायो व्हे गियो हूँ। नहिं तो म्हने दिशा री खवर है, नी जो म्हने सुख री खवर है, के सुख कई होवे? अटे तो आप री दया[२] हीज पार लगावा वाळी है ॥२५॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ, सहास्मदीयैरपियोधमुख्यैः ॥२६॥

म्हारा वणाँ रा सव फोज फाँटा, राजा सिवारे ई रण माँय राँटा ।
ई भीष्म द्रोणादिक सूत पुत्र, दीखे म्हने ई धृतराष्ट्र पुत्र ॥२६॥

ई धृतराष्ट्र रा सव वेटा भी, ने फेर वड़ा वड़ा राजाँ री फौजाँ

१—देखताँ ही अश्यो है, जदी पड़्या थकाँ रे कश्यो व्हेगा?
२—नदीज 'प्रसीद' कियो, क्यूँ के, खुद ही जो अणी में समावे, वी अणी सूँ कई वेंचाय शकेगा? यो भाव है ॥

सेती राजा ने,ओहो! और वड़ा कई,भीष्म पितामह, ने ई गुरु द्रोण, ई तो वड़ा वड़ा वीराँ री नद्यां री नद्यां, यो सूतपुत्र कर्ण, अणी री भी या हीज दशा व्हे री है,ने यो लो! म्हाणाँ वड़ा वड़ा शूरमाँ भी अणा रो हीज साथ कर लीधो, जदी दूजा री तो कोणी ही कई! ई तो सब ही आप में हीज स्वाहा वोलाय गिया ॥२६॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति, दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु, संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥२७॥

दोड़्या हुवा ई मुख में धशे है, केताक दाँताँ वच ही फंशे है ।
ई आप तो चाव रिया अणा ने, भूखो भयंकार जथा चणाने ॥२७॥

फेर अचम्भा में अचम्भो यो व्हे रियो है, के ई आ'गता आ'गता जाणे वापोती जावती व्हे, ज्यूँ अश्या भयंकर विकराळ,ने वना मुलायजा रा आप रा मूँडा, जणा री डाढ़ां फेर भय में भी भयंकर है, [illegible] आ'गता आ'गता क्यूँ घुश रिया है! ! कतरा तो दाँ[illegible] [illegible] उळझ रिया है! कतरा रा ही माथा जाणे आप री वाग[illegible] शूँ चूर्ण व्हे रिया है! यूँ म्हने ई साफ चौड़े धाड़े दीख रिया है ॥२७॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥

सबी नद्याँ रा जळ जोरवाळा, समुद्र में जाय धशे उताळा ।
यूँ ई धशे है मुख आप रा में, जी वीर नामीज घणा वरा में ॥२८॥

जणी चाल शूँ चौमाशा में नदियाँ, ने वाळा रो पाणी उछळतो दावा तोड़तो, वणा जोर स्यूँ दोड़तो थको समुद्र री कानीज धाम धूम करतो थको सब वेग शूँ चल्यो जाय है, यूँ ही ई संसार माँय ने सबाँ में वड़ा वड़ा जोधा दौड़ दौड़ ने आपरा शळगता थका मूँडा में छन्न व्हे रिया है ॥२८॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा, विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

ज्यूँ जागती आग पड़े पतंग्या, विना विचार्‌याँ निज लोभ रंग्या।
त्यूँ लोक शारा मुख में शमावे, दौड़्या थका ई अति आगता व्हे ॥२९॥

ज्यूँ शळगता थका वड़ा दीवा में पतंग्या घणा जोर शूँ दौड़ ने मरवा रे वास्ते हीज घुशे है, वणाँ रो दौड़णो (वेग) मरवा वास्ते है ; यूँ हीज सब लोग भी घणा वेग शूँ आप रा मुखाँ में नाश रे वास्ते दौड़ दौड़ ने धश रिया है ॥२९॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥३०॥

खाणो सवां ने सब चाट जाणो, अणा मुखां रो न कई ठिकाणो।
ई तेज शूँ व्याप गया जगां में, याँ शूँ वचे जाय कणी जगाँ में ॥३०॥

हे विष्णु भगवान्! ई तो शगत ही आप रा मूँडा में शवळा चौमेर शूँ आ'गता आ'गता धश रिया है! ने जावे तो जावे ही कठे ? और जगा ही नी दीखे है। आप अतरा अनन्त लोकाँ ने निगल ने फेर ठ हीज चाट रिया हो! आखा रा आखा लोकाँ ने एक साथे ही अणा ळता[1] मूँडाँ शूँ अरोग रिया हो! और ज्यूँ ज्यूँ आहुति शूँ लाय री नाईं आप री वत्ती वत्ती भयंकरता व्हेती जाय है, ने सब तप रिया है ॥३०॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं, नहि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

कहो म्हने आप अश्या कई हो, कृपा करो नाथ सबा सही हो।
नमूँ अनादी अणजाण थाँरो, अठे कहो काम पधारवा रो ॥३१॥

हे देववर! अबे तो आप हीज कृपा करो, तो वचाव व्हे शके है। आप अश्या कूण हो? सो म्हने हुकम करो। क्यूँ के, अश्यो रूप भयंकर तो आज हीज नजर आयो है। आप ने म्हारा नमस्कार वार वार है। कृपा रो। हे सवाँ शूँ अनादी ने सवाँ रा आदि! आप ने म्हूँ जाणणो चावूँ हूँ। क्यूँ के, अश्यो यो धाण क्यूँ घालणो शरू कीधो, अणी रो म्हने मतलब नी लाधो ॥३१॥

१—औरां रे तो पेट री अग्नि में पचे ने आप रे तो मूँडा में हीज अग्नि है।

श्री भगवानुवाच ।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।।३२।।

श्री भगवान् आज्ञा कीधी ।

म्हूँ काळ रूपी सब ठोड़ छायो, खावा अठे भी अब जाण आयो ।
थारे वना भी सब खाय जावूँ, तो भी थने म्हूँ अड़मो वणावूँ ।।३२।।

भगवान् हुकम कीधो, के थें कियो, के विश्व रूप देखावो, सो वो रूप थने यो देखायो, जणी ने काळ[1] के'वे, यो वो हीज हूँ । लोकाँ रो क्षय करवा वाळो वो काळ हीज म्हूँ खूब वध्यो हूँ । अठे अवार लोकाँ ने शमेटवा री म्हारी धुन व्हे री है । अबें थूँ ही देख ले, कई ई थारा मार्या मरे, ने थारा राख्या रे'वे ज्यूँ है ? थूँ भले ही नी व्हे तो भी ज़तरा ई लड़वा वाळा दो ही फौजाँ में दीखे है, ई तो मटेगा हीज, या तो म्हारी दिन चर्या है, ईं ने कूण मेटे ।।३२।।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।।३३।।

ई शूँ अबे ऊठ निमित्त व्हे ने, ले राज रा भोग अठे लड़े ने ।
मारया थका ई सब लोग म्हारा, थारा वजेगा जश रा नगारा ।।३३।।

अणी वास्ते थूँ ऊठ ने यो पड़्यो जश ले ले, वेरियाँ ने जीत ने वड़ो वध्यो थको राज भोग । हे सव्यवसाची ! अणा ने तो पेली ही म्हें हीज मार राख्या है, थूँ भूल ने भी यूँ शमझे मती, (मन में आवा दे मती) के म्हें मार्या, ने म्हूँ जीत्यो । थूँ निमित्त मात्र व्हे जा । क्यूँ के म्हारो काम म्हूँ यूँ हीज दूसरा ने निमित्त[2] करने करयाँ करूँ हूँ, सो थूँ देख ही रियो है । यो तो म्हारो ठेठ रो शुभाव है ।।३३।।

१—योगी काळ ने नी माने, पण पदार्थ री तवदीली ने हीज काळ के'वे है । वा ही तवदीली अर्जुन ने भगवान देखाई, ने अणी शिवाय और विश्व कई नी है, यो ही रूप है ।

२—ज्यूँ सुग्रीव रो निमित्त कर वाली पे आळखे तीर वा'यो, आळखे गोळी वा'वा रो शुभाव है ।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

जयद्रथ द्रोण नदीकुमार, कर्णादि जी वीर खरा जुँझार ।
मार्या हुवा ने अब फेर मार, थूँ युद्ध जीते, मत शोच धार ॥३४॥

थूँ तो लड़्याँ जा, यूँ घबरावे मती ई तो म्हारा मार्‍या थका ने हीज थारे मारणा हे । ने अणी में थूँ थारा दुशमणाँ ने जीत जायगा, पण या तो जेली ही म्हें कर राखी है । दूज्यूँ द्रोण, ने भीष्म, ने जयद्रथ, ने कर्ण, ने भूरि श्रवा, भगदत्त आदि ने कोई जीत शके जश्यो त्रिलोकी में थने दीखे है, कई ? पण अश्या तो अनन्त अणा मुखाँ में लापते व्हे गिया, ने व्हे रिया, ने व्हेता रे'वेगा ॥३४॥

सञ्जय उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

संजय कही ।

छूटी शुणे यूँ तन में कँपारी, वोली हुई कंठ कबूतराँ री ।
वो हात जोड़े झुक ने जुहारे, वड़ी विनै यूँ डरतो उचारे ॥३५॥

संजय कियो, के ई वचन भगवान् रा शुण ने अर्जुण धूजवा लाग गियो । वो घड़ी घड़ी रो भगवान् रे पगाँ पड़वा लागो, ने हात जोड़वा लागो, ने गळो बैठ गियो, डरपतो-डरपतो नरोई झुक ने फेर यूँ अरज कीदी । झुकवा शिवाय वी ने और उपाय नी दीख्यो, जीशूँ वो झुक्याँ ही गियो ॥३५॥

अर्जुन उवाच ।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥३६॥

अर्जुण कही ।

जगत् सुखी व्हे शुण नाम थाँराँ, शुण्याँ टके नी पग राक्षसां रा ।
करे सवी सिद्ध मुनी प्रणाम, थाँरो अश्यो क्यूँ नहिं होय नाम ।।३६।।

अर्जुण अर्ज कीधी, के हे हृषीकेश ! आप रो नाम लेवा शूँ आखो ही जगत् वड़ो सुखी व्हे है, हरखे है, ने वड़ो प्रेम भी करतो जाय है, अर्थात् अणीज में लागो रियाँ करे है, ने राक्षस आप रा जश शूँ डरपे है, ने च्यार ही कानी भाग जावे है । और शघळा ही सिद्धाँ री जमाताँ नमस्कार करे है, सो यूँ व्हेणो ही चावे । क्यूँ के, आप अश्या ही हो । यो जतरो व्हे, वतरो ही आप रो प्रभाव देखताँ ओछो ही है ।।३६।।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ।।३७।।

अश्या हि हो नाथ नमे नहीं क्यूँ, व्हिया विधाता पण आप ही शूँ ।
अनन्त देवेश सवी जगाँ हो, थें झूँठ शाचा सब शूँ पराँ हो ।।३७।।

हे महात्मा ! आपने क्यूँ नी नमे, सबाँ ने नमणो हीज चावे । बड़ा ने नमे जदी आप शूँ बड़ो कूण है । आप तो ब्रह्माजी ने भी पे'ली पे'ल वणावा वाळा हो । हे देवेश ! आप रो तो आदि-अन्त है ही नी । हे जगन्निवास ! साँच ने झूँठ शूँ भी न्यारा जो अविनाशी कोई है, सो वी आप हीज हो ।।३७।।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ।।३८।।

थें आदि हो पूरुष थें पुराणा, थें हीज हो ईं जग रा खजाणा ।
थें जाणवो जाणणहार थें ही, परे सबां शूँ सब रूप थें ही ।।३८।।

सवाँ रा आदि देवता, पुराणा पुरुष, और अणी संसार रा अखूट भण्डार भी आप हीज हो । सब जाणवा वाळा आप हो, ने जी ने जाणे सो भी आप हो, ने अणाँ सवा शूँ परे प्रकाश है, वो भी आप हो । हे अनन्तरूप ! आप हीज आखा विश्व में व्याप रिया हो ।।३८।।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥

थें वायु ब्रह्मा शशि काळ आदी, पिता पिता रा सब हो अनादी।
नमो नमो नाय नमो हजाराँ, नमो नमो फेर नमो अपाराँ ॥३९॥

वायरो, यम, अग्नि, जळदेवता, चन्द्रमा, दक्ष आदि प्रजापति और सबाँ रा पड़ दादा ब्रह्माजी भी आप हीज हो, अबे आप रे शिवाय व्हे ही कई शके। अश्या अनन्त रूप आप ने हजाराँ दाण कर कर ने नमस्कार व्हो! फेर भी वारं वार हजाराँ दाण आप ने नमस्कार[1] पूगो! आप ने नमस्कार है! अणीं शिवाय और कई करूँ ॥३९॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यमितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

आगे नमूँ फे'र नमूँ पछाड़ी, नमूँ सबी थें अब सर्व आड़ी।
महाबळी शक्ति अपार थाँरी, हो सर्व में सर्व सरूप धारी ॥४०॥

आगे आप हो, आगे भी नमस्कार है! पाछे भी आप हो, आप ने नमस्कार है! चौमेर आप हो, चौमेर आप ने नमस्कार है! सबी आप हो, अबे कई करणी आवे? हे सर्व! आप हीं आप हो हीज। आप सर्व हो, सब ने पूरा करो हो, सब ने फैलावो हो, आप रा बळरो ने तेज रो पार नी है ॥४०॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

म्हें जो कियो नाय अजाण माँय, जादू अरे कृष्ण सखा दबाय।
वोको अजाण्यो महिमा अणी रो, गोठ्यो बण्यो ज्यो जग रा धणी रो ॥४१॥

आप ने गोठ्या समझ ने, मूँडे चढ़ ने दबाय दबाय ने, हे कृष्ण! हे यादव! ए गोठ्या! यूँ के'के' ने रो'ळाँ करतो हो सो म्हूँ आप री अशी महिमा है, या नी जाणतो हो। दूज्यूँ भलाँ त्रिलोकी नाथ नूँ यूँ

१—नमस्कार नूँ पूगावा रो भाव है, अर्थात् प्रभु में वारं वार चनको लगावणो, तन्मय व्हेणो, अहङ्कार वीं में नी व्हेणो।

कूँकर बोलतो ? यो म्हूँ बोफाई शूँ, प्रेम शूँ, अपराधी व्हियो । अबे आप माफ करो ।।४१।।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ।।४२।।

म्हें रो'ळ में जो अपमान कीधा, बेठयाँ उठयाँ सोवत खात पीधाँ ।
एकंत में वा सब आप आगे, वां री क्षमा यो अणजाण माँगे ।।४२।।

हर कणी वगत रो'ळ करवा रे वास्ते आप रो अनादर कार्यां करतो हो, हरताँ-फरताँ, शूवताँ-बैठताँ, खावताँ—पीवताँ, जणी वगत देखो वणी वगत आप शूँ मशकर्यां कर्यां करतो हो, यूँ हीज आप रे पूठ पछाड़ी भी आप री रोळाँ करतो हो, ने आप रे मूँडा आगे भी रो'ळाँ करतो हो, वी आप शूँ कशी छानी है ? अबे वणा ने आप क्षमा कर दो ! हे अच्युत ! म्हूँ आप नखा शूँ या हीज मागूँ हूँ, ने आप सब समर्थ हो आप रो पार नी है ।।४२।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिम प्रभावः ।।४३।।

हो आप ही बाप चराचराँ रा, हो पूजवा जोग बड़ा बड़ाँ रा ।
नी आपशो और बड़ो कठे तो, है बापड़ा सर्व बड़ा अठे तो ।।४३।।

आप चराचर संसार रा पिता हो, अणी जगत् रा बड़ा शूँ भी बड़ा, ने गुरु रा भी गुरु हो । आप शरीखो ही कोई नी है, तो आप शूँ बत्तो तो दूशरो कूण व्हे शके ? सब आप शूँ नीचा तो है ही ज । या वात अठे हीज नी है, पण म्हने तो तीन ही लोक में आप शरीखा नी दीखे हैं । हे अप्रतिम प्रभाव ! वना जोड़ी रा भगवान् ।।४३।।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।।४४।।

ई शूँ अबे म्हूँ झुक ने मनावूँ, क्षमा सबी ई अपराध पावूँ ।
ज्यूँ पुत्र रा बाप सखा सखाँ रा, म्हारा खमो ज्यूँ नर नारियाँ रा ।।४४।।

हे देव ! अणी कशूर ने आप हीज माफ कर शको हो, ओछला कई माफ कर शके ? अणी वास्ते शरीर ओशान शूँ, मर्यादा शूँ दाव राख ने, अबे झुक ने, पेली रीं वना मर्यादा रा वर्तावाँ री क्षमा चावूँ हूँ। म्हूँ कई आदर आप रो कर शकूँ? आप स्वयं ही ईश्वर हो, ने आखा ही संसार रा भी आदर करे वो भी अठे कई नी है, म्हारे शूँ तो कई भी नी व्हे शके। अबे तो ज्यूँ बाप बेटा रा, मित्र मित्र रा, ने खावंद लुगाई रा कशूर भूल, मूरख पणा ने खमे है, ज्यूँ ही आप ने कशूर खमणो चावे ॥४४॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा, भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

सुखी व्हियो रूप अनूप देख, भयावणा देख डरचो विशेख ।
वीं रूप री लाग रही पियास, करो कृपा नाथ जगन्निवास ॥४५॥

हे देव[1]! हे देवेश ! हे जगन्निवास! पे'ली कदी नीं देख्यो जश्यो यो रूप देख ने म्हूँ राजी व्हियो के आज वड़ी कृपा व्ही। पण, अणी री विकराळता शूँ म्हूँ डरप गियो, ने म्हारो जीव घबरावा लाग गियो। अणीं शूँ अबे म्हने पेली रा वी' हीज रूप रा दर्शण करावो, अबे कृपा करो ॥४५॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

गदा तथा चक्र किरीट धारचाँ, व्हूँगा सुखी रूप अश्यो निहारचाँ ।
हजार बाहू जग रा सरूप, पाछा बणो चार भुजा अनूप ॥४६॥

जणी में मस्तक पे किरीट, ने हाताँ में गदा, चक्र धारण रे' है, वश्या हीज आप रा रूप रा दर्शण करणो चाऊँ हूँ। और तरे' रा नी, वश्या रा हीज। हे सहस्र बाहू! वीं चतुर्भुज रूप रा दर्शण री अरज है।

१—देव के'ने फेर डरप ने देवेश के'वे है, पाछो जगन्निवास। व्याकुल व्हे ने नवा नवा नाम लेतो जाय।

हे विश्वमूर्ति ! वश्या[१] रा वश्या पाछा वण जावो ।।४६।।

श्री भगवानुवाच ।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ।।४७।।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

राजी व्हियो म्हूँ जद यो वतायो, प्रभाव यूँ तेज अपार छायो ।
थारे वना यो नहिं और पायो, प्यारो घणो रूप थने वतायो ।।४७।।

श्री भगवान् हुकम कीधो के हे अर्जुण! यो विश्वरूप तेज रा आकार रो, अपार, ने सबाँ रे पे' ली रो, जणी ने पे'ली थारे[२] शिवाय कणी देख्यो ही नी हो, अश्यो म्हारो प्यारो रूप, सब शूँ परम म्हारा योग रा ऐश्वर्य शूँ थने वतायो । यूँ म्हूँ थारे पे राजी[३] व्हियो जीशूँ वतायो । थूँ यूँ जाणे मती के बेराजी व्हिया जी शूँ अश्यो रूप वतायो ।।४७।।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्नदानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुंत्वदन्येन कुरुप्रवीर ।।४८।।

नी वेदवाँच्याँ तप यज्ञ कीधाँ, भण्याँ कियाँ कर्म न दान दीधाँ ।
अठे अश्यो रूप शके विलोक, थारे वनाँ अर्जुण और लोक ।।४८।।

यो तो वेद, यज्ञ, पाठ, दान और भी तरे' तरे रा भारी भारी उपाय, ने तपस्या शूँ भी अणी नर-लोक में शिवाय थारे कोई नी देख

१—घड़ी घड़ी रा वश्या के'णो, ने सहस्त्र बाहू, ने विश्वमूर्ति के वा रो यो भाव है के आप रा तो नराई रूप है, फे'र कजाणा कश्यो रूप वताय दो तो ईं रो कई पार है ? म्हारो प्रेमी कृष्ण रूप अणा में कठीने ही गमाय नी जावे; यो भाव है ।

२—'थारे शिवाय' शूँ भक्ताँ शूँ अभिप्राय है, भगवान् में भाव व्हे ।

३—अर्जुण जाणी के घणी रोळाँ ने अपमान कीधा जणी शूँ बेराजी व्हे गिया, जींशूँ यो रूप वतायो, अणी वास्ते माफी माँगी । भगवान्, जीं शूँ हुकम करे के म्हूँ तो राजी व्हियो जीं शूँ यो रूप वतायो है ।

शके है। हे कुरुप्रवीर[१]! थूँ ईं ने म्हारी प्रसन्नता शमझ, क्रोध शमझे मती ॥४८॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदं ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

व्हा, व्हा, मती घावर थूँ अमूझ, यो रूप देखे घणघोर गूँझ ।
प्रसन्न व्हे ने भय छोड़ शारो, शुहावणो रूप निहार म्हारो ॥४९॥

थूँ कौरवाँ (कुरुवंशियाँ) में वीर है, जी शूँ थने भय नी व्हेगा, यूँ जाण्यो हो, पण व्हा, अमूझे मती, घवरावे मतीं, यो म्हारो अश्यो घोर रूप देख, भय छोड़ ने, राजी व्हे ने, पाछो वो हीज रूप यो देख ले। वणी में कई फर्क नी पड़्यो है ॥४९॥

संजय उवाच ।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा, स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

संजय कही ।

यूँ बोल ने अर्जुण शूँ अनन्त, बताय यो रूप दियो तुरन्त ।
शुहावणो श्याम सरूप कीवो, डरया थका ने विशवाश लीधो ॥५०॥

संजय कियो, के अर्जुण विश्वरूप शूँ डर गियो, जीं शूँ विश्व रूपी भगवान् विश्वासे तो भी वणी ने धरोज नी आवे। "जदी थूँ के ज्यूँ हीं करूँगा", यूँ अर्जुण ने के'ने आपणो वासुदेव स्वरूप पाछो वणी ने देखाय, शुहावणा वण ने वड़ा रूप शूँ डरप्या थका अणी अर्जुण ने फेर महारूप शूँ सौम्यरूप कर ने विश्वास लीधो ॥५०॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

१—कुरुप्रवीर हैं, जीशूँ देख शकेगा, पण यूँ तो क्रोध जाण डर गियो, विपर्यय व्हे गियो। अणी रूप में प्रायः अनेक विपर्यय व्हियां करे है। सबे यूँ अणी विपर्यय ने छोड़दे – यो भाव है।

अर्जुण कही ।

आप रो, देख यो पाछो, नररूप शुहावणो ।
अब म्हूँ चेत में आयो, घबराहट भी मटी ।।५१।।

यूँ पाछा वणीज रूप में भगवान् ने देख ने अर्जुण अर्ज कीधी, के हे जनार्दन! आप रो यो पाछो शुहावणो मनख रो रूप देख ने अवे म्हूँ सुखी व्हियो, म्हारो जीव ठकाणे आयो, ने पेलीं री नाईं व्हे गियो। अंतरीं देर तो म्हूँ कई रो कई व्हे गियो हो ।।५१।।

श्री भगवानुवाच ।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ।।५२।।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

म्हारो सहज नी है यूँ, दीखणो रूप अर्जुण ।
देवाँ रे भी रहे लागी, लालसा ईं सरूप री ।।५२।।

जदी श्री भगवान् हुक्म कीधो, के यो जो म्हारो रूप, थें अबार देख्यो हो यो रूप से'ल में ही कोई नी देख शके है । यो म्हारो खास रूप है । देवताँ रे[1] भी अणी रूप ने देखवा री सदा अभिलाषा लागी रियाँ करे है, तो पण देख नी शके ।।५२।।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ।।५३।।

वेदाँ शूँ तप यज्ञाँ शूँ, दान शूँ भी नहीं कदी ।
अश्यो म्हने शके देख, जश्यो देख्यो अबार थें ।।५३।।

क्यूँ के, अणी तरे' रो म्हूँ वेद शूँ, तप शूँ, दान शूँ, ने यज्ञ करवा शूँ थोड़ो ही दीख शकूँ हूँ? जश्यो थें अबार म्हने देख्यो हो, वश्यो अणा उपायाँ शूँ नी दीख शकूँ ।।५३।।

१—देवता ने भी या इच्छा वणी रेवे । क्यूँ के वणा यज्ञादि उपाय कीधा, पण अनन्य भक्ति नी कीधी ।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥५४॥

एक म्हारीज भक्ती रे, वना कोई स्वरूप यो ।
शके नी देख नी पाय, जाण भी नी शके सही ॥५४॥

पण हे अर्जुण ! म्हारी अनन्य भक्ति शूँ हीज अश्यो म्हूँ जाण्यो[1] जावूँ हूँ, दीख शकूँ हूँ । हे परंतप ! फेर म्हारे में अणीज एक आधार भक्ति शूँ मलाय भी है, मलवा मलवा में भी भेद है । ज्यूँ मलणो चावे यूँ तो एक भक्ति शूँ हीज मलाय है ॥५४॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

ॐ तत्सदिति श्री मद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे "विश्वरूपदर्शन योगो" नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

म्हारा कर्म करे भक्त, म्हा में लागा अलेप जी ।
करे नी वैर कीं शूँ भी, वी म्हने पाय ले सही ॥५५॥

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्म विद्या योगशास्त्र में श्री कृष्णअर्जुण संवाद मे "विश्वरूपदर्शन-योग" नाम इग्यारमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥११॥

हे पाण्डव! जो म्हारो भक्त है, ने म्हारे में हीज लागो रे' है, ने जणी रा काम म्हारा हीज व्हे जावे है, जो सवादाँ में उळझे नी है, नी जो कणी जीव जन्तू शूँ वैर राखे है, वो म्हारे में आय मले है । अणा मायली एक भी वात जणी में व्हे, वणी में सब बाकी री वाताँ आय जावे है । अणी शिवाय म्हारे मलवा रो उपाय नी है ॥५५॥

ॐ वो साँचो यूँ श्री भगवान् री भाषी थकी ब्रह्मविद्या री उपनिषद् में योगशास्त्र में श्रीकृष्ण ने अर्जुण रा सम्वाद में "विश्वरूपदर्शनयोग" नाम रो इग्यारमो अध्याय पूरो व्हियो ॥११॥



१--जाणणो, दीखणो, मलणो, तत्व शूं यथार्थ मलणो ई उत्तरोत्तर अधिक है ।

॥ ॐ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

श्री अर्जुनउवाच ।

एवं सततयुक्ता ये भवतास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

ॐ बारमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण कही ।

एक यूँ आप में लागो, आप री भक्ति आचरे ।
भजे एक निराकार, अणा में श्रेष्ठ है कश्यो ॥१॥

ॐ बारमो[1] अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण अरज कीधी, के आप अबार हुकम कीधो हो, के म्हारे में वो हीज लीन रे'वे है, के ज्यो म्हारा हीज कर्म करतो रे'वे है, सो यूँ सदा ही आप में मल्या थका जी आप रा भक्त चौमेर शूँ आप ने हीज भजे है; वणा शिवाय कतराक अणाँ सबाँ शूँ न्यारा, नी दीखवा वाळा, अविनाशी, जाण ने भी आप ने भजे; अणा दोयाँ में ठीक तरे' शूँ आप ने कूण जाणे है ॥१॥

१—अणी अध्याय में अन्वय व्यतिरेक में अन्वय उपासक मुख्य कियो है । अणीज ने विवेकज ज्ञान योगसूत्र में कियो है । 'क्षण तत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् (यो० द० पा० ३ सू० ५०) अणी रो व्यास-भाष्य देखवा शूँ इग्यारमा, ने बारमा, अध्याय रो भाव स्पष्ट व्हे जायगा । वर्तमान ही क्षण है, भूत-भावी क्षण तो विकल्प है । अव्यक्त, अक्षर, विश्व रूप नी है, क्यूँ के ई विशेषण दूजी तरे'री उपासना में लगाया है, ने सतत युक्त, ने भक्त, अव्यक्तोपासक नी है. क्यूँ के ई विशेषण पे'ली त'रे री उपासना रे लगाया है । यूँ ही विशेषणा रो मिलान करवा शूँ यो प्रकरण फेर अधिक स्पष्ट व्हे जाय है ।

श्री भगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

म्हाँ में ही मन ज्यो मेल, म्हाँ में राच्यो म्हने भजे ।
म्हाँ में ही दृढ़ विश्वास, वो श्रेष्ठ सब शूँ सदा ॥२॥

श्री भगवान् हुक्म कीधो, के, म्हें थने जो रूप देखायो, ने जणी रो भजन करवा रो कियो, वी थूं पे'ली पूछ ले । जी म्हारे में मन लगाय म्हारे में मल्या थका विश्वास शूँ, घणा दृढ़ विश्वास शूँ, भजे है, वी हीज म्हारे में मल्या थका, ने म्हने आछी तरे' शूँ जाणवा वाळा में वड़ा है ॥२॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

ने, जी भजे निराकार, अविनाशी अलेख ने ।
एकशा थिर थोभ्या ने, निर्विकार अचित ने ॥३॥

ने, जीं दूसरी तरे'रा, नी दीखवा वाळा, नी के' वाय, अविनाशी, सब जगा रे'वा वाळा, विचारणी नी आवे, अचळ, गाढ़ा, सब शूँ न्यारा, एक शरीखा ने चौमेर भजे है ॥३॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

रोक ने सब इन्द्रयाँ ने, सबाँ में सम बुद्धि शूँ ।
पावे है वी म्हने हीज, सबाँ रा शुभचिन्तक ॥४॥

सब इन्द्रियाँ ने ठा'म ने, सबाँ ने शरीखा गणे है वी म्हने हीज पावे है । क्यूँ के वी भी सबाँ रो भलो करवा में लागा र्याँ करे है ॥४॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

निराकार भजे वाँ ने, पड़े मे'नत मोकळी ।
मले नी देहधारी ने, निराकार सहेल में ॥५॥

पण अश्या ने मे'नत घणी पड़े है। क्यूँ के वी अदेख्या ने देखवा री करे है। अण देख्या ने पावणो जतरे शरीर है वतरे घणो दो' रो है. यो ई' रो सुभाव है ॥५॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥

ने, जी मे'ल सबी काम, म्हामें ही राच ने रहे ।
औराँ ने छोड़ ने नित्त, म्हने चिंते म्हने भजे ॥६॥

ने, जी सब काम म्हारे में मेल' ने म्हारी भक्ति करे है। म्हारे शिवाय जणा रे ओर आशरो नी व्हे है, ने व्हे ही नी शके है। यूँ जी म्हारो ध्यान अथवा म्हारी भक्ति करवा वाळा है। (यो ही ध्यान, ने भक्ति है) ॥६॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

म्हारे में चित्त दे वाँ री, सबाँ री शुण अर्जुण ।
म्हूँ हरूँ जन्म ने मौत, देर दार करूँ नहीं ॥७॥

वी तो वणा रो जोर म्हारे में मे'ल नचीता व्हे गिया है। अणी वास्ते वणा रो, मोत रो भण्डार जो संसार सागर है, वणी शूँ म्हने उद्धार करणो पड़े, क्यूँ के और वणा रे हे ही कूण? ने वो भी घणो झट करणो पड़े। हे पार्थ ! म्हूँ करूँ, ने म्हारा रो करूँ, अणी में फेर कशर कई रे'शके ॥७॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

म्हारे में मन वुद्धी ने, मेलताँ पाण ही अठे ।
मलेगा आय म्हाँ में ही, अणी में भेम' नी कई ॥८॥

अणी वास्ते थूँ वना भे'म रे म्हारे में मन[1] मे'ल दे, ने बुद्धि ने भी म्हारे में मे'ल दे। वस बुद्धि म्हारे में आई, ने थारो घर म्हूँ हीज व्हे जावूँगा। पछे थने भटकणो नी पड़ेगा। अणीं में कोई भे'म री बात नी है या नक्की जाणजे ॥८॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥९॥

जो थारो मन नी ठे'रे, म्हारे ही माँय अर्जुण।
तो सदा कर अभ्यास, पावा री होय ज्यो म्हने ॥९॥

जो म्हारे में बरोबर मन नी ठे'र[2] शके ने डग जावे तो पछे अभ्यास म्हारे में करचाँ जा। हे धनंजय! ई तरे'शूँ भी म्हने पावा रो हक़दार व्हे शके है ॥९॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

अभ्यास भी शबे नी तो, म्हारा ही कर्म थूँ कर।
म्हारे तावे किया कर्म, म्हाँ में ही आय जायगा ॥१०॥

अभ्यास भी नी' व्हे शके तो म्हारा हीज काम में लागो रियाँ कर, क्यूँ के म्हारे वास्ते काम करचाँ जाय तो भी म्हने पाय लेवे है ॥१०॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

यूँ भी थाँ शूँ नहीं व्हे तो, मन ने राख गाढ़ में।
कर्मा रा छोड़ शारा ही, फळां ने कुन्तिनंदन ॥११॥

१—मन ने बुद्धि शूँ म्हारे में मे'ल, ने पछे वणी बुद्धि ने भी म्हारे में मे'ल, (येन त्यजसि तं त्यजेति) यो भाव है।
२—समाधातुं—समाधि, शांति, स्थिर व्हे ने सदा ही शांति में नी'रेणी आवे (अनवस्थितत्व यो० सू०) तो अभ्यास करणो कर; यो भाव है।

फेर जो म्हारे आशरे, ने म्हारे में मल्यो थको यूँ थूँ काम नी कर शके, तो आपा ने जीत ने सब कामाँ रा फळ ने छोड़ दे ॥११॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

अभ्यास शूँ वड़ो ज्ञान, ज्ञान शूँ ध्यान श्रेष्ठ है ।
ध्यान शूँ फळ रो त्याग, त्याग रे शान्ति साथ ही ॥१२॥

थूँ निश्चय ही जाण के कोरा अभ्यास वच्चे ज्ञान सहित अभ्यास वत्तो है, ने वी कोरा ज्ञान वच्चे ध्यान सहित ज्ञान वत्तो है, ने वणी कोरा ध्यान वच्चे कर्म रा फळ रो छूटणो,अश्यो ध्यान वत्तो है। ने अश्यो छूटणो, ने थिर शान्ति-समाधि साथे ही है। ज्यूँ वर रे साथे वधू गळजोड़ो वाँध्या थका व्हे ज्यूँ है ॥१२॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखःक्षमी ॥१३॥

अहंकार नहीं खार, ममता सुख दुःख नी ।
क्षमा प्रेम दया वाळो, म्हने वा'लो अश्यो घणो ॥१३॥

अशी शान्ति वाळो जीव मात्र शूँ वैर नी राखे पण शामी मित्रता राखे, ने वा भी दया शूँ हीज। म्हारो, ने म्हूँ, ई भी वणी में नी रे'वे, ने वो सुख-दुःख ने एक शरीखा देख लेवे, ने खम लेवे ॥१३॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः ।
मय्यर्पितमनोवुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

ज्यो सन्तोषी जती जोगी, ज्यो विश्वासी सदा दृढ़ ।
म्हारे में मन वुद्धी रो, प्यारो भक्त अश्यो म्हने ॥१४॥

वो सदा सुखी, सदा योगी, सदा ही स्वतन्त्र, ने सदा ही गाढ़ा निश्चय वाळो है। ने ई रो कारण पे'ली कियो ज्यो है के म्हारे में मन, ने पछे वुद्धि, ने मेल दीधा जीं शूँ वो म्हारो भक्त व्हे गियो, ने म्हने वो हीज प्यारो है ॥१४॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

अमूझे और नी जीं शूं, अमूझे और शूं न ज्यो ।
भय घावरणो हर्ष, रोष हीणो म्हने रुचे ॥१५॥

जणी शूं कोई दुःख नी पावे, ने वो भी कणी शूं भीं दुःखी नी व्हे, जो हर्ष, अमर्ष, भय, ने घबराहट शूं छूट्यो, वो भी म्हने प्यारो है, ने म्हूँ भी वीं ने प्यारो हूँ ॥१५॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

शोक नी, शौख नी जीं रे, आरम्भ, परवा नहीं ।
सावधान सदा शुद्ध, प्यारो भक्त अश्यो म्हने ॥१६॥

कणी शूं भी कई नी चावे, पवित्र, चात्रक, वना दुःख रो, ने उदासीन, सब आरम्भ ने छोड़वा वाळो, अश्यो ज्यो म्हारो भक्त है वो म्हने प्यारो है ॥१६॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

हर्ष शोक नहीं जीं रे, चावना नी अचावना ।
भलो बुरो नहीं जीं रे, वो प्यारो भक्त है म्हने ॥१७॥

जो राजी बेराजी नी व्हे, शोच नी करे, चावना नी राखे, आछो बुरो जणी रे छूट गियो अश्यो जो भक्तिमान व्हे, वो म्हने आछो लागे है ॥१७॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

सम जो शत्रु मित्रां में, मान में अपमान में ।
ठंडा में और ऊना में, सुख में दुःख में सम ॥१८॥

जो आपणा पराया में भेद भाव नी राखे, मान अपमान एक ही गणे, ठण्डा-ऊना, ने सुख-दुःख ने भी एक जाणे, ने कणीं में ही उळझे नीं, सब रो मतलब तो यो हीज है ॥१८॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

सम निन्दा स्तुती मौनी, मले जी में रहे सुखी ।
थिर जो घर शूँ हीण, वो प्यारो भक्त है म्हने ॥१९॥

जो हर कणी वात में सन्तोष कर लेवे, बुराई, ने बड़ाई में भी नीं उळझे, ने मून राखे, मन नी ठगवा दे, जीं रे रें'वारो घर तो वीं री थिर बुद्धि हीज है, ने बारला घर री जणी रे ममता नी है, अश्यो भक्ति वाळो मनख म्हने आछो लागे है। ई वाताँ भक्ति वाळाँ में व्हे हीज है ॥१९॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे "भक्तियोगो" नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

राख विश्वास जो चाले, अणी अमृत धर्म पें।
जो रंग्यो रंग म्हारा में, प्याराँ में वो शिरोमणि ॥२०॥

ॐ तत्सत् इति श्री भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्ण - अर्जुण सम्वाद में "भक्तियोग" नाम वारमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥१२॥

ने जो भक्त अणी वणाँ रा सुभाव, अणीं आपाणाँ संवाद गीताजी ने ज्यूँ कियो यूँ ही शमझ ने और चौमेर अणीज ने जाण जावे---विश्वास शूँ म्हारा में लागा वना या वात नी व्हे शके---वी यूँ म्हारी भक्ति वाळा भक्त तो म्हने सबाँ वच्चे घणा हीज आछा लागे है ॥२०॥

ॐ वो साँचो यूँ श्री भगवान् री फरमाई थकी ब्रह्मविद्या री उपनिषद् योगशास्त्र में "भक्तियोग नाम रो" वारमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥१२॥



ॐ

त्रयोदशोऽध्यायः ।

श्री भगवानुवाच ।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१॥

ॐ[1] तेरमो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

अणी शरीर रो नाम, क्षेत्र थूं जाण अर्जुण ।
अणी शरीर ने जाणे, वीं रो क्षेत्रज्ञ नाम है ॥१॥

ॐ तेरमो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् हुकम कीधो के हे कौन्तेय! अणी[2] शरीर ने शमझणा, जाणकार, यो खेत है यूं कियाँ करे है, ने वी हीज अणी खेत ने जाणवा वाळा (खेतवाळा) ने 'क्षेत्रज्ञ' यूं अणी नाम शूं कियाँ[3] करे है ॥१॥

क्षेत्रज्ञं[4] चापिमां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

१—अति प्रिय म्हारा भक्त कूंकर के'वाय, ई रो उपाय यो क्षेत्रज्ञ-विभाग योग है । यूं वारमां अध्याय शूं अणी अध्याय रो सम्बन्ध है ।

२—'यो', ने 'ई ने जाणे जो, अणी में साक्षत्कार है ।

३—क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ तो कियां करे है, दूज्यूं यो तो प्रत्यक्ष चौड़े है—यो भाव है ।

४—'क्षेत्रज्ञ म्हने भी जाण' अणी शूं दो क्षेत्रज्ञ शावत व्हे है । एक दूसरो है, ने एक म्हूं भी हूं । वो दूसरो ही सत्व वाजे है, ने सत्व पुरुष रो विवेक ही मुख्य विवेक है, ने यो ही म्हारो राय में ज्ञान है, और अणी वना रा अज्ञान होज है । ई दो ही क्षेत्रज्ञ के'वा रो यो भाव है के सत्व तो गुण ने जाण नी शके, ने पुरुष जो चैतन्य-निर्गुण व्हेया शूं क्षेत्र (गुण) ने जाणणो, नी जाणणो वणी में व्हे नी शके, अणी शूं मल्या ही जाण । ई रो वानीको ही ज्ञान है, ने यो ही संयोग वियोग है; जणी ने सांख्य में मौलिक दशा में कियो है ।

क्षेत्रज्ञ[1] भी म्हने जाण सारा ही क्षेत्र माँयने ।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ रा हीज ज्ञान ने ज्ञान जाण थूँ ॥२॥

हे भारत ! शघळा ही खेताँ में खेत वाळो म्हने हीज जाण[2] जे। यो यूँ जो खेत, ने खेत वाळा ने जाणणो है सो हीज म्हारी जाण में जाणणो[3] है ॥२॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥३॥

यो जो क्षेत्र जश्यो ज्यूँ है, जींशूँ ज्यूँ ने ज़णी तरे ।
ज्ञेत्रज्ञ भी जश्यो है सो, कहूँ थोड़ाक में थने ॥३॥

वो खेत, जो है, जश्यो है, अणी में ज्यो ज्यो विकार व्हियाँ करे है, वी विकार व्हे है ज़ीं भीं जणी जणी शूँ, ज्योज्यो व्हे है, ने वो खेत वाळो भीं ज्यो, ने जणी महिमा वाळो भी है वा वात थोड़ाक में म्हारे[4] शूँ हीज शुण जे ॥३॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

नरा ही वेदशास्त्राँ शूँ, नरा ही ऋषियाँ कियो ।
नरी ही भाँति यो ज्ञान, नरी ही देखभाळ शूँ ॥४॥

अणीज वात ने ऋषियाँ नरीं तरे' शूँ की है, नराही छन्दाँ में न्यारीं न्यारी तरे' शूँ की तो या हीज है । थोड़ा थोड़ा अक्षराँ में

१—सब क्षेत्राँ में म्हने भी क्षेत्रज्ञ जाण, क्यूँ के यो हीज विशेष दर्शन है, क्यूँ के यूँ तो न्यारा न्यारा क्षेत्राँ में न्यारा न्यारा क्षेत्रज्ञ सब ही जाणे, पण वी तो अड़मा (खेताँ में जनावराँ ने डरावा ने वणाया थका चारा रा पुरुष) है । थूँ अणी शिवाय अतरो फेर जाण ले ।

२—खेत में अड़मा व्हे वी म्हने शमझे मती । वणाँ ने तो पशु यूँ शमझे है के ई पुरुष है । वूज्यूँ वो तो खेत हीज है । (चारो आदि खेत रो विकार हीज है) यूँ ही सत्वाँ ने शमझणा चावे-यो भाव है ।

३—अणी शिवाय रो ज्ञान ही अज्ञान है—यो भाव है ।

४—विस्तार शूँ नरी जगाँ ऋषियाँ कियो जीशूँ यो संक्षेप में म्हाँ शूँ (ब्रह्मशूँ) शुण ।

शमझाय शमझाय ने आछी तरे शूँ निश्चय कीधी थकी नक्की वात वणा की है, वा या ही़ज है ॥४॥

> महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
> इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥५॥

> पंचतत्व, अहंकार, मूल प्रकृति, बुद्धि भी ।
> ग्यारा ही इन्द्रियाँ, और, इन्द्रयाँ रा ज्ञान पांच ही ॥५॥

वणी सब रो सार यो है के ई दीखे जी पाँच महाभूत, अणा ने देखवा रो दावो करे सो अहंकार, ई रो निश्चय करे सो बुद्धि, ने या जणी शूँ व्हे सो अव्यक्त, (यूँ तो सब अव्यक्त ही़ज है पण ई तो समझ रा भेद कीधा है) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ,ने मन और पाँच ही इन्द्रियाँ शूँ जणाय जी तन्मात्रा, ई चोईश ही तत्व ही़ज है ॥५॥

> इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।
> एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतं ॥६॥

> सुख इच्छा द्वेष दुःख, चेतना देह धारणा ।
> थोड़ा में क्षेत्र यो यूँ म्हें, कह्यो फेलाव साथ ही ॥६॥

इच्छा (चावणो), खार (नी चावणो), सुख, दुख, शरीर, चेतना,ने धारण यो खेत म्हें थोड़ाक में के'दीधो,ने अणी में व्हेवा वाळा विकार भी चोईश शिवाय रा है जी के'दीधा[1] ॥६॥

> अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ।
> आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥

> क्षमा सूधपणो दाया, मान पाखण्ड हीणता ।
> थिरता मन री रोक, गुरु सेवा पवित्रता ॥७॥

अतरा में ही थारे ध्यान में नी आई व्हे तो म्हूँ थने ज्ञान[2] भी

१—ने या जो पे'ली ही की ही के खेत ने जाणे सो खेत वाळो है,ने वो खेत वाळो म्हूँ ही़ज हूँ, जचे म्हारी प्राप्ति में कई प्रकार री शो पूँ ही के ।

२—अणा वातां शूँ क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग शमझ में आय जावे, क्यूँ के चित्त शुद्ध व्हे जावे, ने आपा पणा रा ई सुभाव है ।

शमझाय देवूँ । घमण्ड नी करणो देखावो नी करणो, दुःख नी देणो, क्षमा राखणी, वड़ाँ री सेवा करणी, पवित्र रे'णो, घबरावणो नी, आपा हीण नी व्हेणो ।।७।।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।।८।।

विषयाँ माँय वैराग, घमण्ड करणो नही ।
जन्म मौत जरा रोग, दुःखाँ रा दोष शोचणा ।।८।।

इन्द्रियाँ रा सुखाँ में नी उळझणो, अणा ने आपणा नी हीज मानणा, जन्म रा, मरवा रा, बुढ़ापा रा,ने रोगाँ रा दुःखाँ रो,ने अणा री खोटायाँ रो विचार करणो ।।८।।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।।९।।

घर पर्वार री पर्वा, राख ने फशणो नहीं ।
आछा बुरा सवाँ ही में समता राखणी सदा ।।९।।

बेटा, लुगाई, घर, आदिक बारली वाताँ में उळझ ने आपो नी भूल जाणो, आपाँ रा ई है,आपाँ याँ रा नी । आछो बुरो व्हे तो रे'वे जणी में मन नी डुलवा देणो, पण मन ने तो एक शरीखा रे'वा वाळा में राखणो ।।९।।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।।१०।।

अचळा भक्ति म्हाँ में ही, राखणी मन मे'ल ने ।
एकाँत जायगाँ रेणो, लोगां में रुचि हीणता ।।१०।।

और म्हारे में अचळ प्रेम करणो, म्हारे, ने वणी रे वच्चे दूसरो नी आवे तो पछे आपो आप ही अचळ व्हे हीज, एकला रेणो,मनखाँ में रे'वा रो शोख नी राखणो ।।१०।।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

आप ने देखणो शागे, ज्ञान ने सांच मानणो ।
अणी रो नाम है, ज्ञान, और अज्ञान है सबी ॥११॥

ज्ञान ने नजीक शूँ नजीक शमझ लेवा शूँ वो अडग व्हे जावे, ने तत्व ज्ञान रा अर्थ ने शागे देखणो । वाताँ में ही नी रें'णो अणी रो हीज नाम ज्ञान है, यूँ ठेठ शूँ के'ता आया है, ने अणी शूँ ऊँधो व्हे तो अज्ञान है, यूँ जाणणो ॥११॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥

जाणवा जोग केवूं वो, जो जाण्या मरणो मटे ।
जो अनादि परब्रह्म, साँच नी झूँठ भी नहीं ॥१२॥

अवे अणी शूँ जो जाण्यो जाय है, ने जीं ने जाण्या, ने जन्म मरण मट जाय है,वो थने के'वूँ हूँ । वो आदि वाळो नी है,सब शूँ वदे है,वीं ने साँच झूँठ भी नी के'वाय शके ॥१२॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥

हात पाँव तथा आँखाँ, जणी रा मुख कान भी ।
फेल्या है शघळी आड़ी, सबाँ में व्याप जो रह्यो ॥१३॥

वो चौमेर हात, पग, आँख, माथा, मूँड़ा वाळो है, चौमेर वणी रा कान है, ने वो हीज सबाँ ने विटोल ने थिर है ॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥

जणी नूँ इन्द्रियाँ जाणे. इन्द्रियाँ शूँ अलेप ज्यो ।
निर्गुणी गुण रो भोगी. सब ने धार ने जुदो ॥१४॥

जो थने थोड़ी देर पे'ली दीख्यो ही हो,वो सब इन्द्रियाँ शूँ न्यारो व्हे ने भी सब इन्द्रियाँ रा गुणाँ नें जाणे है, (मंल्यो थको है) गुणाँ रे साथे है। वना उळझ्यो थको भी सबाँ ने धारण करे है,वना गुण रो भी गुणा ने भोगवा वाळो हीज है ॥१४॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिकेच तत् ॥१५॥

सबाँ रे बारणे माँय, जो सदा थिर चंचळ ।
झीणो नी जाण में आवे, घणो छेटी नजीक भी ॥१५॥

सबाँ रे बारणे, ने माँय भी है। कई नी खावे, (भोगे नी) ने खावे हीज है, (भोगे हीज है) बारीकपणा शूँ हीज नी जाण्यो जाय, दूज्यूँ और कूण जाण्यो जाय है। छेटी रे'वा वाळो, ने वो हीज नजीक रे'वा वाळो है ॥१५॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१६॥

एक ही सब रे मांय, दीखे न्यारो ज्युँ ही वुही ।
पाळे खावे उपावे वो, सबाँ ने सब ही जगाँ ॥१६॥

सबाँ में एक ही व्हे, ने न्यारो न्यारो व्हे ज्यूँ रे'वा वाळो है। सबाँ ने पाळवा[1] वाळो भी वी ने ही जाणणो चावे,ने मटावा वाळो, ने वणावा वाळो भी वो ही है ॥१६॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥१७॥

उजाळाँ रो उजाळो वो, अंधारा शूँ परे सदा ।
ज्ञान शूँ जाणवा जोग, ज्ञान वो हिरदे वशे ॥१७॥

उजाळा में भी उजाळो जणी शूँ शावत व्हे रियो है अश्यो उजाळो वो है, अँधारा शूँ न्यारो वो हीज कियो जाय है। दूज्यूँ न्यारो

१—ई तीन ही काम वीं शूँ ही सावत व्हे है। 'जन्माद्यस्य यतः'। (ब्रह्मसूत्र)

व्हे ने और जगा थोड़ो ही है, वीं रे साथे ही है। ज्ञान, जाणे ज्यो, ने जाणणो, भी जणी शूँ जाण्यो जाय अश्यो; जाणशूँ जणाय ज्यो, वो, यो सवाँ रे हिया में सदा विराजमान है ॥१७॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

क्षेत्र क्षत्रज्ञ ने ज्ञान, यो म्हें थोड़ाक में कह्यो।
अणी ने जाण ने म्हारो, भक्त पावे म्हने सदा ॥१८॥

देख! यूँ म्हने थने थोड़ा में ही साफ साफ खेत, ज्ञान, ने ज्ञान अज्ञान शूँ जणाय ज्यो, चौड़े के'दीदो। म्हारे में प्रेम व्हे, तो यो जाणता ही म्हारो भाव वणी में आय जावे, ने पाछो कदी नी मटे, क्यूँ के यो तो सुभाव है ॥१८॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैवं विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥१९॥

पुरुष प्रकृती दोई, अनादी जाण अर्जुण।
गुणाँ ने ने विकाराँ ने, जाण प्रकृति शूँ व्हिया ॥१९॥

अवे अणीज ने थोड़ा में फेर शमझ, के एक (खेत) तो प्रकृति वाजे, ने एक (खेतवाळो) पुरुष वाजे, ने अणा शिवाय और कई नी है ने ई हीज दोही आनदि हैं, या थूँ जाण ले,ने व्हा, बस, सब जाण लीधो, कृत कृत्य व्हे गियो। अणी शिवाय जतरा विकार दीखे सब गुण हीज है। गुण ने प्रकृति एक ही है, या थूँ निश्चय जाणले ॥१९॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२०॥

ज्यो करे होय ज्यो जी शूँ, ई है प्रकृति शूँ सबी।
सुख ने दुख रो भोग, जाण पुरुष शूँ सबी ॥२०॥

काम, इन्द्रियाँ, ने करता, ई प्रकृति शूँ (खेत में) किया जाय है, ने सुख-दुःख रो भोग पुरुष शूँ (खेतवाळा में) कियो जाय है, दूज्यूँ

के वा री वात थोड़ी ही है, शागे है ॥२०॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

क्षेत्रज्ञ क्षेत्र में आय, क्षेत्र रा गुण भोगवे ।
गुणां में यो फँशे जीं शूँ, पावे जूण भली वुरी ॥२१॥

देख ने देखे तो पुरुष में भोग थोड़ो ही हैं । यो तो प्रकृति में हीज है पण पुरुष भी प्रकृति रे साथे ही रे हैं, जीं शूँ यो भोगे है, पण है तो प्रकृति रा हीज गुण, पण यो वणी रा गुणां ने आपणा मान लेवे, अणीज वास्ते ईं रो ऊँची नीची जूण में जनम-मरण सुख-दुःख व्हे ॥२१॥

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥२२॥

देखे जाणे भरे भोगे, अणी ने उळझ्याँ वना ।
अश्यो ईं देह में सो ही, परं पुरुष ईश्वर ॥२२॥

देखवा रे साथे फेर देखवा वाळो, जाणवा रे साथे केवल जाणवा वाळो, यूँ यूँ ही भरण करवा साथे केवल भरण करवा वाळो, ने भोगवा रे साथे केवल भोगवा वाळो, परम पुरुष, परमात्मा, ने महेश्वर भी वो हीज वाजे है, ने यो और कठे ही नी है देह में हीज, ने अणीज देह में है ॥२२॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२३॥

यूँ ज्यो पुरुष ने जाण्यो, जाण्यो ज्यो धर्म क्षेत्र रा ।
शारो काम्म करे तो भी, जमारो जीत ग्यो वुही ॥२३॥

जो अणी तरे शूँ पुरुष ने जाण लीधो, ने प्रकृति ने गुणाँ सेती जाण लीधी, (वात एक ही है) वो सव तरे शूँ सदा ही वर्ताव करे तो भी फेर वणी रो तो जन्म नीज है ॥२३॥

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४॥

आप शूँ आप में देखे, आप ने ध्यान में नरा ।
नराई त्याग शूँ देखे, नराई कर्म योग शूँ ॥२४॥

अणी नें कतराक[1] तो आपणो ध्यान करता थका आपणे में ही आप रूप ने देख लेवे है ।(जणायजाय है) कतराक साँख्य[2] योग शूँ, ने कतराक कर्मयोग[3] शूँ देखे है ॥२४॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥२५॥

औराँ शूँ शुण ने हीज, उपासे कतराक तो ।
यूँ शुणे प्रेम शूँ वी भी, जीते जनम मोत ने ॥२५॥

कतराक यूँ नी कर ने दूसरा[4] जाणकाराँ शूँ शुण ने वणीज में लागा रे'वे है, वी भी वणी शुण्या थका ने वार वार याद करता थका मोत ने जरूर विलकुल तरजावे है, क्यूँ के वणा रे दूसराँ री कमाई हाते केळवी थकी आय जाय है ॥२५॥

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

जो कई उपजे कोई, चराचर कणी तरे ।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ दोयाँ रा, मेळ शूँ हीज जाण वो ॥२६॥

हे भरतर्षभ ! अणी वास्ते थूँ म्हारे शूँ शुण ने से'ल में तर जा । या वात शूधी शमझ ले के चराचर जो कोई जतरा वणे है वी सब खेत ने खेत वाळा शिवाय कई नी है, यो सब अणा रो मेळ हीज संसार है; यूँ जाण ले ॥२६॥

१—ऊह ई रो नाम है । २—शब्द ईं ने के है । ३—अणी में तीन ही दुःख विघात ने दान आया है ।
४—अणी में सुहृत् प्राप्ति, गुरु प्राप्ति आयगी, ने अध्ययन भी ।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२६॥

परमेश्वर सारॉं में, विराजे एकशो सदा ।
नाशी में अविनाशी ने, जाणे सो ही सुजाण है ॥२७॥

ऊँचा नीचा सबाँ माँय, ने एक सरीखो सदा थिर, परमेश्वर ने जो देखे है वो हीज देखे है । दूजा तो छती आँखा आँधा है । मटता थका ने देखे तो अमट दीख्यो हीज ॥२७॥

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८॥

परमेश्वर ने देखे, एक शो सब माँय ज्यो ।
वो ही नी आप घाती है, वो ही पावे परंपद ॥२८॥

यूँ सब जगा एक शरीखो, ठीक तरे'शूँ, है ज्यूँ, ईश्वर ने देखतो थको आप घाती नी है, ने आपघात नी करे, ने परम पद पाय लेवे । मरवा शूँ परमपद नी मले है ॥२८॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥२९॥

प्रकृती ही करे कर्म, यूँ देखे जो सबी जगा ।
अकर्ता आप ने देखे, वीं रो ही देखणो सही ॥२९॥

प्रकृति ने हीज चौमेर शूँ सब कम करती थकी जो देख लेवे वीं अकर्ता आत्मा ने देख लीधो, ईं में के'वा री ही कई री? क्यूँ के है ज्यूँ वणी हीज देख्यो है ॥२९॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

शमाया एक ही माँय, सबाँ ने देख ले जदी ।
वीं शूँ ही फेलता देखे, जदी वो ब्रह्म पाय ले ॥३०॥

जदी अणा रा न्यारा पणा ने भी एक में हीज थिर देखवा ने भी साथे ही देख ले, ने वणीज शूँ यूँ ही विस्तार भी देख ले, जदी ठीक तरे' शूँ ब्रह्म मल गियो ईं में के'णी ही कई ॥३०॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

अनादी अविनाशी है, निर्गुणी परमातमा ।
नी करे नी फँशे ईं शूँ, रहे तो भी शरीर में ॥३१॥

हे कौन्तेय ! आदी नी व्हेवा शूँ, गुण नी व्हेवा शूँ, परमात्मा व्हेवा शूँ, ने अविनाशी व्हेवा शूँ, यो शरीर में है तो भी नीं तो कई करे, ने नीं जो कदी उळझे या चौड़े है ॥३१॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

झीणो आकाश होवा शूँ, ज्यूँ अड़े नी कणी जगाँ ।
बना अड़्या रहे त्यूँ ही, आतमा सब ही जगाँ ॥३२॥

थने यूँ भेम व्हे के शरीर में रे'ने कूँ कर नी उळझे? तो ज्यूँ आकाश सब जगाँ है तो भी बारीक व्हेवा शूँ कणी रे ही नी अटके, यूँ ही सब जगा रे'वा वाळो आत्मा देह में भी नी उळझे है। यो तो आकाश रो भी आत्मा है ॥३२॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

प्रकाशे एक ही सूर्य, सारा संसार ने ज्युँ ही ।
क्षेत्र ने यूँ प्रकाशे है, क्षेत्रज्ञ सब ही जगाँ ॥३३॥

यो अकेलो सब खेताँ ने कूँकर प्रकाशित करे है? यूँ भे'म व्हे, तो ज्यूँ एकलो यो सूर्य आखा संसार ने प्रकाशित करे यूँ ही यो एकलो खेत वाळो सब खेताँ ने प्रकाश रियो है। हे भारत! ईं में भी कई भे'म है ॥३३॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरवेमन्तरं ज्ञानचक्षुपा ।
भुतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।।३४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे "क्षेत्र क्षेत्रज्ञविभागयोगो" नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ रो भेद, यूँ जाणे ज्ञान नेत्र शूँ ।
माया रो नाश भी जाणे, पावे परम धाम वो ।।३४।।

ॐ तत्सत् इति श्रीमद्भगवत्गीता उपनिषद् में ब्रह्म विद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्णार्जुन संवाद में "क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभागयोग" नाम तेरमो अध्याय समाप्त व्हियो ।।१३।।

यूँ यो खेत, ने खेत ने जाणवा वाळा रो भेद ज्ञान री आँख शूँ जाणे है। "ज्ञान" बस अठे हीज जणायो, ने 'यो जाणे है' यो जीं जाण्या ने वी परम ब्रह्म ने भी पाय लीधा। अणी शिवाय और परम पद कई नीं है, ने अणी संसार रो सुभाव ओळखणो ही मोक्ष है। दूज्यूँ-तो अणजाण रीं आँगणे मोत है। ने अणाँ रो सुभाव जाण्यो, ने आपणो ज्ञान व्हियो ।।३४।।

ॐ वो साँचो यूँ श्री भगवान् री भाषी थकी ब्रह्मविद्या री उपनिषत् योगशास्त्र में श्री कृष्ण अर्जुण रा संवाद में "क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभागयोग" नाम तेरमो अध्याय पूरो व्हियो ।।१३।।



॥ॐ॥

चतुर्दशोऽध्यायः।

श्री भगवानुवाच।

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः॥१॥

ॐ चवदमो अध्याय प्रारम्भ।

श्री भगवान् आज्ञा करी।

थने आछो कहूँ फेर, ज्ञानाँ में ज्ञान उत्तम।
जीं ने जाण म्हने पाया, अठे ही मुनि मोकळा॥१॥

ॐ चवदमो अध्याय प्रारम्भ।

श्री भगवान् हुकम कीधो के, फेर थने सब ज्ञानाँ में उत्तम, ने सब ज्ञानाँ शूँ भी न्यारो ही यो ज्ञानाँ रो ही ज्ञान[1] के'वूँ हूँ। जतरा महात्मा अठा शूँ छूटने परम पद ने पाया है, वी जणी ज्ञान शूँ अशी पदवी पाया, यो वो हीज ज्ञान थने आज म्हूँ के'रियो हूँ॥१॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥२॥

१—पदार्थां रो जाणणो जणी जणी ज्ञान शूँ व्हे, वी 'ज्ञान' है। वणा संपूर्ण ज्ञानां रो ही ज्ञान जणी शूँ व्हे, वो 'ज्ञानां रो ही ज्ञान' है, ने वो अतरा ज्ञानां ज्यूँ नी है, पण उत्तम है, ने जणी शिवाय और कोई परम सिद्धि (ईश्वरप्राप्ति) है ही नी। अणी ने जाण्या ने सब व्हियो, या असंख्य दाण पतवाणी थकी है। (सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्र०) 'फेर' के' वारो मतलब यो है के आगे गीता में यो हीज कियो है।

अणीज ज्ञान ने धार, पावे म्हारा सरूप ने ।
जन्म ने मोत नी पावे, खूट जावे सवी दुख ॥२॥

अणी ज्ञान रो हीज आशरो ले ने, वी म्हारो रूप हीज पाय लीधा हैं। अवे वी नी तो अणी संसार रा दुख भोगे, ने भोगे ही कूँकर, आखा संसार रो प्रलय व्हे तो भी वी तो यूँ रा यूँ ही रे'वे, ने आखो जगत वणे तो भी वी तो वणे ही नी। वण्या वना कूँकर वगड़े ॥२॥

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥

म्हारी नारी महामाया, सदा री गुण आगरी ।
जणे सम्पूर्ण संसार, म्हारे शूँ गर्भ धार ने ॥३॥

शुण, 'महद् ब्रह्म' बुद्धि रो नाम है, अणी में म्हूँ हीज गर्भाधान करूँ हूँ। हे भारत ! ने अणीज शूँ सब वणवा वाळा वणे है ॥३॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं वीजप्रदः पिता ॥४॥

जो जठे उपजे कोई, कणी भी जूण मांय ने ।
महामाया जणे सो ही, म्हारो ही अंश पाय ने ॥४॥

हे कौन्तेय ! ई जतरी मूरत्याँ थने वणती थकी दीखे है, वी न्यारी न्यारी जूण में वणती व्हे ज्यूँ जणावे है। पण देख ने देखे तो अणाँ सवाँ री जूण तो एक 'महद् ब्रह्म' हीज है, ने वणी में बीज देवा वाळो सवाँ रो पिता म्हूँ हीज हूँ, अर्थात् सवाँ रा मा वाप म्हें दो हीज हाँ ॥४॥

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निवध्नन्ति महावाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

तीन ही गुण माया रा, सत्व ने रज ने तम ।
देह में जीव ने वाँधे, अविनाशी अलेप ने ॥५॥

हे महावाहो ! अणी प्रकृति रो यो गुणाव है के अविनाशी अणी देह वाळा (खेत वाला) ने अणी देह में वाँध दियाँ करे है, वणाँ वंधनाँ

रो सत्व, रज, ने तम यो नाम है ॥५॥

> तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
> सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥६॥

> निर्मळो सत्व होवा शूँ, ऊजळो दुख हीण है ।
> ज्ञान ने सुख रे माँय, जीव यो उळझाय दे ॥६॥

अविनाशी, नाशमान शूँ कूँकर बँधे ? यूँ थने विचार व्हियो व्हे, तो गुण । वणाँ में शूँ सत्व निर्मळ व्हेवा शूँ प्रकाश करवा वाळो, ने वे खटका रो है । अणी वास्ते, हे अनघ! यो सुख रा वंध शूँ वा ज्ञान रा वंध शूँभी बाँध देवे है । ज्ञान, सुख ही ईं री गाँठ है ॥६॥

> रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
> तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥७॥

> तृष्णा आसक्ति शूँ होवे, प्रतिरूपी रजोगुण ।
> जीव ने कर्म रे माय, बाँध यो वहकाय दे ॥७॥

हे कौन्तेय ! कणी में शौख व्हेणो हीज रजोगुण रो रूप है । यो तृष्णा में फँश जावा शूँ व्हे है, ने अणी जीव ने यो करणो यो करणो अणी गाँठ शूँ बाँध देवे है ॥७॥

> तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
> प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥८॥

> तम अज्ञान शूँ जन्मे, भुलावे भाव जीव ने ।
> नींद आळश शूँ बाँधे, भूल शूँ पण बांध ले ॥८॥

हे भारत ! बाँधवा रो मुख्य काम तो तमोगुण रो हीज है । यो हीज सब ने गेभूल करे, जदी यो देह धारी वणे है । ईं शूँ ईं ने थूँ सब ने वे'कावा वाळो जाण । यो आळस, नेरपाई ने नींद अणाँ गाँठाँ शूँ बाँधे है ॥८॥

> सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।
> ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥९॥

लगावे सत्व सुख में, लगावे कर्म में रज ।
लगावे ज्ञान ने ढाँक, भूल मांय तमोगुण ॥९॥

सतोगुण सुख में जोत देवे, ने हे भारत ! रजोगुण करम में जोत देवे । यूँ ही ई जुड़्या है, पण तमोगुण हीज अणी ने निश्चय ही ज्ञान ने ढाँक ने आँख रे छाणा बाँधे ज्यूँ घाणी रा वळद री नाईं नेरपाई में जोत देवे है—— आँखाँ बंधी ने जुत्या ॥९॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत ।
रजः सत्वं तमश्चैव, तमः सत्वं रजस्तथा ॥१०॥

दो ने दाव वधे सत्व, दो ने दाव वधे रज ।
तम भीं गुण दो दावे, यूँ रहे फरता गुण ॥१०॥

हे भारत ! ई गुण न्यारा न्यारा नी रे'वे पण साथे ही रे'वे है। रज-ने ने तम ने दबाय ने सतो गुण वध जावे, ने रज-सत ने दाव ने तम वधे, ने यूँ ही तम-सत ने दाब ने रजो गुण वधे, ने जो वधे वणीं रो ही नाम व्हे जावें ॥१०॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्वमित्युत ॥११॥

बारीक्याँ देखवा लागे, इन्द्रियाँ ज्ञान री सभी ।
जदी यूँ जाण लेणो के, सतो गुण वध्यो अवे ॥११॥

जदी अणी शरीर रा सब द्वाराँ में प्रकाश आवे, ज्ञान व्हे, जदी जाणणो के यो सत बध्यो है ॥११॥

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमःस्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१२॥

लोभ ने लालसा लागे, यो करूँ यूँ करूँ करे ।
अशान्ति आगतो व्हे वे, रजोगुण वदे जदी ॥१२॥

हे भरतर्षभ ! लोभ, करणो, प्रारम्भ, काम में सन्तोष नी व्हेणो, ने लालसा व्हेणो, ई रजोगुण वधे जी रा शे'लाण है ॥१२॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१३॥

नी रुचे काम करणो, मूढ़ व्हे भान नी रहै ।
कई सूझ पड़े नी यूँ, तमोगुण वधे जदी ॥१३॥

हे कुरुनन्दन ! कई नी सूझणो, वैठ रे'णो, वे परवाही करणो ने मुख्य वात तो गेभूल रे'णो हीज तमोगुण वधे·जणी री पेछाण है । और तो सव अणी साये रा है ॥१३॥

यदा सत्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥१४॥

जो यो जीव तजे देह, सतोगुण वध्याँ थकाँ ।
जदी यो ज्ञानवानां रा, पाय ले लोक उत्तम ॥१४॥

यो जीव शरीर छोड़े, वणी वगत सतोगुण वध्यो थको व्हे, तो वणी शूँ वो आछा आछा निर्मळ लोकाँ ने पावे । क्यूँके आछा शमझणाँ देवताँ रा ईज लोक है ॥१४॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

जनमे कर्मवानां में, जो रजोगुण में मरे ।
जो मरे तम रे मांय, वो जन्मे मूढ़ जूण में ॥१५॥

रजोगुण वध्यो थको व्हे, ने मर जावे, तो काम करवा वाळा मनखाँ भेळा जाय खटके, ने यूँ ही तमोगुण रो वेग आय रियो व्हे, ने शरीर छूट जावे, तो मूढ़ जूण (जनावराँ) में जनम पाय लेवे ॥१५॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥

जाण यूँ शुद्ध सुख ने, फळ सात्विक कर्म रो ।
रज रो फळ है दुःख, अज्ञान तम रो फळ ॥१६॥

ई जश्यो कर्म करे, वश्यो गुण वणी वगत में आय जावे। आछा कर्म रो फळ आछो निर्मळ हीज होवे है। ईं ने हीज सतोगुण कें वे है। यूँ ही रज रो फळ दुःख, ने कर्म रो फळ अज्ञान है ॥१६॥

सत्वात्संजायते ज्ञानं, रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

व्हे सतोगुण शूँ ज्ञान, रज शूँ लोभ ऊपजे ।
तम शूँ मोह अज्ञान, भूल ईं सव नीपजें ॥१७॥

जशीं वेल, वश्या ही फळ लागे हीज। सतोगुण शूँ ज्ञान व्हे, रज शूँ लोभ हीज व्हे, ने वेपरवाही, मूरखता तमो गुण शूँ व्हे वे। ने ई तो अज्ञान हीज है, पण जतरो अणाँ गुणाँ रो बंध है, वो सव अज्ञान शूँ है हीज ॥१७॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१८॥

ऊँचा सतोगुणी जावे, राजसी वच में वशे ।
तामसी नीचगुण रा, नीचे नीचे परा पड़े ॥१८॥

सतोगुण में रे'वा वाळा ऊँचा जाय है, रजो गुण वाळा वच्चे ही ठे'र जावे है, ने नीचा गुण में रे'वा वाळा तमोगुणी नीचा उतर जावे है। यूँ ईं तीन ही गुण आप आप रो असर करे है ॥१८॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भवं सोऽधिगच्छति ॥१९॥

गुणाँ ने करता देखे, अकर्ता आप ने गणे ।
जदी यो देखवा वाळो, पावे म्हारा सरूप ने ॥१९॥

ई गुण तो थें देख ही लीधा। जदी देखवा वाळो या देख लेवे, के गुणाँ रे शिवाय और करवा वाळो कोई नी है, अणी ने अणी वात रे साथे ही जाण्यो के व्हा, सव जाण्यो। वणी तो एक अणाँ गुणाँ शिवाय

और हीज वड़ी वात जाण लीधी। जाण कई लीधी सदा जाणवा वाळो व्हे गियो, ने वो तो म्हारो रूप पाय लीधो ॥१९॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

देह रा गुण ई तीन, देह वाळो तजे जदी ।
होवे अमर यो खोवे, जन्म मौत जरा दुख ॥२०॥

यो शरीर वाळो अणी शरीर में व्हेवा वाळा अणाँ गुणाँ शूँ न्यारो निकळ जावे, ने ईं में अवकाई कई पड़े है। (तीन ही गुणाँ रा तीन पावंड़ा है।) नें आगे तो पछे अमृत है। वठे तो जन्म, मौत, जरा ने सब दुखाँ शूँ छूटणो है। गुणाँ में जे'र रो भोग है ने याँ शूँ आगे अमृत रो भोग है ॥२०॥

अर्जुन उवाच ।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥२१॥

अर्जुण कही ।

छूटे गुण कणी भाँत, वीं रो आचार व्हे कस्यो ।
तीन ही गुण छूट्या ई, जाण जे या कणी तरे ॥२१॥

अर्जुण अरज कीधी, हे प्रभो ! ई सिर्फ तीन हीज गुण है, पण अणां शूँ न्यारो कूँकर व्हे वाय है। क्यूँ के गेला रो शेलाण जो जाण में व्हे, तो भटके नी। ईं शूँ ईं रा शेलाण कई कई है। या तो वात है हीज के अणी गेला में रूँखड़ा, भाटा, मंगरा रा तो शेलाण व्हेगा ही नी, पण कणी आचार शूँ ने कूँकर अणां तीन ही गुणाँ ने पार करणी आवे ने अमृत मले। क्यूँ के गुणाँ शिवाय तो कई दीखे ही नी, जदी पार कूँकर जवाय ॥२१॥

श्री भगवानुवाच ।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च, मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि, न निवृत्तानि कांक्षति ।।२२।।

श्री भगवान् आज्ञा कीवी ।

ज्ञान अज्ञान करणो, ईं तरे गुण तीन ही ।
आयां शूँ घबरावे नी, गयाँ री चाह नी करे ।।२२।।

श्री भगवान् हुकम कीधो, के हे पाण्डव! 'थूँ शाँची के'है । ई दीखे जी में (ज्ञान) भी हे ईज ही ने प्रवृत्ति (क्रिया) भी है हीज, ने मोह (अज्ञान) है हीज, ने ई तीन ही शरीखा तो साथे ही रे'वे ही कोई नी । एक वदे जदी दो नी दीखे । अणी में वदे जणी रो अमूझो नीं करे ने मटे जणी ने नी चावे । यो हीं छूटणो है ।।२२।।

उदासीनवदासीनो, गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव, योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।।२३।।

शायखी ज्यूँ सभी देखे, गुणाँ शूँ ज्यो डगे नहीं ।
गुण ई वरते यूँ ही, जाण ने यूँ रहे थिर ।।२३।।

आपणे अणा शूँ कई लेणो देणो नी है, यूँ जाणने ज्यूँ कोई देखवा वाळो बैठो बैठो देख्याँ करे, यूँ ही अणा गुणाँ रा फेर फार शूँ ज्यो नीं डगे, ने ज्यो गुण हीज वरत रिया है, अणीज जाण में लागो रे'ने, नाम भी अठी रो उठी नी व्हे, कठी भी नी झुके ।।२३।।

समदुःखसुखःस्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरः, स्तुत्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।२४।।

धन धूळो स्तुती निन्दा, सुख दुःख भलो बुरो ।
गणे शरीखा शारां ने, धीर ज्यो थिर आप में ।।२४।।

सुख, दुःख गारो, भाटो, सोनो, आछो, बुरो, आपणी निन्दा ने स्तुति अणा ने शरीखा ही (गुणाँ में ही) गणे ने आप अणा में जजम

भर्यो भी नी टेरे, पण आपाँ में ही ज रे'वे । वो धीरज रा सुभाव ने नी छोड़े, ने सुभाव कश्यो छूटे थोड़ो ही है ॥२४॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

सम ज्यो शेण वैरी में, मान ने अपमान में ।
आरम्भ सब जीं छोड़्या, गुणातीत कहाय वी ॥२५॥

यूँ ही मान अपमान में भी शरीखो रे'वे, वैरी, ने शेण में न्यारो ही रे'वे । मतलब यो है के, सब व्हेवा,ने मटवावाळी वाताँ शूँ सरोकार नी राखे वो हीज गुणातीत वाजे हैं । यो गुणाँ शूँ अतीत नाम ही ईं रो सुभाविक लक्षण शमझणो चावे ॥२५॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

म्हने ही एक ने ही ज्यो, सेवे है भक्तियोग शूँ ।
छूट ने याँ गुणा शूँ वो,ब्रह्म रो रूप व्हे शके ॥२६॥

अणा गुणाँ शूँ छूटवा रो एक शूधो उपाय यो भी है, के म्हने अचल भक्ति रा योग शूँ सेवे तो वो शे'ल में ही ऊपरे किया गुणाँ ने उलाँघ ने ब्रह्मरूप व्हे जावे । ब्रह्मरूप हीज है, तो भी जदी वो यूँ के' वावा लागे (जणाय जाय) ॥२६॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥२७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
"गुणत्रयविभागयोगो"नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

ब्रह्म अमृत रो स्थान, अनंत सुख धर्म रो ।
म्हने ही जाण थूँ स्थान, अविनाशी अनन्त रो ॥२७॥

ॐ तत्सत् इति श्री मद्भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्णार्जुन संवाद में "गुणत्रयविभागयोग नाम" चवदमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥१४॥

म्हारी तो भक्ति करे, ने ब्रह्मरूपी कूँकर व्हे जाय? यूँ भेम नी करणो, क्यूँके अविनाशी, ने अमृत, ने सदा रो (सनातन) धर्म, ने साँचो सुख, ने ब्रह्म ई सब नाम म्हारे हीज आशरे है, अर्थात् म्हने हीज जणावे है ॥२७॥

ॐ वो साँचो यूँ श्री भगवान् री गाई थकी उपनिषद् ब्रह्मविद्या में योगशास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुण रा सम्वाद में "गुणत्रय विभागयोग" नाम रो चवदमो अध्याय पूर्ण व्हियो ॥१४॥



॥ ॐ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

श्री भगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥

ॐ पनरमो अध्याय प्रारंभ ।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

ऊँची जड़, तळे डाळा, अनाशी पीपळो अश्यो ।
वेद है पानड़ा ईं ने, जाण्यो सो वेद जाणग्यो ॥१॥

एक पीपळो अविनाशी है, वेद ही वणी रे पानड़ा है, ने वो ऊँची जड़ वाळो, ने नीचे शाखा वाळो वाजे है। जो वणी पीपळा ने जाणे है, वो ही वेद ने जाणे है ॥१॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥२॥

चोफेर डाळाँ गुण री अणी रे, है पानड़ा इन्द्रिय स्वाद ईं रे ।
जड़ाँ जमी में पसरी घणी है, वी कर्म रा बंधन री बणी है ॥२॥

अणी री शाखा नीची तो है हीज, पण ऊँची भी फैली है, वी तांतणा (गुणाँ) शूँ गूंथावती जाय, ने वणाँ मूँ भूँगा फूट ने, फेर आगे बढ़ता जावे है, ने ईं नरम नरम नाना नाना पीळा पीळा हरया हरया वणी रे पाना छाय रिया है। नीचे भी वणी री एक नवे एक, यूँ नरी जड़ां मूं जड़ां मूळा बंध-बंध ने उळझ-उळझ अणी मनुष्य लोक में ही वी कर्म बन्धन रा नाम री आंटां खावती थकी छाय री है ॥२॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा ॥३॥

नी मध्य आदी नहिं अन्त ईं रो, मले न आधार सरूप ईं रो ।
यो पीपळो है गहरी जड़ाँ रो, वेराग है शस्त्र उखेलवा रो ॥३॥

अणी रो साँचो रूप है जश्यो अठे कठे ही लाधे ही नी है । लाधे कीने, अणी शूँ जगाँ खाली ही नी है । नी ईं रो आदि, ने नी ईं रो अन्त भी मले है, अश्यो छाय गियो है । अणी गाढ़ी जड़ाँ जमाय दीधी है । ईं शूँ ईं ने असंग नाम रा गाढ़ा कुराड़ा (शस्त्र) शूँ हीज काटणो चावे, पे'ली मुख्य काम यो हीं आपणो कर्त्तव्य है ॥३॥

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥४॥

वो हेरणो धाम उखेल ईं ने, पाछा फरे नी नर पाय जी ने ।
रे,णो वणी रें शरणे सदा ही, फेल्यो जणी शूँ शघळो सदा ही ॥४॥

जणी जगा जाय ने पाछा फेर आवे ही नी है, वणी जगा ने, पेली अणी री जड़ काट ने पछे हेरणी चावे । दूज्यूँ तो शामो कठी रो कठी अणीज में भमाय जाय, ने जणी शूँ या ठेठ री वणावट व्हेती आय री' है, वणी सब रा आदी रे हीज आशरे म्हूँ भी हूँ, या निश्चय व्हेणी चावे । है तो निश्चय या हीज तो भी की' है ॥४॥

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःख संज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययंतत् ॥५॥

निर्मोह निष्काम न मानधारी, विवेक वेराग विचार भारी ।
छूटचा जणी रा सुख-दुःख दोही, पावे परंधाम सुजाण सोई ॥५॥

व्हा! ! अणी अविनाशी ने पाया, वी तो मान, मोह, उळझवा रा फेर, दुःख, छेटी हेरणो, सुख-दुःख रा जोड़ा आदि जतरा विकार वाजे है, वणा शूँ छूट ने सदा सुजाण व्हिया थका पावे है, अथवा स्थान ही अश्यो है के वठे यूँ व्हे वाय जावे है ॥५॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

नी दिखाय शके जींने, चन्द्र शूरज आग भी ।
जठा शूँ नी फरे पाछा, म्हारो परम धाम वो ॥६॥

वो स्थान सूरज, चन्द्रमा वा दीवा शूँ नी दीखे है, अर्थात् उजाळा वणी शूँ दीखे, पण वो उजाळाँ शूँ नी दीखे है, ने दीखे है वठा शूँ फराय है, पण म्हारो धाम तो अश्यो है, के जठे गियाँ केड़े पाछो नी पड़ाय है। ईं शूँ ही वो परम वाजे है। वो म्हारो हीज है और रो नी है, यूँ जाण ॥६॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥

म्हारो ही अंश है जीव अनाशी जग माँय ने ।
खेंचे प्रकृति में शूँ यो आप में मन इन्द्रियाँ ॥७॥

अणी संसार में ठेठ शूँ यो फरतो फरे, ने शगत ही जीव वण रियो है, और कोई नी है। यो हीज म्हारो हीज अंश है। व्हा!! "कण जाण्यो ने मण जाण्यो", यो अणी प्रकृति में शूँ मन सेती छः इन्द्रियाँ ने आप में खेंच ने छें'टाय ले है ॥७॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥८॥

जणी शरीर में जावे, छोड़े यो जीं शरीर ने ।
अणाँ ने साथ लेवे ज्यूँ, फूलाँ मूँ वास वायरो ॥८॥

यो जणी शरीर में जावे, वा जणी में शूँ निकळे अणाँ छः ही इन्द्रियाँ ने कठे ही मेल नी देवे, पण लियाँ लियाँ ही फरे है, यो ही है ईं में। अबे ईं ने जीव गणो अथवा ईश्वर कें'वो। ज्यूँ वायरो सुगंध ने फूलाँ में शूँ ले ने सुगंध वाळो व्हियो फरे है, पण देखने देखे तो वा सुगन्ध वायरा वना नी है, तो भी वायरा री नी है। यो जीव,ने ईश्वर रो भेद है ॥८॥

सदा हिया में सब रे प्रकाशूँ, है भूलणो याद विचार म्हाँशूँ ।
वेदाँ सर्वां एक म्हने वखाण्यो, म्हें वेद कीधा सब वेद जाण्यो ॥१५॥

सब वेदाँ (ज्ञानाँ) शूँ म्हूँ हीज जाण्यो जावूँ हूँ, ने नी जाणणो करवावाळो भी म्हूँ हीज हूँ अर्थात् नी जाणवा शूँ भी म्हूँ हीज जाण्यो जावूँ हूँ। जदी जाणवा शूँ जाणणी आवे, वो तो म्हूँ हूँ हीज। म्हारे शूँ हीज याद, ने भूल दो ही है, ने म्हूँ कठे ही छेटी नी हूँ। पण सवाँ रे हिया में सदा हीं ठावो ठेको लाध जावूँ हूँ, खाली के'देवा री देर है ॥१५॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

विनाशी ने अनाशी ई, दो ही पुरुष है अठे ।
अनाशी मूळ याँ रो ने, विनाशी ई चराचर ॥१६॥

ई दो हीज पुरुष अठे ई चोड़े है, एक तो मटवा वाळो, ने एक वना मटवा वाळो। बस अणा शिवाय और कई नी है, ई जतरा वण्या थका है, वी सब मटवावाळा है, ने ई जणी शूँ वणे ने मटे हैं, वो अविनाशी वना मटवा वाळो है, यूँ (समझदार) के'वे है ॥१६॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥

पुरुषोत्तम तो न्यारो, वाजे परम आतमा ।
अखण्ड सब में आय, रह्यो ज्यो धार ईश्वर ॥१७॥

पण जो परमात्मा वाजे है, वो तो अणाँ पुरुषाँ ज्यूँ नी है, वो तो अणा शूँ विलकुल न्यारो हीं है, ने उत्तम पुरुष वाजे है। अणा तीन ही लोकाँ ने वो हीज धार रियो है, अर्थात् ई दो ही पुरुष वणी रे आशरे है, ने सवाँ में वो हीज शावत व्हे रियो है। ई भी अविनाशी,ने सामर्थ्य-वाळा दीखे है, पण या वणीज शूँ अणा रीं सब नभरी' है ॥१७॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

नाशी अविनाशी दोयाँ शूँ, यूँ हूँ म्हूँ हीज उत्तम ।
लोक ने वेद में वाजूँ, जी शूँ म्हूँ पुरुपोत्तम ॥१८॥

जदी म्हूँ नाशवान शूँ न्यारो हूँ हीज । क्यूँ के अविनाशी पुरुप शूँ भी उत्तम हूँ, तो और शूँ व्हूँ जी में कई के'णो । अणीज वास्ते म्हूँ पुरुपोत्तम रा नाम शूँ ठावो व्हे रियो हूँ । अठे देखो तो, ने वठे देखो तो, पुरुपाँ में पुरुपोत्तम म्हूँ हीज हूँ । या अणा ने देखवा शूँ चौड़े है ॥१८॥

यो मामेवमसंमूढ़ो जानाति पुरुपोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥

जो यूँ ज्ञानी म्हने जाणे, सदा पुरुष उत्तम ।
वो सभी जाणवा वाळो, सवाँ ही में म्हने भजे ॥१९॥

जो म्हने यूँ शावचेत व्हे ने एक दाण भी अणाँ पुरुपाँ शूँ उत्तम जाण लेवे, वणी सव जाण लीधो । हे भारत! पछे तो सव भाव शूँ, वो म्हारो हीज भजन करवा लाग जावे है । क्यूँ के यो हीज म्हारो रूप है ॥१९॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे "पुरुषोत्तमयोगो" नाम पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

महागुप्त कह्यो शास्त्र, यो थने म्हूँ नरेश ने ।
वीं किया काम सारा ही, ई ने जाण्यो सुजाण जो ॥२०॥

ॐ तत्सत् इति श्री मद्भगवद्गीता उपनिषत् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में "पुरुषोत्तमयोग" नाम रो पनरमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥१५॥

हे अनघ ! यूँ छुप्यो अविनाशी ने वणी शूँ भी छुप्यो पुरुषोत्तम रो ज्ञान, म्हें थने चौड़े ग्रो देख, वना लाग लपेट रे के'दीधो। अबे अणी शिवाय कई व्हे शके, थूँ ही के'। ई ने जाण्यो ने वो जाण्यो। बुद्धिमान् (बुद्धिवाळो) व्हे गियो, ने हे भारत! बुद्धिवाळो व्हियो ने पछे वणी रे करणो कई नी रियो, सब व्हे गियो ॥२०॥

ॐ वो साँचो यूँ श्री भगवान् री की'थकी उपनिषत् म ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुण रा सम्वाद में "पुरुषोत्तम" योग नाम गो पनरमो अध्याय पूरो व्हियो ॥१५॥



॥ ॐ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

श्री भगवानुवाच ।

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥

ॐ शोळमो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् आज्ञा करी ।

निर्भे नरेणता दान, थिरता ज्ञान योग में ।
इन्द्रयाँ री रोक शुधाई, जप ने तप यज्ञ भी ॥१॥

ॐ शोळमो अध्याय प्रारम्भ ।

श्री भगवान् फरमाई के अभय[1] व्हेणो, वुद्धि शुद्ध व्हेणी, ज्ञान-योग में (ठीक तरे' शूँ) थिरता, दान, इन्द्रियाँ ने तावे राखणी, यज्ञ, जप, तप, शूधा पणो ॥१॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥

नी हिंसा रीश चुगली, लोभ चंचळता नहीं ।
त्याग सांच दया शान्ति, नर्माई लाज व्हे सदा ॥२॥

दुःख नी देणो, साँच, रीश नी करणी, कंजूश नी व्हेणो, मन में सुखी रे'णो, को री भी खोटाई नी करणी, जीव री दया राखणी,

1—अभय शूँ आत्मसाक्षात् व्हे जावे, श्रद्धा शूँ करे तो, ने आत्म साक्षात् व्हे तो, ई आपो आप व्हे जावे, क्यूँ के वास्तविक अभय रो व्हेणो ज्ञान होज है।

लोभ नी करणो, नरमी, लाज, चळवीदा पणो नी करणो ॥२॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥

शुद्धी तेज क्षमा धीर, निरहंकार खार नी ।
दैवी सम्पत ई वाजे, देवताँ रा सुभाव भी ॥३॥

हे भारत! तेज, खमा, धीरप, पवित्रता, खार नी करणो, घणो मान नी राखणो, ई देवताँ रा सुभाव है, देवताँ में ई वाताँ व्हियाँ करे है ॥२॥

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानञ्चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥४॥

घमण्ड क्रूरता क्रोध, ढोंग अज्ञान फूँकरो ।
दानवी सम्पदा वाजे, दानवाँ रा सुभाव ई ॥४॥

पाखण्ड, घमण्ड, मठठ, क्रोध, ने कड़वा वचन ई एक हीज हैं। कड़वा वचन शूँ ई वाताँ जणाय जाय है । हे पार्थ ! ई सब अज्ञान शूँ हीज व्हे है । अणी वास्ते अज्ञान तो याँ में मुख्य है हीज । ई असुराँ (दानवाँ) रा सुभाव है । ई वाताँ देताँ री आड़ी रा मनखाँ री बापोती री जागीरी है ॥४॥

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निवन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥५॥

देवी सुभाव रा छूटे, दानवी भाव रा बँधे ।
थूँ क्यूँ शोच करे पार्थ, थारो दैवी सुभाव है ॥५॥

अणाँ ने कें'वा रो म्हारो यो मतलब है के देवताँ रा ळखणाँ वाळो छूटे है, छूटे कूण? ई सुभाव हीज छोड़वावाळा है, ने असुराँ री आदताँ बाँधवा वाळीज है । थूँ शोच करे मती थारी बापोती में तो जनम शूँ हीज दैवी सुभाव आया है शो छूटे ही गा ॥५॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ।।६।।

मानवी दो तरे, रा व्हे, के दैवी केक दानवी ।
कह्या विस्तार शूँ दैवी, अवे ई शुण दानवी ।।६।।

हे पार्थ! सबाँ में सुभाव व्हे है, ने के'क तो देवताँ रा ने के'क असुराँ रा (देंताँ रा) व्हे हीज है । देवाँरा गुणाव तो जगाँ जगाँ थने के'तो ही आय रियो हूँ । अवे म्हारे नखा शूँ देंताँ रा लक्खण भी शुण ले, जी शूँ वी ओळखाय जाय, क्यूँ के जाण्या वना कूँ कर छोड़-मेल व्हे ।।६।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।७।।

शुद्धता और आचार, साँच रा नाम शूँ हँशे ।
वी करे मन भावे शो, नी पर्वा, पाप पुन्न री ।।७।।

वी देंत सुभाव रा मनख वाजे, जणाँ में करवा रो कई चर-अचर नी व्हे । वी अणी वात ने समझे ही नी । जी शूँ हीज पवित्रता कई आचार, ने साँच भी वणा रे भड़े ही व्हे ने नी निकळे ।।७।।

असत्यमप्रतिष्ठम् ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहेतुकम् ।।८।।

जग झूठो निराधार, पे'ली रा कर्म शूँ नहीं ।
जोड़ा शूँ जन में शारा, कठे ईश्वर है कई ।।८।।

ई रो कारण यो है के वी धर्म री वाताँ जतरी है सब ने झूँठी हीज गणे है । आखा संसार ने कणी रे ही आशरे नी माने । एक शूँ एक वणे अणी वात ने भी माने नी, करणी रो फळ भोगावा वाळो भी कोई ईश्वर है, या भी नी माने । वी के'वे के ज्यूँ जोड़ा शूँ जनमता दीखे यूँ ही जनमे. ने अणी शिवाय और वणावा वाळो कोई नी है ।।८।।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।९।।

अश्या विचार धारे वी, आपघाती हिया वनाँ ।
घोर कर्म करे पापी, वैरी संसार घातक ॥९॥

अणी समझ ने वी गाढ़ी ठा'म राखे है, क्यूँ के वणा री समझ ओछी है। वणाँ आपा ने वगाड़ राख्यो है, नीची आतमा रा वी है, दूज्यूँ यूँ हीज तो कूँकर करे ? अश्यो विचार व्हियो, ने वणाँ री खोटायाँ रो कई के'णो? पछे तो वणाँ रा पाप रा काम शूँ संसार रो नाश व्हेणो ही चावे। क्यूँ के अश्यो विचार आयाँ केड़े पछे खोटायाँ शूँ रुकवा रो कोई कारण ही नी रियो। वी आपणा वा सबाँरा वैरी है ॥९॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥१०॥

अखूट कामनावाळा ढोंगी मानी महा मदी ।
नी छोड़े दुरबुद्धी वी, खोटा करम आदरे ॥१०॥

वणाँ री कामना कदी भी पूरी नी व्हे। दूज्यूँ ही कामना तो पूरी व्हे ही नी, ने वी अणी ने छोड़े ही नी; दूजा तो छोड़े है। वी मनखाँ ने दिखावाने आछा वणे है, वणी में भी वणाँ रे घमण्ड, बारली बड़ाई, देखा-त्रणो, माथे रे' है। ई शूँ थूँ वणाँ ने ओळख लीजे। माँय तो वी कोरा गडूरा हीज है। वी मूरखता शूँ खोटी हठ में हीज लागा रे' है ॥१०॥

चिन्तामपरिमेयाञ्च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥११॥

चिन्ता अनन्त वाँ रे व्हे, मर्याँ शूँ भी मटे न ज्या ।
संसारी सुख में राच्या, ई शूँ अधिक नी गणे ॥११॥

अणी शूँ वणाँ ने सुख तो नी व्हे है, मरे जतरे भी चिन्ता वणा री नी मटे, पण जन्म जन्म में वी दुःख हीज संचे है। ई रो कारण चौड़े ही है के कामना रा सुख, ने वणाँ री सामग्री ही वणाँ रे इष्ट देव है, ने वी या जाणे के अणी शिवाय ओर कई भी नी है। यो वणाँ रो अन्तश रो दृढ़ भाव है, जदी अबे कई के'णो? ॥११॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥१२॥

आशरी पाश में बन्ध्या, उळझे काम क्रोध में ।
पाप रा सुख रे तावे, धन संचे अधर्म शूँ ॥१२॥

आशा री तरें' तरें' री शेंकड़ाँ पाशाँ शूँ वी तण्याँ करे है, क्यूँके वणाँ रो गळो हीज पाश में नी आयो है, पण रूँ रूँ रे शेंकड़ाँ फन्दा में फन्दा फंदरिया है । काम,ने क्रोध में लागा रे' है या वात अणी शिवाय और कई शावत करे है? पण फेर खूबी या है के धन संचणो चा'वे, ने वो भी बेईमानी शूँ; ने फेर वी ने लगावे भी नालायकी रा कामाँ रा भोग में ॥१२॥

इदमद्य मयालब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥

अतरो आज तो एँठचो हात में वात या पण ।
यो तो है हीज पी फेर, काले वींने पळेट लूँ ॥१३॥

वणाँ रा मन में या लमटेर वधती ही जावें के म्हें आज यो ले लीधो, या वात म्हारी मन चीती व्हे जायगा, ने या तो व्ही व्हेवाईज है, पण अतरो धन फेर व्हे जायगा ॥१३॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥

यो वैरी तो लियो मार, दूजा भी वार माँय ही ।
कर्ता हर्ता सुखी भोगी, वळवान् बुद्धिमान म्हूँ ॥१४॥

म्हें अणी दुशमण ने तो यो मार लीधो, ने दूसरा ने भी खोड़वे दूँगा । क्यूँ के म्हूँ चावूँ ज्यूँ कर शकूँ हूँ, म्हारा में शक्ति है, ईश्वर, ने समर्थ हूँ, सुख भोगवा वाळो हूँ, म्हूँ वड़ो वड़ो काम से'ल में कर लूँ, असयो म्हारो हस्तामलक व्हे रियो है, म्हूँ महा वली हूँ, जणी शूँ सुखी हूँ ॥१४॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशोमया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

कुलीन ने धनी म्हाँ शा, और है कूँण काँगला ।
रीझाँ मोजाँ कराँ गोठाँ, शीताँग्या यूँ सदा वके ॥१५॥

म्हूँ धनवान शेठ हूँ, म्हारो कुळ घणो बड़ो है, म्हारे सरीखो और है कूँण? म्हूँ रीझाँ मोजाँ गोठाँ माठाँ करूँगा, यूँ अज्ञान में फेर वत्ता वधता जावे है । ॥१४॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

तरङ्गाँ में व्हिया वेंडा, फश्या अज्ञान जाळ में ।
काम रा भोग में भूल्या, शूगला नर्क में पड़े ॥१६॥

वेंडचारी नाईं वणाँ रो चित्त हरेक वात में भमतो हीज रे' है, अणी शूँ वणाँ ने महापागल समझणा, क्यूँ के मूर्खता री जाळ में नख शिख उळझ रिया है सो छूट ही नी शके । वी तो काम भोग में आपो भूल्या रे' है, अणी वास्ते महा शूगला वी नरक में पड़े है, पण अणी री भी वणाँ ने शुध नी है के कतरा शूगला नरक में म्हें पड़ रिया हाँ ॥१६॥

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

धन रा मान में मस्त, मन शूँ ही मरोड़ में ।
थोथा यज्ञ करे ढोंगी, शास्त्र री रीत छोड़ ने ॥१७॥

पण शामो अणी ने वी वड़ो म्होटो काम करणो माने है, ने अणी टशक में शूधा पग, ने आँखाँ ही नी रे' है, ने यो वड़ा पणो वीज मनोमन मान वेठे है । धन रा घमण्ड रो नशो तो वणाँ रे जीव रे लारे लागो ' रे है, जाणे छूटेगा ही नी, अणी नशा री हालत में वी नाम मात्र रा यज्ञ कर न्हाँखे है, गळथणाँ री नाईं वणाँ में सार तो कई

नी व्हे है, भलाँ पाखण्ड शूँ ने फेर बना विधि शूँ कीधा यज्ञ रो कई निकळे ॥१७॥

> अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
> मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

> घमण्ड बळ ने काम, क्रोध में उळझ्या रहे।
> म्हूँ आत्मा सब देहाँ में, म्हाँ शूँ राखे विरोध वी ॥१८॥

शामो वणी यज्ञ शूँ वणाँ में अहंकार, बळ, दर्प, बड़ा पणो, देखावणो, ने काम, ने क्रोध रो आशरो हीज मले है। पराया री देह में जो म्हूँ हीज आत्मा हूँ वणी रो वी खार करे, ने खोटायाँ करता फरे। वणा ने वो शुहावे ही नी। जदी वी आपाँ रो ही खार करे तो ओर री कई के'णी ॥१८॥

> तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
> क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥

> म्हूँ अश्या आपघात्याँ ने, नीचाँ ने जग जाळ में।
> दानवी जूण में हीज, पटकूँ वार वार ही ॥१९॥

यूँ म्हाँ शूँ खार करवा वाळा नीच क्रूर मनखाँ ने म्हूँ भी संसार में हीज फेंकूँ हूँ, पण माँय म्हारी कानी नी खेंचूँ। पे'ली ही वणा रो आसुरी सुभाव व्हे, ने फेर पछे वणीज आसुरी देंताँ री जूण में छेटी हीज वार वार फेंक्याँ करूँ हूँ, या हीज वणाँ रा कर्म री सजा है ॥१९॥

> आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
> मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥२०॥

> दानवी जूण ने पावे, मूढ़ वी जन्म जन्म में।
> नीचे ही उतरताँ जावे, म्हने पावे नहीं पण ॥२०॥

हे कौन्तेय! वी मूर्ख जन्म जन्म में अशी क्रूर जूण देंताँ रा सुभाव ने पावता, पावता म्हारी कानी तो आवे हीज नी, पण शामा फेर वणी

शूँ भी नीची गति में जाय पड़े है, अणी शिवाय और वत्ती कई सजा व्हे शके है ॥२०॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

काम क्रोध तथा लोभ, नर्क रा द्वार तीन ई ।
आपो भुलाय देवे ई, ई शूँ ई तीन त्यागणा ॥२१॥

नरक रो बारणो यो हीज है, ने अणी री तीन रीति है पण वात एक ही है के आपो नाश व्हेणो, वो अणाँ तीन शूँ व्हे है । काम, क्रोध, ने मुख्य तो लोभ है । ई शूँ ई तीन ही छेटी शूँ ही टाळ देणा; यो ही शमझणा पणो है ॥२१॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

जो छूटे नर्क द्वाराँ शूँ, याँ तीनाँ शूँ धनंजय ।
वो करे आँपणो आछो, पावे परमधाम ने ॥२२॥

हे कौन्तेय! ई तीन ही तम (अन्धारा) रा बारणा है, अणाँ तीनाँ में व्हे ने अंधारा (नर्क) में जवाय है । जो अणा बारणा शूँ टळ गियो वणी ने उजाळा में आपणो सब शूँ ऊँचो लाभ दिख गियो, ने वो वणी रस्ते चाल ने परम पद ने पाय लेवे है ॥२२॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः[1] ।
न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥२३॥

शास्त्र री रीति ने छोड़े, ज्यो चाले मनमोज शूँ ।
वीं ने लाभ नहीं होवे, सुख ने मोक्ष भी नहीं ॥२३॥

१—तीन ही तमद्वार में जावणो ही 'काम कार' है । मुख्य तो काम ने पेली कियो हीज हो ने ई शूँ ही दूजा है । गुणाँ री कार है वणी में बंध नी है, ने या हीज शास्त्र विधि है, पण या ह्वेवां री भी ने काम कार अणी शवाय नी ह्वेवा पे भी विपरीत भावना करणो ही काम कार शूँ वरतणो है । (शास्त्र सांख्य है) ।

शास्त्र हीज अँधारा शूँ उजाळा में लावा वाळा है। वणा रे कियाँ माफक नी चाल ने मन मुजब चाले वो सुख रो उपाय ही नी व्हे शके, ने पछे सुख कई है इं री शमझ ही नी आवे, जदी परम गति कूँकर पाय शके ? हाल तो अठा री ही शमझ में वीं रे गत्रोळो रे'तो जावे जदी अगाड़ी री कई के'णी ॥२३॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥२४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे "दैवासुरसंपद्विभाग योगो" नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

करणो शास्त्र के,वे शो, नटे शो करणो नहीं ।
शास्त्र री रीति व्हे ज्यूँ ही, चालणो चाहिजे अठे ॥२४॥

ॐ तत्सत् इति श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योग शास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में "दैवासुरसंपद्विभाग योग" नाम शोळमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥ ९ ॥

अणी वास्ते थने चा'वे के यूँ कराँ के यूँ कराँ, अशी पेचीदा वात में शास्त्र ने प्रमाण मान लेणो, वठे शास्त्र हीज अँधारा रो हेलो है, पण या वात याद राखणी के शास्त्र के'वे वणी विधि ने ठीक तरे' शूँ शमझ ने वणी माफक करणो चावे, यूँ ध्यान दे'ने शास्त्र रा गेला पे चाले वो नी भटके ॥२४॥

ॐ वो साँचो यूँ श्रीमद्भगवान् री भाषी थकी योगशास्त्र ब्रह्मविद्या री उपनिषद् में श्रीकृष्णार्जुन सम्वाद में "दैवासुर सम्पद्विभाग योग" नाम रो शोळमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥१६॥

ॐ

सप्तदशोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठातु का कृष्ण सत्वमाहो रजस्तमः ॥१॥

ॐ सतरमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण पूछचो ।

भजे विश्वास शूँ कोई, जो वना शास्त्र रीति रे ।
जणी रो गुण तीनाँ मूँ, कश्यो है कृष्ण सो कहो ॥१॥

ॐ सतरमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण[1] अर्ज करी के हे कृष्ण! जी मनख शास्त्र री रीत ने छोड़े, पण आपणाँ विश्वास शूँ हीज आछा काम करे, वी कणी में गण णाँ ? वी कई तम (अंधारो)-आप हुकम कीधो वणी में ठे'र रिया है, के सतो गुणी है, के रजो गुणी, क्यूँ के शास्त्र नी है तो भी श्रद्धा तो हैं ॥१॥

श्री भगवानुवाच ।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रृणु ॥२॥

१—अर्जुण रो अभिप्राय शास्त्र शिवाय री श्रद्धा रो है । भगवान् रो भाव यो है के शास्त्र शिवाय तो कई है ही नी । तीन गुणां रो वर्णन ही शास्त्र करे है । अणी वास्ते सात्विकी श्रद्धा उत्तम है, ने वीं ने ही म्हें शास्त्र कियो है, ने राजसी तामसी वाळी श्रद्धा शास्त्र नी है, पण काम राग युक्त ह्वेवा शूँ वी अणी ने ही शास्त्र माने है, क्यूँ के ई अणी में ही तन्मय ह्वे रिया है ।

श्री भगवान् आज्ञा करी।

जन्म शूँ होय विश्वास, जीवाँ रा तीन भाँत रा।
सात्वकी राजसी और, तामसी सो सभी सुण ॥२॥

श्री भगवान् हुकम कीधो, के वास्तव में मनख में श्रद्धा हीज मुख्य है, ने तीन गुण रो सब संसार व्हेवा शूँ श्रद्धा भी अणा तीन ही तरे' री मनखाँ में आपो आप ही व्हियाँ करे है। अबे वी तीन ही तरे'री श्रद्धा यने के' वूँ हूँ, थूँ अणी ने ध्यान दे ने सुण जे, क्यूँ के यो आत्म ज्ञान हीज है ॥२॥

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥

पे,ली री भावना होवे, होवे विश्वास भी वश्यो।
जीव विश्वास रूपी है, कहूँ सो तीन भाँत रा ॥३॥

हे भारत! सबाँ में जश्यो जीव व्हे वशी ही श्रद्धा व्हे, ने श्रद्धा व्हे वश्यो जीव व्हे, अणी वास्ते अणी पुरुष ने थूँ श्रद्धा रो हीज रूप शमझ, जो जणी श्रद्धा वाळो, वो वो हीज शमझणो ॥३॥

यजन्ते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥४॥

भजे सात्विक देवाँ ने, यक्ष राक्षस राजसी।
प्रेत भूत पिशाचाँ ने, भजे मानव तामसी ॥४॥

सात्विक देवताँ री सेवा करे, राजस यक्ष राक्षस ने पूजे, ने अणाँ सिवाय रा प्रेत, भूत, राड़ा, शगताँ ने तामस श्रद्धा वाळा पूजे है। वणाँ ने आपणाँ सुभाव मुजब इष्ट भावे ॥४॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥५॥

१—सात्विकी श्रद्धा वाळो सात्विक, राजसी वाळो राजस, यूँ ही तामस।

घमण्डी ढोंग वाळा जी, कामना शूँ बँध्या थका।
वना ही शास्त्र रे ऊँधी, तपस्या घोर आचरे ॥५॥

दानवाँ री श्रद्धा वाळा, शास्त्र में नी कियो व्हे अथवा वश्या ही सुभाव री रीत शूँ घोर[1] तप करे, ने वणी में देखावट, ने घमण्ड मल्यो थको व्हे है, ने कामना ने संसारी आसक्ति घणी जोरदार वणी तप में मली रे' है ॥५॥

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥६॥

म्हने जीव सरूपी ने, सन्तापे मूढ़ वी वृथा।
शुकावे देह वाँ रो थूँ, जाण विश्वास दानवी ॥६॥

वी अचेत[2] शरीर माँयला तत्वाँ ने खूब खेंच ने तोड़ न्हाँखे है। वास्तव में तो शरीर रे माँय ने सबाँ रो प्यारो आत्मा म्हूँ हूँ, वणी रा दुख रो भी विचार नी राखे। वणाँ रो थूँ असुर सुभाव (निश्चय) जाण ले। क्यूँ के 'आत्मिक सुख रो विचार नी, वो ही असुर है'; यो लक्षण याद करले ॥६॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥७॥

भावे भोजन शाराँ ने, तीन ही भाँत रा अणाँ।
यज्ञ ने तप ने दान, याँ रा भी भेद तीन ही ॥७॥

आहार भी अणाँ तीनाँ रे ही न्यारा न्यारा पसन्द रा व्हे है। वणाँ आहाराँ रा भी तीन भेद है। यूँ ही यज्ञ, तप तथा दान भी तीन-तीन तरे'रा व्हे है। ई अबे वणाँ रा न्यारा-न्यारा भेद भी थूँ ध्यान दे ने

१—अशी तो मे'नत करे ने फेर नीची (दानवी) श्रद्धा क्यूँ राखे, अणी रो उत्तर "दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः" है।

२—अणी में शामों दुःख शूँ दुःख व्हे, अश्यो क्यूँ करे? ई रो उत्तर काम राग शूँ वी अचेत व्हे रिया है।

शुण ले। जणी शूँ आछा बुरा री खबर पड़ जावे। व्हा, अणी शिवाय और शास्त्र कई व्हे है ॥७॥

आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याःस्निग्धाःस्थिरा हृद्या आहाराःसात्विकप्रियाः ॥८॥

वढ़ावे बळ आरोग्य, सुख आयुष ने रुची ।
मीठा रसीला थिर ने, आछा भोजन सात्विकी ॥८॥

आयु रा देवा वाळा, यूँ ही सतोगुण वधावा वाळा, बळ, निरोगाई, सुख, रुची ने भी वढ़ावे ने रसीला, चीकणा, थिरता रा,ने तृप्ति देवा वाळा आहार सतोगुणियाँ ने सुहावे है ई उत्तम है ॥८॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

वळना चरका भारी, खाटा रूखा कटू अश्या ।
उपावे रोग ने दुःख, शोक भोजन राजसी ॥९॥

कड़वा, खाटा, खारा, घणा वळवळता, तीखा, रूखा, गरमी करवा वाळा, ई आहार दुःख, शोक, ने रोग देवा वाळा व्हे है, ने रजोगुणी अणाँ ने पसन्द करे है ॥९॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

ठंडा शूखा शड़्या एँठा, वाशी ने अपवित्र जी ।
अश्या आहार शूँ राजी, तामसी जीव होय जो ॥१०॥

ठंडा, नरी देर रा, शूखा, रसहीणा, बाशी, शूगला ने जी एंठा भी व्हे,ने जणाँ रे खावा री धर्म ना के'वे, अश्या भोजन तामसी मनखाँ रे शौख रा है ॥१०॥

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥११॥

जी निष्काम करे यज्ञ, करणो धार चित्त में ।
शास्त्र री रीत शूँ वाँने, सात्विकी जीव जाणणाँ ।।११।।

अबे तीन तरे'रा यज्ञाँ में विधि पूर्वक जो कीधो जाय, ने फळ री इच्छा वना रा करे, आपणो कर्तव्य जाण ने हीज शान्ति सहित करे, वो सात्विक यज्ञ वाजे है। सात्विक री होड़ दूजा नी करे ।।११।।

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।।१२।।

कामना राख ने केक, लोगाँ देखावणाँ करे ।
थूँ अश्या यज्ञ ने पार्थ, जाण राजस भाव रा ।।१२।।

हे भरतश्रेष्ठ ! जणी में फळ, ने चाय, ने के मनखाँ देखावा रे वास्ते हीज करे, वणी यज्ञ ने थूँ राजस जाण ।।१२।।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।१३।।

मन्त्र रीत नहीं जीं में, अन्न ने दक्षिणा नहीं ।
वना विश्वास रो यज्ञ, तामसी नाम रो कह्यो ।।१३।।

वना विधि रे, वना मन्त्र रे, वना अन्नादि, वना दान रे, ने वना विश्वास रे करे अश्या यज्ञ ने तामस के' है ।।१३।।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।१४।।

देव प्रिय गुरु ज्ञानी, पूजणाँ शुद्ध शूधता ।
ब्रह्मचर्य दया साधे, यो है तप शरीर रो ।।१४।।

अबे तीन ही प्रकार रा तप रा तीन भेद शुण। देवता, ब्राह्मण, गुरू, शमझणाँ रो आदर, पूजा, पवित्रता, ने शूधाई, ब्रह्मचर्य, ने अहिंसा तो मुख्य है हीज, ई शरीर रा तप वाजे है ।।१४।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितञ्च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनञ्चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।।१५।।

साँची ने हित री के,णी, दूखती कहणी नहीं ।
जपणो परमात्मा ने, वाणी रो तप यो कह्यो ॥१५॥

दूजा रे चुभती वात नी करणी । शाँची, शुहावणी, ने वणी शूँ लाभ अवश्य व्हेणो तो चावे हीज, शास्त्र रो मनन (ने नाम रो जप हीज यो है हीज) यो वाणी रो तप वाजे है ॥१५॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥

मूँन ने मन री रोक, माँय वा'रे प्रसन्नता ।
मन रो तप वाजे यो, शुद्ध पर्णाम राखणो ॥१६॥

मन साफ़ रे'णो, देखताँ ही करड़ा पणो नी, (सुहावणा पणों) कम बोलणो, आपा ने अधीन राखणो, (यो मन शूँ सम्बन्ध राखे है, मुख्य तो शुद्ध भाव चावे) यूँ यो मानस (मन रो) तप वाजे है ॥१६॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥१७॥

पूरा विश्वास शूँ तापे, तप ई तीन भाँत रा ।
थिर रहे फळ नी चावे, शो कह्यो सात्विकी तप ॥१७॥

यूँ काया, वाचा, ने मन रा तीन ही तप किया; अणाँ में भी एक-एक रा तीन भेद है । अणाँ तीन ही तरे'रा तपाँ ने मन थिर वाळा, मनख फळ छोड़ ने पूरा विश्वास शूँ करे तो ई श्रेष्ठ सात्विक वाजे ॥१७॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥१८॥

सत्कार मान पूजा वा. ढोंग शूँ जो तपे तप ।
अठे वो राजसी वाजे, नाशमान शही नहीं ॥१८॥

ईज आदर-मान रे वास्ते, (पूछावा ने) पूजावाने, ने खाली

देखवाने हीज कीधा जाय तो ई अठे हीज थोड़ा टकवा वाळा, ने डग-मगाता थका राजस वाजे ॥१८॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥१९॥

दूजा ने पीड़वा केक, आँपणी देह पीड़वा ।
मूढ़ जो हठ शूँ तापे, सो कह्यो तप तामसी ॥१९॥

मूर्खता री हठ शूँ, ने वाभी मन शूँ ही कीधीं व्हे जणी शूँ आप दुख देखने दूजाने भी दुःखी करवा ने जो करे तो तामस तप वाजे है । ई तीनाँ रा ही तीन तीन भेद के'दीधा, अणाँ ने ध्यान में राख़णा ॥१९॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥२०॥

उपकार वना देवे, देवणो धार पात्र ने ।
समे,पे स्थान पे देवे, दान वो जाण सात्विकी ॥२०॥

अबे तीन तरे'रो दान शुण, जो देणो है यूँ विचार ने आप रा पाछा उपकार री इच्छा नी राखे, ने जगाँ, समय, ने पात्र में दीधो जाय वो सात्विक श्रेष्ठ है ॥२०॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥

चावना राख ने देवे, अथवा उपकार शूँ ।
मन में घबरातो ज्यो, वो कह्यो दान राजसी ॥२१॥

ने जो दान पाछा उपकार री मनशा शूँ वा ओर कणी लाभ रो विचार करने पछे दीधो जाय, वो मतलब रो दान मनमें दुख (अमूजणी) सेती देवाय है, (देणो पड़े है) वो दान राजस कियो है, शो विचार लेणो ॥२१॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

देश काल वना जोई, देवे दान कुपात्र ने ।
अपमान अवज्ञा शूँ सो कह्यो दान तामसी ॥२२॥

जो देश, काळ, पात्र शूँ ऊँधो व्हे, अपमान, ने अवज्ञा शूँ दीधो जाय वो तामसी कियो जावे है, ई दान तीन व्हिया ॥२२॥

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥

ॐ[1] तत्सत् यो कह्यो नाम, ब्रह्म रो तीन भाँत शूँ ।
ब्राह्मणाँ वेद यज्ञाँ री, ई शूँ ही रचना हुई ॥२३॥

अबे महामन्त्र शुण । ॐ तत्सत् यूँ यो परमात्मा रो तीन तरे' शूँ ठेट रो नाम है। अणी तीन तरे'रा नाम शूँ हीज सब ब्राह्मण, वेद, यज्ञ पे'ली पे'ल वण्या है। यो हीज सबाँ रो मूळ है। यूँ तो सब वीं रो नाम है, पण मूळ री बात या है के ॐ तत् सत् ई में सब आय गियो ॥२३॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥२४॥

अणीज शूँ ब्रह्म ज्ञानी ॐकार कहने सदा ।
जथा विध करे कर्म यज्ञ दान तपादिक ॥२४॥

अणी वास्ते ब्रह्म ज्ञानियाँ रे निरन्तर थने पे'ली किया जी यज्ञ, दान, तप, ने क्रिया मात्र ॐ अणी नाम ने के'ने हीज व्हे है, अर्थात् ॐकार मय हीज वाँ री सब क्रिया व्हियाँ करे है, सो भी सतत ॥२४॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥२५॥

१—ॐ अङ्गीकार रो (तृप्ति रो) वाचक है सो ब्रह्म ज्ञानियां री क्रिया अणी भाव में व्हे है। मुमुक्ष री तत्(वणी)रे वास्ते, ने लौकिक में सत् रे वास्ते। ई ज्ञान, उपासना, कर्म है।

मोक्ष री चावना वाळा, तत् यूँ कह ने सदा।
चावना छोड़ ने शाधे, यज्ञ दान तपादिक ॥२५॥

यूँ ही जी मोक्ष नी व्हिया पण मुमुक्षु है वी यज्ञ, दान, तप आदि क्रिया अनेक प्रकार री फळ री इच्छा छोड़ने तत् अणी नाम रे शाथे करे है, तत् मय व्हे है ॥२५॥

सद् भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

सत् उत्तम ने के,वे, शोभा रा कर्म ने पण ।
सत यूँ ही कहे पार्थ, शाँच ने भी सभी जगाँ ॥२६॥

हे पार्थ! अबे 'सत्' नाम रो अर्थ शुण, शाँच रा अर्थ में वा आछा सज्जनता रा अर्थ में भी आपणे सबाँ रे यो 'सत्' यूँ शब्द वापरवा में आवे है, शो थूँ देखे ही है। यूँ ही बड़ो महिमा रो कर्म व्हे वठे भी 'सत्' शब्द काम में लायो जाय है, वणी रे शाथे लगाय दे है ज्यूँ, 'सत् कर्म' ॥२६॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

दान यज्ञ तपस्या में, थिरता ने कहे सत ।
दान आदिक रा कर्म, कहावे सत कर्म ही ॥२७॥

यज्ञ में, दान में, ने तप में, थिरता ने भी 'सत्' थूँ कियाँ करे है। अणी वास्ते अणाँ रे वास्ते ज्यो कर्म कीधो जाय वो हीज 'सत्' यूँ वाजे है (सत् कर्म नाम रो है) यूँ थने सत्कर्म भी शमझायो ॥२७॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिपत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-सम्वादे "श्रद्धात्रयविभागयोगो" नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

वना विश्वास ज्यो होम्यो, दीवो ताप्यो कियो सभी ।
वो असत् नाम रो वाजे, नी अठे नी वठे मले ॥२८॥

ॐ तत्सत् इति श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्री कृष्ण अर्जुन संवाद में "श्रद्धात्रयविभागयोग" नाम सतरमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥१०॥

अबे हे पार्थ! वना श्रद्धा (विश्वास) रे जो होम्यो, दान कीधो, तप कीधो, वा जो कई कीधो, पण थूँ के'वे ज्यूँ श्रद्धा शूँ नी कीधो, तो वो हीज असत् वाजे है। वो नी तो अठा रा काम रो, नी जो परलोक रा अर्थ रो है, जीं शूँ श्रद्धा ही मुख्य है ॥२८॥

ॐ तत् सत् यूँ श्री भगवान् री भाषी ब्रह्मविद्या री उपनिषत् योगशास्त्र में श्रीकृष्ण अर्जुण रा सम्वाद में "श्रद्धात्रयविभागयोग" नाम सतरमो अध्याय पूर्ण व्हियो ॥१७॥



ॐ

अष्टादशोऽध्याय: ।

अर्जुन उवाच ।

सन्यासस्य महावाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश, पृथक्केशिनिषूदन ।।१।।

ॐ अठारमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण कही ।

संन्यास यूँ कहे कीने, त्याग कीने कहे प्रभू ।
न्यारो न्यारो कहो याँ रो, सार अर्थाय ने म्हने ।।१।।

ॐ अठारमो अध्याय प्रारम्भ ।

अर्जुण अरज करी, हे महाबाहो! संन्यास रो मतलव म्हूँ शमझणो चाऊँ हूँ, ने हे ऋषिकेश! त्याग रो कई मतलब है, यो भी शमझणो चाऊँ हूँ। हे केशिनिषूदन! अणा दोयाँ रो ही भेद म्हारे वाकव व्हेणो है। म्हूँ अणा ने[1] एक हीज जाण ने आपने घड़ी घड़ी रो पूछरियो हूँ ।।१।।

श्री भगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदु: ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागंविचक्षणा: ।।२।।

१--सांख्य और, कर्मयोग और, ने संन्यास और है, असली वात एक ही व्हेवा पे भी भेद पे' ली रो है। सांख्य, ज्ञान, त्याग वा योग पर्याय है। यां रो अर्थ कर्म रे साथे ज्ञान है। संन्यास=कर्म करणो छोड़ देणो है यो भाव है। ई सब समझ रीज वात करे है, पण छोड़णो कई वस्तु है? या वात नी शमझवा शूं आँधाँ रो हाथी व्हे रिया है। ई छोड़णो वारणे हीज ले वेठा है यो दोष है।

कामना रा तजे कर्म, वीं ने संन्यास जाणणो ।
कामना सब कर्मां री, छोड़े सो त्याग जाण थूँ ॥ २ ॥

श्री भगवान् आज्ञा कीधी के कामना रे वास्ते जे कर्म कीधा जाय, अथवा जणाँ कर्मां रा करवा शूँ कामना उपजे, अश्या कर्मां ने नी करणो (छोड़ देणो) अणी ने बारीक शमझ वाळा संन्यास शमझे है । सब ही कर्मां रा फळ ने छोड़ देणो, ईं ने चतुर त्याग कियाँ करे है । (फळ भी एक तरे'रो कर्म है, यूँ जाणे जी चतुर वाजे, ने यूँ जाण्याँ ने फळ छूटचो यो भावहै) ॥२॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥३॥

कर्मां में दोष होवा शूँ, त्यागणा यूँ कहे नरा ।
दूजा कहे यज्ञ दान, तपस्या छोड़णा नहीं ॥३॥

कतरा ही बुद्धिमान के' वे के कर्म में दोष व्हे हीज है, (कामना रे' हीज है) अणी वास्ते कर्म करणो हीज नी चावे, पण कतरा ही बुद्धिमान के' वे यज्ञ, दान, तप अणाँ कर्मां ने कदी नी छोड़णा चावे ॥३॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुष व्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥४॥

अब ईं त्याग में म्हारी, राय थूँ शुण अर्जुण ।
त्याग है तीन भाँताँ रे, वो कहूँ सब ही थने ।४॥

हे भरतसत्तम ! वणी त्याग में म्हारो निश्चय कई है, सो थूँ ध्यान दे ने शुण, हे पुरुषव्याघ्र! त्याग एक हीज नी है, गुणाँ शूँ अणी रा भी न्यारा- न्यारा तीन भेद किया है ॥४॥

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥५॥

यज्ञ दान तपस्या ने, करणा त्यागणा नहीं ।
पवित्र करवा वाळा, कर्म ई बुद्धिमान ने ॥५॥

या वात तो शाँचीज[1] है के यज्ञ, दान, ने तप रा कर्म ने तो नीज छोड़णो, यो तो जरूर करणो ही चावे। क्यूँ के यज्ञ, दान, ने तप शमझणाँ ने पवित्र करवा वाळा है ॥५॥

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥६॥

यज्ञ आदिक भी कर्म अहन्ता कामना वना।
करणा चाहिजे म्हारी, या सही राय उत्तम ॥६॥

पण अणी शूँ या हीज म्हारी राय है यूँ तो नी है, हे पार्थ! अणाँ ने भी संग, ने फळ छोड़ ने करणा चावे हीज, जदी दूसरा में संग ने फळ रो राखणो तो व्हे ही कूँकर शके? संग ने फळ दो नी है वात एक ही है। यूँ हरेक काम करणो यो म्हारो मत है, ने उत्तम मत है। मामूली वात जाणे मती, क्यूँ के यो दीखे शे'ल है, पण ईं री होड़ कणी शूँ ही नी व्हे, यो म्हारो निश्चय कीदो थको है ॥६॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥

यज्ञ आदिक कर्माँ रो, करणो त्याग नी कदी।
त्यागे अज्ञान शूँ ई तो, वाजे वो त्याग तामसी ॥७॥

अणी रे शिवाय जो कोई छोड़णो छोड़णो करे है, छोड़णो तो यो हीज है, पण मूर्खता शूँ कोई ठेठ शूँ लागा कर्माँ ने के'वे के म्हें कर्म छोड़ दीदा, तो[2] वो छोड़णो तामस वाजे है ॥७॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥८॥

१—'काम्य कर्माँ रो संन्यास' अणी रो दूसरा शब्दाँ में 'त्याज्यं दोषवत्' यूँ रूपान्तर व्हे गियो, यूँ ही 'सर्व कर्म फल त्यागः, रो 'यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं' व्हे गियो, ने अणाँ स्थूल शब्दाँ में वे'कावट आयगी। वणाँ में 'न त्याज्य' अणाँ अक्षराँ ने दे ले ने म्हूँ 'त्याज्य' ने शमझाय रियो हूँ, ने यो त्याग ने संन्यास तो एक ही है।

२—नी छूटे अश्या सुभाव रा कर्माँ ने के'वे के छोड़णा वो केवल अज्ञान मोह शूँ हीज है जीं शूँ तामस ही व्हियो, क्यूं के अणी री छूटवा री खासियत ही नी है वा कूँकर ह्वे शके?

अबकाई पड़े याँ में, देह ने भी परिश्रम ।
यूँ करयो राजसी त्याग, त्याग रो फळ नी मले ॥८॥

यूँ ही मेंनत शूँ डर ने छोड़वा रो नाम करे वो छोड़णो राजस हैं, ने यूँ छोड़वा रो फळ थोड़ो ही व्हे, यो तो वो जाणे के कर्म में तो दुःख पड़े जी शूँ छोड़ दूँ सो दुःख पड़े जी ने कुण नी छोड़े, पण यूँ त्याग थोड़ो ही व्हे ॥८॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्विको मतः ॥९॥

यज्ञ आदिक कर्मा ने, करणा धार जो करे ।
अहन्ता ममता छोड़, जाण सो त्याग सात्विकी ॥९॥

हे अर्जुण ! जो यूँ जाणे के काम तो व्हे हीज हैं, क्यूँ के ई तो नियत (शावत) व्हिया थका हैं । तो छूट ही नी शके । केवल संग ने फळ शिवाय खाते अण व्हेता ही वे शमझी शूँ मान राख्या है, अणाँ ने छोड़, करे वो सात्विकी साँचो त्याग है ॥९॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥

सुख रा जाण नी राचे, दुःख रा जाण नी डरे ।
त्यागी सन्देह शूँ हीणो, वो धीरो नित्य सात्विकी ॥१०॥

अश्यो त्यागी सतोगुण में गरक है । वना सन्देह रो, ने धारणा वाळो हैं, अणीज वास्ते वो आछा करमाँ में चाय ने उळझे नी, ने बुरा कर्मा शूँ खार भी नी करे । (आछा सुख रा ने बुरा दुःख रा शमझणा) ॥१०॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११॥

सघळा कर्म ने कोई, कदी भी छोड़ नी शके ।
कर्मा री वासना त्यागे, त्यागी नाम वणीज रो ॥११॥

शरीर धारी मात्र सब कर्मां ने छोड़ देवे या वात तो व्हेवा री ही नी है, या थूँ नक्की जाण, पण जो कर्म रा फळ रो त्याग करवा वाळो है वो हीज त्यागी है, यूँ मनख के'वे है। दूज्यूँ त्यागी तो वो ही कई है, हाँ शमझणो अवश्य वो हीज है, पण त्यागी है यूँ वाजे है ॥११॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मण: फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

आछा बुरा मँझोला यूँ, तीन ही कर्म रा फळ ।
ई भोगे कामना वाळा, त्यागी भोगे कधी नहीं ॥१२॥

कर्म रो फळ जरूर ही अश्यो त्यागी नी व्हे वी ने मर्याँ केड़े भी व्हे है, परन्तु असली संन्यास ऊपरे कियो जश्या ने तो क़दी कुछ नी व्हे है। वी फळ चाहचा, नी चाहचा, ने मिल्या थका यूँ तीन तरे' रा शिवाय त्यागी रे सबाँ ने ही व्हे है ॥१२॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

साँख्य वेदान्त भी के,वे, आत्म निर्लेप है सही ।
पाँचाँ शूँ व्हे सभी कर्म, याँ वना होय नी कई ॥१३॥

हे महाबाहो ! हरेक काम व्हे है, वणी री ई पाँच वाताँ मूळ है। अणा ने शमझ री हद्द जो साँख्य कपिल रूप शूँ म्हें कियो वठे की है; वी'ज आज थूँ म्हारा शूँ हीज वाकब व्हे जा, क्यूँ के सब कर्मां री सिद्धि अणाँ पाँचाँ शूँ हीज है, सो ध्यान राख ॥१३॥

अधिष्टानं तथा कर्ता करणञ्च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥१४॥

अहंकार तथा देह, इन्द्रचाँ रा देव इन्द्रियाँ ।
जाण थूँ पाँचमों प्राण, याँ शूँ ही कर्म व्हे सभी ॥१४॥

पे'ली तो अज्ञान (अविद्या) ही सबाँ रो मूळ है, अणी शूँ कर्ता

पणों आपणाँ में अण व्हे तो ही आवे, पछे न्यारी न्यारी इन्द्रियाँ आपणी व्हे, ने पछे तरे' तरे' री चेष्टा भी लारे लागे, ने अणी शूँ संस्कार, ने संस्कार शूँ पाछो यो चक्र चालतो ही रे' है ॥१४॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥१५॥

शरीर मन वाणी शूँ, कई भीं क़र्म होय जो ।
आछो वा अथवा खोटो, वीं रा ई पाँच कारण ॥१५॥

जतरो कई व्हे तो दीखे है, वो अणी पाँच पेड़ा रा रथ में हीज है, पछे वो कर्म शरीर रो,वाणी रो,मन रो व्हो, आछो व्हो, अथवा खोटो व्हो पण मनख अणाँ पाँच रे शिवाय कर ही नी शके है। पाँचाँ रे वा'रणे कोई काम नी है ॥१५॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥

तो भी जो करता माने, आप ने हीज केवल ।
वो वना ग्यान रो आँधो, शूझे वीं ने सही नहीं ॥१६॥

या वात जदी प्रत्यक्ष है, ने साँख्य जश्या शिरो मणि शास्त्र में साक्षी है, तो भी अणाँ शूँ न्यारा कैवल्य रूप आत्मा ने करवा वाळो मान वेठे वीं मनख ने कई गण णो? वणी री ऊँधी बुद्धी है। वणी, बुद्धी ने शमझवा रा काम में ही ठेठ शूँ नी लगाई दूज्यूँ चोड़े देखतो थको ही वयूँ नी देखतो ॥१६॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥१७॥

म्हूँ करूँ यूँ नहीं जीं रे, कर्मा में बुद्धि नी फंशे ।
वो मारे सब ने तो भी, नी मारे नी बँधे कदी ॥१७॥

पण जणी कुछ भी विचार की दो है, जणी रे अहंकार रो कीदो थको भाव नजराँ आगे है, जणी री शमझ अणी सत्यता ने मानगी है,

वो और कर्म तो कई पण अणाँ लोकाँ ने मार न्हाँखे तोई मारें ही नी है, क्यूँ के कर्म तो वो करे ही नी है, जदी गेले चालताँ दूजा रो अपटाळो वीं रे क्यूँ आवे? ने वो दूजा रे खातर कूँकर बंधे ॥१७॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

ज्ञाता ने ज्ञान वस्तू शूँ, कर्म री कामना वणे ।
कर्ता ने इन्द्रियाँ, वस्तू, कर्म याँ तीन शूँ वणे ॥१८॥

जाणवावाळो, जाणे शो, ने जाणवा री वस्तु, अणाँ तीन तरें शूँ हर एक कर्म कराय है। पछे करवावाळो, जणी शूँ करे शो, ने व्हे शो कर्म, अणाँ तीन तरें शूँ कर्म पकड़ाय है। (पण याद राख जे म्हें कियो जो केवल आत्मा याँ में एक भी नी है, ईतो छ ही वणी रे मूँडा आगला है) ॥१८॥

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१९॥

ज्ञान कर्म तथा कर्ता, तीन ही गुण भेद शूँ ।
कह्या है तीन भाँताँ रा, ध्यान शूँ शुण अर्जुण ॥१९॥

अणाँ मे'ला ने आप शमझ लेणो ही अकृत बुद्धि म्हें कियो है। अबे थूँ तो ईं ने जाण ने कृत बुद्धि व्हेजा। ई ज्ञान, कर्म, ने कर्त्ता गुण रा भेद शूँ तीन तीन तरें'रा हीज है अर्थात् गुणमय हीज है। गुणाँ रो हिसाब कीधो जाय है वठे अणाँ ने न्यारा न्यारा गणे है, वो ही साँख्य म्हारे शूँ यथार्थ शुण लेवा पछे कठेई उळझण बाकी नी रें'वे, जी शूँ या शुणवा जशी, ने ध्यान देवा जशी वात है; ईं ने यूँ गनारे मती ॥१९॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ॥२०॥

न्यारा न्यारा नराई में, देख एक मिल्यो थको ।
अनन्त अविनाशी जो, जाण थूँ ज्ञान सात्विकी ॥२०॥

जणी ज्ञान शूँ वस्तु मात्र में अविनाशी पणा ने देख तो रे'वे वो अविनाशी पणो सब न्यारी न्यारी वस्तुवाँ दीखे वणाँ में एक ही है यूँ जी शूँ जणाय, वो ज्ञान थूँ सात्विक जाण ले ॥२०॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ॥
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

जाणे जीं ज्ञान शूँ सारा, न्यारा न्यारा चराचर ।
अश्या ईं ज्ञान ने पार्थ, जाण थूँ ज्ञान राजसी ॥२१॥

ने जो ज्ञान वस्तुवाँ में न्यारो न्यारो भाव करे, एक शूँ एक ने भली नी समझे, अश्यो भेद ज्ञान सवाँ में करे, अणी तरे' शूँ सवाँ ने जाणे, वणी ज्ञान ने थूँ राजस ज्ञान जाण ॥२१॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पञ्च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

वना विवेक ले मान, महा म्होटो हरेक ने ।
ओछो झूठो अश्यो पार्थ, जाण थूँ ज्ञान तामसी ॥२२॥

ने जो यूँ ही हर कणी एक वात में हीज उळझ जावे, ने वो भी अश्यो लागे ने उळझे के वणी शिवाय और गणे ही नी, ने देख ने देखे तो वा अदनी, ने शूँनीज वात व्हे; अश्या ज्ञान ने तामस कियो है। दूज्यूँ यो है तो घोर अज्ञान ॥२२॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते ॥२३॥

नित्तनेम करे नित्त, खार हेत करे नहीं ।
अहन्ता कामना होणो, कर्म सो पार्थ सात्विकी ॥२३॥

अबे गुणाँ रा तीन ही कर्म शुण, जो कर्म राग द्वेष रे वना कीधो जाय, अणी शूँ वणी में उळझाय नी, ने वो नियत (कुदरती) है, ने फळ री इच्छा वना रो हीज अश्यो कर्म कर शके है; वो अश्यो सात्विक वाजे है ॥२३॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥

अहन्ता लाय ने माँय, फळ ने चाव तो थको ।
करे मेंनत शूँ खूब, कर्म सो पार्थ राजसी ॥२४॥

ने जणी कर्म ने कामना वाळा करे, ने जो फेर अहंकार शूँ मल्यो थको व्हे, ने जो घणो जीव ने मेंनत शूँ कीधो जाय; वो कर्म राजस कियो है ॥२४॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५॥

नतीजो नाश ने पाय, जोर याँ रो विचार नी ।
अश्यो अज्ञान रो कर्म, कहावे पार्थ तामसी ॥२५॥

जणी कर्म ने मूर्खता शूँ ही आरम्भ कीधो जाय, जणी रे साथे रो साथे बन्ध है, वो नी शूझे जणी में आपणो हीज नाश है सो नी दीखे, जणी शूँ दूसरा ने भी दुःख व्हे वीं पे ध्यान नी जावे, जणी में आपणा आपा रो ही अन्दाज नी रे'वे, वो अश्यो कर्म तामस वाजे है ॥२५॥

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्विक उच्यते ॥२६॥

अहन्ता कामना हीणो, उमङ्गी धीरवान जो ।
समान हाण लाभाँ में, कर्ता वो सात्विकी कह्यो ।

अबे अणाँ कर्मां रा करवा वाळा रा भी तीन ही गुणाँ शूँ तीन तीन भेद व्हे जी शुण ले । 'म्हूँ नी' अशीज बोली जी रे माँयने शूँ निकळयाँ करे या संग शूँ छूटयाँ रे निकळे है, इं शूँ दृढ़ता ने उत्साह जणी रो साथ कदी नी छोड़े अर्थात् एक एक रो उमंग ने दृढ़ता वधाव करता रे'वे, अणी शूँ काम व्हे नी व्हे वणी में वणी रे विकार नीं व्हे, अश्यो कर्ता सात्विक, असली कर्ता वाजे है ॥२६॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७॥

अहन्ता कामना वाळो, लोभी जो दुःख दायक ।
हर्ष ने शोक में डूबे, कर्ता वो राजसी कह्यो ॥२७॥

शौकीन व्हे, फळ ने देखतो हीज रे', लोभी, हत्यारो सुभाव व्हे, पवित्र नी रे'वे, वात-वात में हर्ष ने शोक शूँ चेळा ऊँचा नीचा व्हेता ही रे'वे, अश्यो कर्ता ठेठ शूँ राजस कियो गयो, ॥२७॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥

न जोगो अदनो ढेटो, आळशी ठंट रोवण्यो ।
खारीलो कपटी भेमी, कर्ता वो तामसी कह्यो ॥२८॥

जीव ठकाणे नी रे'वे, मामूली वात में ठंट व्हे, कंटक व्हे, कीधो गुण कदी नी माने, आळसी व्हे, रोवण्यो व्हे, ने घणी देर करे वो तामस कर्ता ठेठ शूँ आदि विद्वान् साँख्य में के' है, सो आप्त वाक्य प्रत्यक्ष भी दीखे है ॥२८॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥२९॥

बुद्धी ने धीरता रा भी, गुणाँ शूँ भेद तीन ही ।
न्यारा न्यारा कहूँ थारा, पृथा रा पुत्र थूँ शुण ॥२९॥

हे धनंजय! अवे बुद्धि रा, ने धारणा (दृढ़ता) रा भी गुणाँ शूँ हीज तीन तरे' रा तीन भेद ध्यान दे' ने शुण, क्यूँ के बुद्धि ने, ने धारणा ने गुणाँ में ओळखी ने आतमा रो साक्षात् हीज शमझ, अणी शूँ म्हूँ ठीक तरे' के' वूँ सो थूँ आछी तरे' शूँ शमझ लीजे ने न्यारा-न्यारा बारीकी शूँ शमझ लीजे ॥२९॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३०॥

करणो छोड़णो वन्ध, मोक्ष काज अकाज ने ।
भय निर्भय ने जाणे, वा बुद्धी है सतोगुणी ॥३०॥

हे पार्थ! प्रवृत्ति ने निवृत्ति काज-अकाज भय-अभय बन्ध ने मोक्ष अणाँ ने है ज्यूँ जाणे वा सात्विकी बुद्धि वाजे है। अठे जाणवा वाळी बुद्धि जणाय री है या ओशान नी भूलाय जशी है ॥३०॥

यया धर्ममधर्मञ्च कार्यञ्चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१॥

जी शूँ अधर्म वा धर्म, काज और अकाज ने ।
नी पिछाण शके ठीक बुद्धी वा पार्थ राजसी ॥३१॥

हे पार्थ! जणी बुद्धि शूँ धर्म, ने अधर्म, काज, ने अकाज ने ठीक तरे' शूँ है ज्यूँ नी हीज जाणे, पण माने यूँ के म्हूँ ठीक जाण रियो हूँ, वा बुद्धि राजसी है ॥३१॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसा वृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२॥

जाणे अधर्म ने धर्म, आय अज्ञान माँय ज्यो ।
ऊँधी हीज सभी शूझे, है वा बुद्धी तमोगुणी ॥३२॥

हे पार्थ! ज्या बुद्धि अधर्म ने यो तो धर्म है, यूँ माने ई रो कारण वणी अँधारा में रे'णो है, ने अँधारा रा कारण शूँ हीज सब वाताँ ने ऊँधी हीज शमझे, वा तामसी बुद्धि हैं ॥३२॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी ॥३३॥

जणी धीरज शूँ ढावे, मन ने प्राण इन्द्रियाँ ।
योग में शूँ डगे नी ज्यो, धीरता वा सतोगुणी ॥३३॥

अवे धृति (बुद्धि री पकड़) भी तीन तरे' री शुण, जणी शूँ मन, प्राण, इन्द्रियाँ, क्रिया ने योग शूँ पकड़ राखे ने छोड़े नीं है। हे पार्थ, वा सात्विकी पकड़ हैं ॥३३॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥३४॥

जणी धीरज शूँ ढावे, धर्म ने धन कामना ।
फळ री चावना राखे, धीरता वा रजोगुणी ॥३४॥

हे अर्जुण! जणी पकड़ शूँ, धर्म, अर्थ, ने काम ने ठाम राखे है, हे पार्थ! अणी पकड़ वाळो मोका माफ़क फळ ने चा'वे पण फळ री उळझ वी में अधिक व्हे है; वा पकड़ राजसी है ॥३४॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥३५॥

जणी धीरज शूँ ढावे, नींद शोक कळेश ने ।
मद ने डरनी छोड़े, धीरता वा तमोगुणी ॥३५॥

जणी शूँ शूवणो, भय, शोक, पछतावो, ने अहंकार भी नी छूटे पण ई वण्या ही रे वे, खास कर ई सब वणी में घोर अज्ञान रा घमण्ड शूँ हीज व्हे है, अशी खोटी पकड़ ने तामसी जाण ॥३५॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥३६॥

अबे यूँ सुख भी पार्थ, शुण थूँ तीन भाँत रो ।
रमे अभ्यास शूँ ईं में, लोगाँ रा दुःख भी मटे ॥३६॥

हे भरतर्षभ! अबे थूँ तीन तरे'रा सुख ने भी म्हाँ शूँ शुण ले, क्यूँ के सब ही काम सुख रे आशरे हीज रे' है। ई सुख भी गुणाँ में है, यूँ जाण्याँ शूँ अडग शान्ति मय आत्मा दीख जावे है। अणाँ में अभ्यास बध जावा शूँ अणाँ में ही मनखाँ ने शुँवावा लाग जावे। दूज्यूँ अशल में सुख तो याँ में'लो एक भी नी है, पण एक दुःख रो मटणो ही सुख अठे मान लीधो है ॥३६॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥

पे'ली ज्यो जे'र ज्यूँ लागे, लागे अमृत ज्यूँ पछे ।
आप री शुद्ध बुद्धी रो, वाजे सुख सतोगुणी ॥३७॥

जो सुख पे'ली तो जे'र ज्यूँ लागे, पछे अमृत जश्यो जणावे, वो आपणी बुद्धि री निर्मळता शूँ हीज मले है । दूज्यूँ तो मलिन पे'ली ही छोड़ देवे । वो सात्विक सुख कियो है ॥३८॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

इन्द्रयाँ रा स्वाद शूँ लागे पे'ली अमृत रे जश्यो ।
पछे ज्यो जे'र ज्यूँ लागे, सुख वो है रजोगुणी ॥३८॥

इन्द्रयाँ रा स्वाद शूँ पे'ली तो अमृत शरीखो दीखे पण शेवट में जे'र जश्यो नीवड़े वणीं सुख ने ठेठ शूँ राजस मान्यो है ॥३८॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

पे'ली भी ने पछे भी ज्यो, नींद ऊँघ प्रमाद रो ।
आपा ने ही भुलावे ज्यो, वो है सुख तमोगुणी ॥३९॥

ने पे'ली भी, ने पछे भी ज्यो सुख आप ने भुलावतो रे, ने नींद, आळस, ने बेपरवाही शूँ व्हे है; वो तामसी कियो है ॥३९॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥४०॥

अश्यो जीव नहीं कोई, धरा पाताळ स्वर्ग में ।
तीन ही याँ गुणाँ मे'लो, जीं में नी होय एक भी ॥५०॥

ई तीन ही सुख प्रकृति शूँ व्हिया थका है । कोई भी जीव नी तो अणी पृथ्वी पे है, ने नी जो फेर ऊँचा लोकाँ में भी कोई देवताँ में भी है, जो अणाँ गुणाँ शूँ छूटो थको व्हे । अर्थात् प्रकृति रा गुणाँ शिवाय ओर कई नी है ॥४०॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

ब्राह्मणाँ रा क्षत्रियाँ रा वाण्याँ रा शूद्र जात रा ।
न्यारा न्यारा व्हिया कर्म सुभावाँ रा गुणाव शूं ॥४१॥

हे परंतप! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ने शूद्राँ रा भेद भी और कई नी है, पण ई रा ई तीन ही प्रकृति रा गुणाँ रीज गूँथण है, ने ई सुभाविक हीज है, ने याँ शूँ ही न्यारा न्यारा अणाँ रा भेद व्हे गिया है ॥४१॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ॥४२॥

इन्द्रयाँ ने मन री रोक, ज्ञान ध्यान क्षमा तप ।
सूधता साँच शुद्धी ई ब्रह्म कर्म स्वभाव शूँ ॥४२॥

मन पे, इन्द्रयाँ पे, आपणो जोर रे'णो, ने नी रे' वे तो तप शूँ राखणो, ने अणीज वास्ते पवित्र रे'णो, क्षमा राखणी, ने मुख्य तो कुटिलता ने हीज नी राखणी, ने थने ज्ञान-विज्ञान जो सातमा अध्याय में कियो वणी माफक रे'णो, ने विश्वास राखणो यो ब्राह्मण, कर्म सुभाविक ही व्हे है ॥४२॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥४३॥

वीरता धीरता तेज, होंश्यारी भागणो नहीं ।
भाव ईश्वर रो दान, क्षत्री कर्म सुभाविक ॥४३॥

शूर पणो, तेज, धीरप, डा'वापणो, ने युद्ध में भी नी भागणो, दान, ने ईश्वर भाव (वड़ा पणो) यो क्षत्रिय रो सुभाविक कर्म है ॥४३॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥४४॥

खेती वेपार चौपायो वणिक् कर्म सुभाविक ।
सेवा रा शघळा कर्म शूद्राँ रा भी सुभाविक ॥४४॥

खेतीं, वेपार, ने चोपो राखणो यो वैश्याँ(वाण्याँ) रो सुभाविक कर्म है, ने सेवा करणो (अणाँ तीनाँ री ही) तो शूद्र रो सुभाविक कर्म हैं, ने तीनाँ रो भी यो है के कणी ने कणी तरे' शूँ वी भी सेवा हीज करे है ॥४४॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥४५॥

आपणाँ कर्म में लाग, पावे परम सिद्धि ने ।
आपणाँ कर्म शूँ सिद्धि ज्यूँ मले सो सभी सुण ॥४५॥

आपणाँ आपणाँ कर्म में लागो थको मनख वणीज काम शूँ परम पद पाय लेवे है । थने यूँ व्हे के काम तो ऊँचा नीचा है, ने सबाँ शूँ ही परम पद कूँकर मले तो ज्यूँ आपणाँ आपणाँ काम शूँ परम पद पाय लेवे वो थने के' वूँ सो थूँ ध्यान देने शुण ॥४५॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥४६॥

सब जीं शूँ करे काम, वणायो सब यो जणी ।
आपणाँ कर्म शूँ वी ने, पूज पावे परं पद ॥४६॥

जणी शूँ सब जीव मात्र चाले है अर्थात् काम काज में लाग रिया है ने जणी शूँ यो सब व्याप्त व्हे रियो है, वणी ने वणी रा भळाया थका कर्म शूँ पूज ने मनख परम पद पाय लेवे है । भलाँ मालक रो काम करणो ही मालक ने प्रसन्न करणो नी व्हे तो और कई व्हे ॥४६॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥

आपणो निर्गुणी धर्म, पराया सब शूँ शरे ।
करे सुभाव रा कर्म, वणी ने दोष होय नी ॥४७॥

यूँ आँपणो धर्म कणी वात में ओछो दीखे तो भीं दूसरा रा आछा ने शमझ ने आदरवा वचे आछो है । आपणीं लारे लगायो

(भळायो) कर्म करतो थको कदी मालक ने वेराजी नी करे पण दूज्यूँ करे तो आछ्यो नी ॥४७॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥४८॥

कर्म में दोष व्हे तो भी, छोड़णा नी सुभाविक ।
दोष तो सब कर्मां में, रहे ज्यूँ आग में धुओं ॥५८॥

अणी वास्ते हे कौन्तेय! आपणो सुभाविक कर्म सदोष (नीचो) दीखे तो भी नी छोड़णो । यूँ तो आरम्भ (कर्म) मात्र ही धुवाँ शूँ अग्नि री नाईं खोटायाँ शूँ मल्या थका है ॥४८॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

निकाळे सब शूँ बुद्धी, आपो आधीन चाह नी ।
वीं रे संन्यास शूँ रेवे, कर्मां रो क्लेश लेश नी ॥४९॥

जणी रीं बुद्धि नी उळझे, जणी रो आपो हाते है, जणी रीं इच्छा छूटगी है, ने ई सर्वत्र व्हेणी चावे तो वणीं रे कई नी करवा री हद्द अणी तरे'रा त्याग शूँ हाते लागगी, अर्थात् वो होज त्याग शूँ परम पद पायो है ॥४९॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

कर्म छूट्याँ मले ब्रह्म, जीं तरे, सो अबे शुण ।
ज्ञान री परमा सिद्धी कहूँ थोड़ाक में थने ॥५०॥

हे कौन्तेय! या परम ज्ञान री अचळता हीज है, अश्यो ब्रह्म है जश्यो ही पाय लेवे है, रत्ती भरयो ही हेर फेर वी में नी रे'है । वणी ने थूँ म्हाँ शूँ ही ठीक तरे' शूँ थोड़ा में ही वाकब व्हेजा ॥५०॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥

राख निर्मळ बुद्धी ने, धीर व्हे जीत आप ने ।
छोड़ स्वारथ इन्द्रयाँ रा, छोड़ ने खार हेत ने ।।५१।।

परम पवित्र बुद्धि ने धीरज वाळो अणी शूँ आप ने ठे'राय ने, शब्दादि स्वादाँ ने छोड़ ने अर्थात् याँ रा राग-द्वेष ने छोड़ ने, (छेटी करने) ।।५१।।

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ।।५२।।

खावे पथ्य रहे न्यारो, रोक ने सब इन्द्रियाँ ।
पूरो वेराग ने धारे, रे' सदा ध्यान योग में ।।५२।।

एकन्त रे'वा वाळो, फोरो खावा वाळो, सदा ध्यान योग में तत्पर, ने वैराग रो अन्तश में आशरो राखवा वाळो ।।५२।।

अहंकारं वलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।५३।।

अहन्ता ममता माया, मद काम करोध ने ।
जोर ने छोड़ आनन्दी, रहे सो ब्रह्मरूप व्हे ।।५३।।

अहंकार, वळ, जोर, काम, क्रोध परधे (परिग्रह) छोड़ ने ममता हीण शान्त व्हे वो ब्रह्मरूप है हीज, पण फेर वणी में ब्रह्म री कल्पना कीधी जाय है । दूज्यूँ ई लक्षण ब्रह्म रा है, ने ब्रह्म ने हीज ब्रह्म के'णो कल्पना हीज है ।।५३।।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।।५४।।

सोच ने चाहना हीणो, ब्रह्मरूपी महासुखी ।
सवाँ में समता जीं रे, पावे परमभक्ति वो ।।५४।।

अणी तरे'शूँ ब्रह्मरूप पाछो पायो थको वड़ो प्रसन्नता रा सुभाव वाळो व्हे जाय है । शोचतो ने चाहतो वा वस्तु अवे वीं ने मलगी जी शूँ

राग द्वेष मट ने सबाँ में समता रूपी म्हारी परम भक्ति ने वो पाय लेवे है। या म्हारी परा भक्ति है ।।५४।।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः ।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।।५५।।

भक्ती परम शूँ लेवे, म्हने जाण जथार्थ वो ।
ठीक यूँ जाणता पाँण, म्हाँ में ही आण वो मले ।।५५।।

वास्तव में म्हूँ जश्यो हूँ वश्यो-वश्यो भक्ति शूँ हीज जणाँ वूँ हूँ, ने यथार्थ में हूँ जश्यो जणायो ने जाणवा वाळो म्हारा में आयो, क्यूँ के पछे वीं ने और तो दीखे ही नी, जदी और कई व्हे ।।५५।।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ।।५६।।

म्हारे ही आशरे कर्म, सारा ही करतो थको ।
म्हारी दया शूँ पावे वो, अखूट स्थान एक सो ।।५६।।

अशी भक्ति रो उपाय सब कर्माँ ने सर्वदा म्हारे हीज आशरे करे, यो हीज है, ने यूँ कर्म की धो, ने म्हारी वणी पे कृपा व्ही, ने म्हारी कृपा व्ही ने सदा अविनाशी पद मल्यो ।।५६।।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ।।५७।।

चित्त शूँ मे'ल दे कर्म, म्हाँ में ही शघळा सदा ।
म्हाँ में ही वुद्धि ने जोड़, म्हाँ में ही लहलोट व्हे ।।५७।।

अणी वास्ते म्हूँ थने घड़ी-घड़ी रो के'वूँ हूँ के मन शूँ हीज सब कामाँ ने म्हारे में छोड़ दे, (मे'ल दे) शून्य में नी छोड़णा, दूज्यूँ तामस त्याग व्हे जावेगा। यूँ म्हारे में हीज तत्पर व्हेजा, अणीज रो वुद्धि योग नाम है। अणी तरे' शूँ निरन्तर म्हारे में चित्त वाळो व्हेजा, यो सहज सरल उत्तम उपाय है ।।५७।।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥५८॥

म्हारी कृपा शूँ सारा ही, दुःखाँ शूँ छूट जायगा ।
टेंट शूँ नीज माने तो, पड़ेगा नाश भोगणो ॥५८॥

यूँ म्हारे में मनवाळो व्हियो ने म्हारी कृपा व्ही, ने म्हारी कृपा व्ही, ने सब मुशकल वाताँ शे'ल में ही सूधी व्हे, ने वणा रे पार परो जायगा । पण जो थूँ घमण्ड राख ने ईं पे ध्यान नी देगा तो थारो नाश व्हे जायगा । स्वरूप शूँ पड़ जायगा ॥५८॥

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥५९॥

जो थूँ नी लड़णो चावे, आपणो जोर राख ने ।
झूठो यो जोर है थारो, लड़ेगा थूँ स्वभाव शूँ ॥५९॥

जो थूँ म्हूँ तो नी लड़ूँगा यो मान रियो है या ही म्हारे शूँ विमुखता है, ने अहंकार रो आशरो लेवा शूँ व्ही है, पण या वात पार नी पड़ेगा । थने प्रकृति खेंच ने वा चावे जणी में लगाय देगा ॥५९॥

स्वभावजेन कौन्तेय निवद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥६०॥

आप रा कर्म में वंध्यो, प्रकृती रा गुणाव शूँ ।
मूर्खता शूँ नटे सो ही, पड़ेगा करणो थने ॥६०॥

यो यूँ मानणो थारो वना शमझ शूँ है । हे कौन्तेय! थारा सुभाविक कर्म शूँ थूँ वन्ध्यो थको है । अबे तो वो ले जावेगा वठीज जावणो पड़ेगा । थारो चा'यो नहीं व्हेगा । क्यूँ के थूँ प्रकृति में फेर फार नी कर शके पण प्रकृति थाँ में कर शके है ॥६०॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥६१॥

रह्यो फेर सवाँ में ही, हिया में बेठ ईश्वर।
चढ़्या डोलर पे व्हे ज्यूँ, माया शूँ सब ही फरे ॥६१॥

हे अर्जुण! ईश्वर (अशी समर्थ) प्रकृति सवाँ रे गे'री शूँ गे'री ऊंडी हृदय में अविचळ ठे'री है। वठा शूँ ही वा सब जीवाँ ने फेरे ज्यूँ है। ज्यूँ कणी कळ (चक डोलर) वा सवारी पे चड़्या ने सवारी साथे फरणो पड़े, ज्यूँ प्रकृति पे चड़्याँ ने अणी रे शाथे फरणो पड़े। यो भमळा भोट माया शूँ है ॥६१॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥६२॥

वीं रे ही शरणे जाव, सदा ही सब भाव शूँ।
वीं री दया शूँ पावेगा, स्थान शान्ति अखूट रो ॥६२॥

अणी वास्ते वणीज रे शरणे रे'। वणी शूँ जोर करणो ही आपाँ ने ओछा कर ने दुःख में न्हाँखणो है, ने वणी रे आधीन रे' णो ही नित्य परम शान्ति रो स्थान पावणो है, ने वणी री प्रसन्नता वीं रे शरणे शूँ है ॥६२॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥६३॥

गुप्त शूँ गुप्त यूँ ज्ञान, यो थने कह म्हें दियो।
आछा विचार ने शारो, ज्यूँ इच्छा होय त्यूँ कर ॥६३॥

या म्हें खुद थने हीज की' है, क्यूँ के या घणी गुप्त वात है। ईं ने ठीक तरें' शूँ पूरी विचार ने मुरजी व्हे ज्यूँ कर। ईं ने वना विचार्‌याँ कीधो ने उळझ्यो, या थूँ नक्की समझ जे ॥६३॥

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥

सब शूँ गुप्त या श्रेष्ठ, फेर म्हारी कही शुण।
यूँ है म्हारो घणो वा'लो, जीं शूँ यूँ लाभ री कहूँ ॥६४॥

सबाँ शूँ अंण जाणी वात, सबाँ शूँ वत्ती वात म्हारी फेर थूँ ध्यान देने शुण ले। यूँ वार वार अशी वात ने थने कें वा रो कारण म्हारो थारे पे प्रेम है, के म्हारो अर्जुण अशी वात शूँ कोरो नी रें जावे, जी शूँ थारे लाभ रे वास्ते अविचल सुख थने कूँ हूँ ।।६४।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।६५।।

म्हने पूज म्हने चिन्त, म्हने ही भक्ति शूँ नम ।
म्हने ही पायगा प्यारा, प्रतिज्ञा कर ने कहूँ ।।६५।।

थूँ म्हारा में मन वाळो व्हे जा, बस या ही म्हारी म्होटी चाकरी व्हेगी, ने म्हारो सत्कार व्हे गियो। यूँ म्हारे में मन वाळो व्हियो, ने पछे थारी और गति ही नी रीं। पछे तो म्हने हीज पावे या म्हारी जिम्मे-वारी है। थूँ म्हारो प्यारो है, कोई थनें तो नी ठगतो व्हूँगा? भलाँ म्हारा वचन थने हीज भटकावा वाळा कूँकर व्हे; अतरोक तो मान ले ।।६५।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।६६।।

शघळा धर्म थूँ छोड़, म्हारे ही शरणे रह ।
म्हूँ थने सव पापाँ शू, छुड़ावूँगा डरे मती ।।६६।।

यो आछो के यो आछो, यो छोड़ ने एक म्हारे हीज आशरे आय जा, आवे कई जाण ले, निश्चय कर ले, पछे तो म्हूँ घणो ही थारा सव पापाँ रो नाश कर दूँगा। थारे यो शोच करवा री कोई जरूरत नी है ।।६६।।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।६७।।

तप भक्ति वना रा ने, खारीला ने कदी पण ।
वना विश्वास रा ने भी, यो संवाद कहे मती ।।६७।।

यो खास म्हारो मूळ मन्त्र हर कणी ने ही के' देवा रो नी है। जो खम नी शके, म्हारे पे प्रेम नी व्हे, वी-ने तो कदी भी के'वे ही मती। भलाँ म्हारा पे विश्वास वना म्हारी वात कूँकर कोई करेगा ? और खोटायाँ हीज हेरवा रा सुभाव वाळा ने भी के'वे मती, ने जो म्हारी निन्दा करे वी ने भी के' वे मती। अतरा रो वचाव ओशाण, ने याद राख ने करतो री'जे ॥६७॥

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

कहे जो भक्त म्हारा ने, ईं महा गुप्त ज्ञान ने ।
कर म्हारी घणी भक्ती, म्हने वो पायगा सही ॥६८॥

या वात नीं है कं ई परम गुप्त ने के'णो ही नी, शामो म्हारा भक्त ने के'वा शूँ तो अश्यो पुन्न व्हे, के के'वा ने शुणवा वाळा दो ही म्हारी परम भक्ति कर ने निश्चय म्हने हीज पाय लेवे। वच्चे कठे ही अटके ही नी है ॥६८॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥

म्हारो प्यारो उश्यो और, हुवो मनख नी कदी ।
होयगा भी नहीं फेर, अश्यो प्यारो म्हने अठे ॥६९॥

ने वणी जश्यो तो कोई मनख म्हारे मुरजी मुजब चाकरी करवा वाळो हूं ही नी, ज्यो यो म्हारो उपदेश म्हारा भक्त ने शुणाय देवे, ने अणी धरती पे ज्यो भक्त अणी ज्ञान ने शुणवा वाळो है, वणी शूँ वत्तो भी कोई म्हने और प्यारो नी है ॥६९॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥

जो भणे नर या कोई, धर्म री वात आपणी ।
पूज्यो हूं ज्ञान यज्ञाँ शूँ, वीं म्हारी राय में म्हने ॥७०॥

ने जो अणी आपणा धर्म रा सुभाविक संवाद ने भणेगा (विचा-रेंगा) वणी तो जाणे ज्ञान रा यज्ञ शूँ म्हारी पूजा कर ने म्हने राजी कर लीधो, यूँ म्हूँ मानूँ हूँ, क्यूँ के ज्ञान यज्ञ म्हने घणो प्रिय है ।।७०।।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ।।७१।।

शुणे जो खार ने छोड़, ईं ने विश्वास राख ने ।
वो लोक पुण्य रा आछा पावेगा छूट ने अठूँ ।।७१।।

जो सादा सुभाव रो ही व्हे, ने कणी री खोटा ई नीं करतो व्हे, अश्यो मनख भी अणी आपणा सम्वाद ने शुण भी लेवे तो वो भी छूटने बड़ा पुण्यात्मा रा ऊँचा ऊँचा लोकाँ ने पाय जावे ।।७१।।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ।।७२।।

थें शुण्यो के नहीं पार्थ, यो खूब मन लाय ने ।
थारो अज्ञान रो भे,म, मट्यो के नी धनंजय ।।७२।।

हे पार्थ! थें कई मन लगाय ने यो म्हारो उपदेश शुण्यो के नी? हे धनंजय! यो मन लगाय ने शुणवा शूँ अज्ञान रो विकार मट जावे है, सो थारो मट्यो के नी ।।७२।।

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।७३।।

अर्जुण कही ।

सुध आई मटी भूल, आप री शुभ दृष्टि शूँ ।
नी अबे भे'म, हूँ त्यार, करूँगा आप रो कह्यो ।।७३।।

अर्जुण अरज की थी हे अच्यु[1]त्. आप री अणी कृपा शूँ (ज्या

[1]—अच्युत शूं सदा एक रस रे'वा वाळा जाण्या, यो भाव है ।

के निरन्तर म्हारे पे व्हियाँ करे है) म्हारो अज्ञान मट गियो, ने म्हने पाछी सही वात भूल गियो शो याद[1] आयगी। म्हूँ तो वना सन्देह[2] रे त्यार हूँ ने आप रा वचन ने करूँगा और कर ही नी शकूँ हूँ ॥७३॥

संजय उवाच ।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥

संजय कही ।

यूँ यो अद्भुत सम्वाद, महात्मा कृष्ण पार्थ रो।
म्हें शुण्यो शुण ने म्हारे, माँय आनन्द माय नी ॥७४॥

संजय कियो के यूँ आछा भाग्य शूँ, आप री दया शूँ म्हें महात्मा कृष्ण वासुदेव, ने पार्थ रो अनोखो[3] सम्वाद, जणी ने शुण ने रूँ रूँ हरखवा लाग जावे, म्हें भी शुण ली दो ॥७४॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम् ।
योगंयोगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५॥

अश्यो गुप्त महा योग, खुद जोगेश कृष्ण ने ।
व्यास री शुभ दृष्टी शूँ, शागे म्हें कहता शुण्या ॥७५॥

जणी शूँ आगे अवे के'वाय[4] शके ही नी अश्यो गुप्त[5] सम्वाद व्यास भगवान् री दया शूँ म्हें शुण्यो, ने साक्षात् खुद योगेश्वर[6] कृष्ण ने के'ता यूँ यो योग शुण्यो, अवे कई सन्देह रे'वे ॥७५॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥७६॥

१—या स्मृति आई ।
२—गत सन्देह होज म्हूँ हूँ, थिर हूँ ।
३—जणी में बोलाय ने वणी में बोलणो अनोखो ।
४—'परम' आगे पाछे खुद भगवान होज है जणी में ।
५—अनुभवगम्य होज है ।
६—योगेश्वर शूँ योग जाण्या केड़े पछे तो छूटे ही नी, यो भाव है ।

कृष्ण अर्जुन रो शुद्ध, यो यूँ सम्वाद अद्भुत ।
आय आय म्हने याद, हर्ष होवे घड़ी घड़ी ॥७६॥

हे राजा! अणी अनोखा सम्वाद ने याद कर-कर ने म्हने घड़ी-घड़ी रो वार-वार हर्ष व्हे वे है । क्यूँ के यो केशव ने अर्जुण रो वड़ो पवित्र सम्वाद हैं । अणी शिवाय और कई व्हें शके ॥७६॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥७७॥

आय आय म्हने याद, महा अद्भुत रूप वो ।
अचम्भो व्हे वड़ो भारी, हरखूँ वार वार म्हूँ ॥७७॥

हे राजन्! वीं हरी रा विश्वरूप, घणा अनोखा ने भीं याद कर-कर ने म्हने घणो अचंभो व्हे, ने वार वार हर्ष व्हे वे ॥७७॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिपत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे "मोक्षसंन्यासयोगो" नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

जठी योगीश है कृष्ण, पार्थ शस्त्र लियाँ जठी ।
नीति वैभव ने शोभा, निश्चै है जीत भी वठी ॥७८॥

ॐ तत्सत् इति श्रीभगवद्गीता उपनिषद् में ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्णार्जुन संवाद में "सन्यासयोग" नाम अठारमो अध्याय समाप्त व्हियो

जठी योग्याँ रा ईश्वर कृष्ण है, जठी धनुष धारण करवा वाळो पार्थ है, वठी नें कई व्हेगा या के'वा री अबे फेर वाकी कई रही? वठी तो निश्चय ही नीति, विभव, विजय, ने शोभा है हीज, म्हारो पक्को विश्वास है, क्यूँ के ई तो सहचारी हैं ॥७८॥

ॐ वो साचो यूँ श्री भगवान् री भाषी थकी उपनिषद् ब्रह्मविद्या योग-शास्त्र में श्रीकृष्णार्जुन सम्वाद में "त्याग संन्यास" योग नाम अठारमो अध्याय समाप्त व्हियो ॥१८॥

यूँ श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद् समाप्त व्ही ।

ॐ

